

राधास्वामी सत्संग व्यास

पुष्प

ॐ त्रपूर्ण®

Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से

11

जीवन

13

संदेश

37

कबीर का 'कंत'

39

मन और बुद्धि की पहुँच से परे

40

शरीर के अंदर

41

मुक्ति-द्वार

43

नाम

45

शब्द यानी नाम

49

शब्द का प्रकाश

51

पाँच शब्द

52

सतगुरु

54

गुरु का शब्दस्वरूप

60

जीते-जी मरना

64

बेगम देस हमारा

68

मन

71

आत्म-साक्षात्कार अर्थात्

79

आत्मज्ञान

79

वाणी 127

विनती

127

सतगुरु

128

नाम का रंग

130

नाम का जुलाहा

131

गुणगान

133

गुरु का दिया ज्ञान का दीपक

134

मन के शस्त्र

80

मूर्तिपूजा

82

सुमिरन

85

ध्यान

88

शब्द-धुन

91

कर्म

93

छुटकारे का उपाय

97

रुहानी मार्ग के नियम

101

सहज योग

104

प्रेम

109

प्रेम का मूल्य

113

कर हरिजन से हेत

114

शरण

116

विरह

120

राम का मर्म न जाना

135

अब क्या सोचे

136

सहज का प्रकाश

138

जीते-जी मुक्ति

138

यदि धोवे सौ बार

139

ऐसे घर हम बहुत बसाए

140

मत-मतांतरों के बंधन	141	विरहिणी आत्मा	160
बिन नयनन जग देखे	142	कब प्रिय घर आवै	160
विरह की अग्नि	143	झूठे मार्गदर्शक	161
नाम की नौका	144	घट भीतर पाया	162
ज्यों बालू की भीत	145	जहाँ जाऊँ तहाँ राम	163
लोगन राम खिलौना जाना	146	मन की बान न जाई	164
अकथ कहानी प्रेम की	147	मरन है मीठा	166
ऐसा देस हमारा	147	घर में झगड़ा	167
नामरूपी कल्पतरु	149	सभी जीव समान	168
गढ़े हुए देव	150	मुक्ति नहीं बिन नाम	169
मन का शिकार—उसे वश		बिन परिचय मर्म न पावै	170
में करना	152	सार शब्द	170
जो बोले घट माहीं	153	सच्चा गुरु	171
ज्ञान की आँधी	155	कौन भले कौन मंदे	172
निपुण कसाई	156	प्रभु का भय	173
गौने का दिन	157		
अनमोल नाम	159		

विविध शब्द 175

साखियाँ 211

बिनती	211	लव	241
गुरुदेव	213	सत्संग	242
झूठा गुरु	223	कुसंग	244
गुरुमुख	225	सूक्ष्म मार्ग	246
मनमुख	225	चेतावनी	249
निगुरा	226	उदारता	261
गुरु शिष्य खोज	226	सहन	261
सेवक और दास	228	विश्वास	262
सूरमा	231	दुबिधा	263
पतिव्रता	235	मध्य मार्ग	264
व्यभिचारिणी	237	सहज	265
भक्ति	238	अनुभव ज्ञान	265

वाचक ज्ञान	266	दीनता	307
करनी और कथनी	267	दया	309
सार ग्रहण	269	साच	309
असार ग्रहण	270	विचार	310
पारखी	270	विवेक	311
अपारखी	271	मन	312
नाम	272	माया	316
सुमिरन	276	निद्रा	317
शब्द	281	निंदा	318
संजीवनी	285	मांसाहार	318
जीते-जी मरना	286	नशा	321
साध	288	मूर्तिपूजा	322
असाध	295	तीर्थ-व्रत	323
बेहद	296	पंडित और वाचक ज्ञानी	324
कर्म	297	सामर्थ	326
काम	299	निज कर्ता का निर्णय	327
क्रोध	300	सर्व घट व्यापी	328
लोभ	301	मौन	330
मोह	301	विरह	330
मान और अहंकार	302	प्रेम	337
आशा	303	भेदी	344
तृष्णा	304	परिचय	344
शील	305	उपदेश	349
क्षमा	305	मिश्रित	352
संतोष	306		
धीरज	307		

संक्षिप्त परिचय 359

संदर्भ सूची 364

संदर्भ ग्रंथ 375

शब्द सूची 377

परमार्थ संबंधी पुस्तकें 381

जीवन

मध्यकालीन संतों में कबीर साहिब का स्थान बहुत ऊँचा है। अपनी सरल किंतु सारगर्भित तथा मर्मस्पर्शी वाणी के कारण कबीर साहिब आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। गुरु रविदास, राजा पीपा, संत दादू दयाल, मीराबाई, संत रज्जब, मलूकदास जी, संत तुकाराम, गरीबदास जी, तुलसी साहिब आदि संतों ने अपनी वाणी में कबीर साहिब का उल्लेख बड़े आदर भाव के साथ किया है। परंतु न तो उनके समकालीन कवियों और इतिहासकारों ने और न बाद में आनेवाले संतों ने उनके जीवन-वृत्तांत पर कोई प्रकाश डाला है। जहाँ शरीअत और कर्मकांड में जकड़े लोगों ने कबीर साहिब की कठोर आलोचना की है तो उनके उत्तराधिकारियों ने उनकी इतनी प्रशंसा की है कि उनके वृत्तांत चमत्कारिक घटनाओं और अतिशयोक्ति से परिपूर्ण हो गए हैं।

मौखिक परंपराओं से आगे बढ़ती हुई कबीर साहिब की जीवन-गाथा में कल्पना और सचाई आपस में इतनी घुल-मिल गई हैं कि आज वास्तविकता का पता लगाना कठिन हो गया है। फिर भी इन वृत्तांतों के पीछे एक ऐसे व्यक्तित्व की झलक मिलती है जो एक महान संत, पूर्ण सतगुरु और सरल-हृदय भक्त होने के साथ ही स्पष्टवादी, निर्भीक तथा अपने आदर्शों के लिए हर प्रकार की आलोचना और यातना सहने को तैयार था।

कबीर साहिब का सबसे पहला उल्लेख नाभादास की रचना भक्तमाल में मिलता है। यह ग्रंथ सन 1585 में संपूर्ण हुआ था। यद्यपि इसमें उनके जन्म, जाति, माता-पिता आदि का कोई जिक्र नहीं है, फिर भी इससे कबीर साहिब के चरित्र और दृढ़ता का पता चलता है:

कबीर कानि¹ राखी नहीं, वर्णाश्रम षट्दरसनी॥
 भक्ति बिमुख जो धर्म सो अधर्म करि गायो।
 जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
 हिन्दू तुरक प्रमान 'रमैनी'² शबदी साखी।
 पक्षपात नहीं बचन, सबही के हित की भाखी॥
 आरूढ दसा है जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी³।
 कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दरसनी॥⁽¹⁾

अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ से कबीर साहिब के जन्म के साथ कई चमत्कारिक बातें जुड़ने लगीं। कुछ लोगों के अनुसार वह रामानंद जी के आशीर्वाद के फलस्वरूप जन्मे, एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। रामानंद जी ने यह ध्यान न देते हुए कि उन्हें नमस्कार करनेवाली स्त्री विधवा है, आशीर्वाद दिया, “पुत्रवती हो”। ब्राह्मणी ने बालक को बनारस के समीप लहरतला तालाब के किनारे छोड़ दिया। कबीर-पंथियों ने तो यहाँ तक माना है कि कबीर साहिब के कोई माता-पिता नहीं थे और उन्होंने आकाश से एक ज्योति के रूप में उतरकर बालक का रूप धारण कर लिया था।

परंतु संत रविदास, गुरु अमरदास, रज्जब जी आदि संतों ने स्पष्ट लिखा है कि कबीर साहिब ने एक मुसलिम जुलाहिन के गर्भ से जन्म लिया। गुरु अमरदास ने कबीर साहिब को जुलाहा कहा है और संत रज्जब कहते हैं कि महान संत कबीर ने एक जुलाहिन की कोख से जन्म लिया, जुलाहा गर्भ उत्पन्नों साध कबीर।⁽²⁾ कबीर साहिब के शिष्य धर्मदास कहते हैं कि कबीर साहिब की माता तुर्क और पिता जुलाहा थे, माय तुरकनी बाप जुलाहा, बेटा भक्त भये।⁽³⁾

गुरु रविदास जो स्वयं कबीर साहिब के समकालीन थे, स्पष्ट लिखते हैं कि कबीर साहिब के माता-पिता मुसलिम ही नहीं थे बल्कि उनके कुल

में ईद आदि त्यौहारों के समय जानवरों की बलि भी दी जाती थी और शेख, सैयद, पीर आदि की मान्यता थी। आप कहते हैं कि जो पिता शरीअत का पाबंद था, उसी के पुत्र कबीर ने अपने ऊँचे आचरण और भक्ति के द्वारा तीनों लोकों में प्रसिद्धि पाई:

जा कै ईद बकरीद कुल गऊ रे बध करह मानीअह सेख सहीद पीरा॥
 जा कै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा॥⁽⁴⁾

इस लेख का ध्येय कबीर साहिब के जीवन से संबंधित मतभेदों का विवेचन करना नहीं बल्कि पंद्रहवीं शताब्दी के इस महान संत के व्यक्तित्व और शिक्षा पर प्रकाश डालना है। जाति, कुल, सामाजिक स्तर आदि से संतों की महानता का कोई संबंध नहीं। वास्तव में संत सबके होते हैं, उनकी कोई जाति, कोई राष्ट्रीयता नहीं होती; न ही वे मनुष्य के बनाए हुए ऐसे भेदभाव को मंजूर करते हैं। कबीर साहिब स्वयं कहते हैं कि वह न हिंदू हैं, न मुसलमान, वह सभी मनुष्यों के समान पाँच तत्वों की देह धारण किए हुए हैं जिसके अंदर अदृश्य आत्मा निवास करती है:

हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
 पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं॥⁽⁵⁾

कबीर साहिब का जन्म सन 1398 में हुआ। उनके पिता नीरू और माता नीमा जुलाहे थे और बनारस नगर के बाहरी छोर पर रहते थे। छोटी उम्र से ही कबीर साहिब का झुकाव परमार्थ की ओर था। यद्यपि उनको किसी प्रकार की विधिवत शिक्षा का अवसर नहीं मिल पाया था, फिर भी कबीर साहिब की रचनाओं से पता चलता है कि वह एक विवेकशील तथा तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति थे जिनमें गूढ़ तत्वों को समझने, उनकी गहराई में जाने तथा उनका विवेचन करने की असाधारण योग्यता थी।

बचपन से ही कबीर साहिब जुलाहे के व्यवसाय में अपने पिता का हाथ बँटाने लगे। धीरे-धीरे वह अपने कुल के इस व्यवसाय में कुशल हो गए। परंतु इसके साथ ही रूहानी बातों में उनकी रुचि बढ़ने लगी। कई बार

1. लिहाज़ 2. कबीर साहिब के पदों का संग्रह 3. कहीं

वह अपना समय आध्यात्मिक चिंतन में बिताते थे जिसे देखकर कभी-कभी उनके माता-पिता चिंतित हो उठते थे।

शुरू से ही कबीर साहिब दयालु और कोमल-हृदय थे, वह किसी का दुःख-दर्द सहन नहीं कर सकते थे। सर्दी के दिनों में एक बार कबीर साहिब अपने पिता के आदेश से कपड़ा बेचने हाट को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें ठंड से ठिठुरता हुआ एक दरिद्र मिला। उसकी दशा देखकर कबीर से न रहा गया और आधा कपड़ा उसे दे दिया। परंतु उस गरीब आदमी ने बाक़ी कपड़ा भी माँगा। कबीर उसे मना न कर सके, पूरा कपड़ा उसे देकर ख़ाली हाथ घर लौट आए और अपने पिता की नाराज़गी और डाँट चुपचाप सह ली।

कबीर के पदों से पता चलता है कि अपने जिज्ञासु जीवन के आरंभ में वह कई महात्माओं से मिले। संभव है कि उनसे कबीर साहिब को संतोष न मिला हो। बनारस के छोर पर रहते हुए उन्हें शरीअत और कर्मकांड के खोखलेपन का अनुमान हो गया था। उनकी खोज बाहरमुखी पूजा-पाठ, इबादत आदि से किसी ऊँची वस्तु के लिए थी। कबीर साहिब ने अपने जीवन में जिस मार्ग का उपदेश दिया, वह शब्द का मार्ग है, जीते-जी प्रभु की प्राप्ति करने और बाहर के रीति-रिवाजों से हटकर अंदर जाने का मार्ग है। इस मार्ग में कबीर को किसने दीक्षा दी, उनके सतगुरु कौन थे, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। कबीर साहिब ने अपनी रचनाओं में अपने जीवन के बारे में बहुत कम लिखा है। अपने सतगुरु के विषय में तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है।

परंतु संतमत का यह अटल सिद्धांत है कि पूरे गुरु के बिना जीव को शब्दमार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वयं कबीर साहिब ने अपनी वाणी में गुरु और गुरु के प्रति प्रेम की अपार महिमा की है। निश्चित ही शब्दमार्ग में दीक्षा देनेवाले कोई संत कबीर के गुरु थे। परंतु कई अन्य संतों की भाँति कबीर ने भी अपने सतगुरु का नाम प्रकट नहीं किया है।

परंपरा से यह मान्यता चली आ रही है कि स्वामी रामानंद कबीर के गुरु थे। कबीर ने जब संतों के रूहानी-मार्ग का उपदेश शुरू किया तो

परिपाटियों में बँधे लोगों ने उनका विरोध किया और उनकी आलोचना की। मुसलमानों ने उन्हें काफ़िर और हिंदुओं ने निगुरा कहना शुरू कर दिया। इस आलोचना से कबीर समझ गए कि परिपाटी और कर्मकांड के गढ़ बनारस के लोग मुझे शब्दमार्ग का शांतिपूर्वक प्रचार नहीं करने देंगे। उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति का आसरा लेना आवश्यक समझा जिसका बनारस के लोगों पर गहरा प्रभाव हो।

ऐसे व्यक्ति स्वामी रामानंद थे जिन्हें विद्वान, शास्त्रों के ज्ञाता और धार्मिक नेता के रूप में पंडितों, पुरोहितों और सब वर्गों के लोगों का आदर प्राप्त था। परंतु रामानंद जी मुसलमानों तथा निम्न जाति के लोगों का मुख तक नहीं देखते थे। कबीर के लिए उनसे दीक्षा प्राप्त करना आसान न था। विश्वास किया जाता है कि उन्होंने चतुराई से रामानंद का शिष्यत्व प्राप्त किया। रामानंद प्रतिदिन सूर्योदय से पहले गंगा-स्नान के लिए जाते थे। एक दिन कबीर घाट की सीढ़ियों पर लेट गए। सवेरे के धुँधले प्रकाश में रामानंद कबीर को न देख पाए और उनका पैर कबीर के सिर को लगा। चौंककर रामानंद बोल उठे, 'राम कह, राम कह।' कबीर चुपचाप उठकर आ गए और उन्होंने अपने आप को स्वामी रामानंद का शिष्य कहना शुरू कर दिया।

कुछ कट्टर लोगों ने रामानंद से शिकायत की और पूछा कि आपने एक मुसलमान को अपना शिष्य क्यों बनाया है? जब उन्होंने इस बात को ग़लत बताया तो कबीर को बुलाया गया। रामानंद ने परदे के पीछे से पूछा "कबीर, तुम ऐसी असत्य बात क्यों कह रहे हो?" कबीर ने उत्तर दिया कि घाट की सीढ़ियों पर मेरे सिर को अपने चरण से छूकर आपने मुझे 'राम-राम' मंत्र देकर दीक्षित किया। सत्यवादी रामानंद इस बात से इनकार न कर सके और कबीर को शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। परंतु परंपरा को कायम रखते हुए उन्होंने कबीर से परदा रखा।

मूल रूप में कबीर साहिब और रामानंद जी के मार्गों में बहुत अंतर था। कबीर ने हमेशा गुरु के रूप में रामानंद का आदर किया लेकिन उन्होंने कभी भी रामानंद की पूजा-विधि और परंपरागत मान्यताओं को नहीं अपनाया।

रामानंद नित्य अपने इष्ट की पूजा किया करते थे। एक दिन पूजा में मूर्ति के सिर पर मुकुट रख दिया पर हार पहनाना भूल गए। हार इतना बड़ा न था कि मुकुट पर से गले में डाला जा सकता। रामानंद इसी उलझन में थे कि कोठरी के बाहर बैठे कबीर ने आवाज़ दी “गुरुदेव, घुंडी खोलकर माला पहना दीजिए।” यह सुनकर रामानंद को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि यह मुसलमान जुलाहा कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। रामानंद ने कहा, “हटा दो परदा, कबीर से अब क्या परदा!” रामानंद को देखकर कबीर उनके चरणों में झुकने लगे परंतु रामानंद जी ने उन्हें गले लगा लिया।

रामानंद श्री संप्रदाय के प्रवर्तक थे जिसमें श्रीरामचंद्र तथा सीता की भक्ति के साथ वेदांत के विशिष्टाद्वैतवाद¹ का सम्मिश्रण है। वह वर्ण-व्यवस्था तथा बाहरमुखी क्रियाओं के समर्थक थे। परंतु कबीर के संपर्क में आकर स्वामी रामानंद भी शब्दमार्गी हो गए, जैसा कि आदि ग्रन्थ में प्राप्त उनके एक पद से पता चलता है। इस पद में बाहरमुखी उपासना का खंडन करते हुए रामानंद कहते हैं कि प्रभु कहीं बाहर नहीं, शरीररूपी घर के अंदर है। मैं अपने सतगुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसने मेरे सब भ्रमों को नष्ट कर दिया। सतगुरु का प्रदान किया हुआ शब्द करोड़ों कर्मों का नाश करता है:

कत जाईए रे घर लागो रंग॥ मेरा चित न चलै मन भइओ पंग॥
 एक दिवस मन भई उमंग॥ घस चंदन चोआ बहु सुगंध॥
 पूजन चाली ब्रहम ठाए²॥ सो ब्रहम बताइओ गुर मन ही माहे॥
 जहा जाईए तह जल पखान॥ तू पूर रहिओ है सभ समान॥
 बेद पुरान सभ देखे जोए॥ ऊहां तउ जाईए जउ ईहां न होए॥
 सतगुर मैं बलिहारी तोर॥ जिन सकल बिकल भ्रम काटे मोर॥
 रामानंद सुआमी रमत ब्रहम॥ गुर का सबद काटै कोट करम॥⁽⁶⁾

1. रामानुज द्वारा प्रचलित एक मत 2. ब्रहम ठाए=मंदिर

रामानंद स्वामी द्वारा रचे कुछ और पद भी मिलते हैं जो इसी भाव को प्रकट करते हैं।

कबीर के समकालीन लेखकों ने यह नहीं बताया है कि उन्होंने विवाह किया था अथवा नहीं। परंतु कबीर की मृत्यु के सौ वर्ष बाद के ऐसे कई उल्लेख मिलते हैं कि कबीर विवाहित थे और उनकी पत्नी का नाम लोई था। अपने एक दोहे में कबीर साहिब स्वयं कहते हैं कि उन्होंने भी विवाह किया था।

सब संतों के समान ही कबीर साहिब ने भी गृहस्थ जीवन की सराहना की है। उन्होंने संतोष और शील का उपदेश दिया है, कठोर संयम, संन्यास और ब्रह्मचर्य का नहीं। वह इच्छाओं से मुक्त होने का मार्ग बताते हैं, इंद्रियों के दमन का नहीं। जिस शील की कबीर ने महिमा की है, वह आंतरिक आनंद और नाम के अभ्यास द्वारा प्राप्त होनेवाला स्वाभाविक शील है जिसके फलस्वरूप संसार के भोग फीके पड़ जाते हैं।

कबीर आजीवन जुलाहे का कार्य करते हुए अपना तथा अपने परिवार का पालन करते रहे। इस व्यवसाय में न तो बहुत कमाने की गुंजाइश थी और न ही कबीर को धन की कोई इच्छा थी। अपनी ईमानदारी और मेहनत की कमाई से ही उन्होंने अपना गुज़ारा किया। अपने एक पद में वह प्रभु से समृद्धि और सुख के साधनों की याचना नहीं करते, न भविष्य के लिए धन जुटाने की इच्छा प्रकट करते हैं बल्कि केवल अपने और अपने परिवार के गुज़ारे लायक ही माँगते हैं ताकि भक्ति में बाधा न आए।⁽⁷⁾

कबीर साहिब के शिष्यों में राजा, नवाब, सेठ और साहूकार भी थे जो कबीर को सब प्रकार के सुख के साधन, धन, संपत्ति आदि भेंट कर सकते थे। परंतु कबीर ने कभी अपने अथवा अपने परिवार के लिए कोई भेंट मंजूर नहीं की और न कभी किसी के आगे हाथ पसारा। साधु अथवा संत के गुणों का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि संत को अपने शिष्यों का प्रेम चाहिए, धन नहीं; जो धन का भूखा है वह संत नहीं है:

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं॥⁽⁸⁾

कबीर के अनुसार, माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।⁽⁹⁾
वह अपने लिए स्पष्ट कहते हैं:

मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज॥⁽¹⁰⁾

संत किसी से रुपया-पैसा, ज़मीन-जायदाद आदि कोई भी चीज़ न तो कभी माँगते हैं, न स्वीकार करते हैं; परंतु अपने शिष्यों का धन संगत की सेवा में अवश्य लगवा देते हैं ताकि उनकी कमाई सफल हो। कबीर ने गुरु और शिष्य के आदर्शों को एक दोहे में इस प्रकार प्रकट किया है:

सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछू न लेय॥⁽¹¹⁾

कबीर के कुछ पदों से पता चलता है कि कभी-कभी उन्हें तथा परिवार के सदस्यों को भुने हुए चने खाकर गुज़ारा करना पड़ता था परंतु इसकी उन्हें कोई शिकायत न थी। संतोष ही कबीर का सबसे बड़ा धन था। उनका कथन है: जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह॥⁽¹²⁾ और कबीर खुद अपनी पूरी ज़िंदगी ऐसे शहंशाह रहे जिन्हें न किसी बात की चिंता थी और न किसी वस्तु की कामना।

कबीर के छोटे-से परिवार में उनकी पत्नी लोई, पुत्र कमाल और पुत्री कमाली थे। घर का वातावरण भक्ति और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण था। लोई ने कबीर साहिब से नामदान प्राप्त किया था और यह माना जाता है कि वह एक आज्ञाकारी शिष्या थीं जिसने अपनी होंमैं को त्यागकर अपने गुरु की सच्ची शरण ली थी।

एक दिन कबीर के यहाँ एकाएक कुछ मेहमान आ गए। बरसात के दिन थे और लगातार बारिश के कारण कबीर हाट में जाकर अपना कपड़ा

न बेच पाए थे। घर में आटा-दाल इतनी न थी कि मेहमानों में पूरी हो सके। कबीर ने लोई से कहा कि किसी पंसारी से थोड़ा आटा और दाल उधार ले आए, उसका मोल दो-चार दिन में कपड़ा बिकने पर चुका दिया जाएगा। परंतु एक गरीब जुलाहे को कौन उधार देता! लोई कुछ पंसारियों की दुकानों पर गई पर कोई भी उधार पर सामान देने को राज़ी न हुआ। आखिर एक बनिए ने सामान देना स्वीकार किया लेकिन शर्त रखी कि लोई रात उसके घर पर बिताए। यह सुनकर लोई हैरान रह गई। एकाएक कुछ कह न सकी। उसकी खामोशी को स्वीकृति समझकर बनिए ने आटा-दाल दे दिया।

शाम को मेहमानों के जाने के बाद लोई ने बनिए की बात कबीर साहिब को सुनाई। उन्होंने बनिए को समझाकर सही मार्ग पर लाने का निश्चय किया और लोई को हुक्म दिया कि बनिए के घर जाने के लिए तैयार हो जाए।

दिन भर बारिश होती रही थी और अब भी छींटे गिर रहे थे। कबीर ने लोई को कंबल ओढ़ाकर अपने कंधों पर उठा लिया और उसे बनिए के घर ले गए।

बनिए को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि न तो लोई के वस्त्र भीगे थे और न ही पैरों में कीचड़ लगा था। पूछने पर लोई ने बताया कि उसके पति उसे कंबल से ढककर अपने कंधे पर बैठाकर लाए हैं। बनिया भौचक्का रह गया। यद्यपि लोई के मुख की शांत निर्मलता देखकर वह प्रभावित हुआ था, उसे इस बात पर विश्वास न हो सका कि कबीर खुद लोई को उठाकर लाए हैं। परंतु जब लोई ने बताया कि उसे वापस ले जाने के लिए कबीर बाहर दालान में बैठे हैं तो बनिए को अपनी गिरी हुई अवस्था और कबीर की महानता का एहसास हुआ। वह लोई के पैरों में गिर पड़ा और माफ़ी माँगते हुए कबीर साहिब के पास ले चलने की विनती करने लगा। कबीर ने बनिए को क्षमा कर दिया तथा इस प्रकार उनके संपर्क में आकर कुछ ही समय में वह उनका शिष्य बन गया। जीवों को अपने पास खींचने का संतों का अपना ही तरीका होता है।

कबीर के व्यक्तित्व, पवित्र जीवन और प्रभावशाली वाणी के फलस्वरूप अमीर-गरीब, विद्वान-अनपढ़ सब वर्गों के लोग उनके पास आने लगे। राजपूत राजा वीर सिंह बघेला उनके प्रेमी शिष्यों में से एक था। कहते हैं कि वीर सिंह ने एक विशाल राजमहल बनवाया था और महल में रहना शुरू करने से पहले प्रजा के देखने के लिए उसे खोल दिया था। कबीर जो उस समय शहर में थे, अपने शिष्यों की इच्छा का मान रखने के लिए महल देखने गए। जब वह लौट रहे थे तो राजा वीर सिंह से मुलाक़ात हो गई। वीर सिंह ने पूछा, “आपको मेरा महल कैसा लगा?” कबीर साहिब ने उत्तर दिया कि महल तो अच्छा है पर इसमें दो दोष हैं। यह पूछे जाने पर कि वे दोष क्या हैं, उन्होंने जवाब दिया, “एक तो यह कि महल जर्जर होकर गिर जाएगा, दूसरा यह कि बनवानेवाले को इसे छोड़ देना होगा।”

राजा को बुरा लगा। उसने कहा कि आप दिखते तो महात्मा हैं, फिर ऐसे अशुभ वचन क्यों बोलते हैं? कबीर ने उत्तर दिया, “इस संसार का नियम है कि जो सूरज उगता है, वह अस्त भी होता है; जो दिन आता है, उसे जाना भी पड़ता है; जो कुछ बनाया जाता है, वह टूटता भी अवश्य है और जो जन्म लेता है, उसे मरना भी पड़ता है।” कबीर साहिब के वचनों का राजा वीर सिंह पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह उनके सत्संग में आने लगा और कुछ ही समय में उनका शिष्य बन गया।

कबीर निर्भीक और स्पष्टवादी थे। कट्टरता और रूढ़िवाद के साथ उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। एक बार कुछ पंडित गंगाजल की महिमा का बखान करते हुए उनसे बोले कि गंगा का पानी घोर पापियों के पाप का कलुष धोकर उन्हें पवित्र कर सकता है। यह सुनकर कबीर ने अपने लोटे में रखा गंगा का पानी पंडितों को पीने के लिए दिया। इस पर पंडित बहुत क्रुद्ध हुए। एक निम्न जुलाहे का यह हौसला कि उच्च ब्राह्मणों को अपने अपवित्र लोटे से पानी पीने को कहे! कबीर ने कहा, “अगर गंगाजल मेरे लोटे को पवित्र न कर सका तो यह पापियों के मन पर चढ़े कलुष को कैसे धो सकता है?”

कबीर में एक अनुपम आकर्षण था और अनंतदास आदि भक्त कवियों के अनुसार वह अति रूपवान थे। वह इतने प्रभावशाली थे कि कई बार उनके विरोधी तक उनके सामने मंत्रमुग्ध हो शांत हो जाते थे। अपार रूहानी शक्ति के स्वामी होते हुए भी कबीर नम्र और अभिमान रहित थे।

कहते हैं कि सर्वानंद नामक एक प्रकांड विद्वान अनेक पंडितों और विद्वानों को शास्त्रार्थ में हरा चुका था। उसने अपना नाम सर्वानंद से बदलकर सर्वजित रख लिया था। उसकी माता अपनी काशी-यात्रा में एक बार कबीर के सत्संग में आई और उनसे नामदान (दीक्षा) ले गई। पुत्र के पांडित्य की व्यर्थता को समझते हुए उसने एक दिन सर्वजित से कहा कि वह उसे तभी सर्वजित मानेगी यदि वह कबीर को शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा।

माता के वचन सर्वजित को चुभ गए। एक बैल पर अपने शास्त्रों को लादकर वह बनारस आया। कबीर के घर के सामने पहुँचकर उसने पुकारा, “क्या कबीर का घर यही है?” कबीर कहीं बाहर गए हुए थे। उनकी पुत्री कमाली पुस्तकों से लदे बैल को देखकर मुसकराकर बोली, “यह कबीर का घर नहीं है। उनका घर तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी नहीं मिला”:

कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल¹।

पाँव न टिके पपीलि² का, पंडित लादे बैल॥⁽¹³⁾

अर्थात् कबीर का घर सिखर (खंडों-ब्रह्मांडों से ऊपर धुरधाम) पर है जिसका मार्ग इतना फिसलन-भरा है कि चींटी के पैर भी उस पर जम नहीं सकते परंतु पंडित तो लदे हुए बैल के साथ वहाँ पहुँचना चाहता है।

सर्वजित सहसा कोई उत्तर न दे सका। इतने में कबीर साहिब आ गए। सर्वजित की चुनौती को सुनकर उन्होंने कहा कि मैं तो एक साधारण

1. सिलहिली गैल=फिसलन-भरा रास्ता 2. चींटी

अनपढ़ जुलाहा हूँ और इतनी पुस्तकें तो मैंने जीवन में कभी देखी भी नहीं। लेकिन सर्वजित शास्त्रार्थ करने के लिए ज़िद्द करता ही रहा। कबीर के पूछने पर उसने अपनी माता की बात बताई। इस पर कबीर ने कहा, “भाई, मैं जानता हूँ कि शास्त्रार्थ में आपसे नहीं जीत सकता। मैं अपनी हार मानता हूँ।” सर्वजित बोला कि अगर हार मानते हैं तो लिखकर दे दें। कबीर ने कहा, “मैं तो लिखना भी नहीं जानता, सिर्फ अपने दस्तखत कर सकता हूँ। आप खुद लिख दें, मैं दस्तखत कर दूँगा।”

सर्वजित ने लिखा, ‘सर्वजित ने कबीर को हरा दिया’ और कबीर ने अपने हस्ताक्षर कर दिए। परंतु घर लौटने पर जब सर्वजित ने कागज़ अपनी माता को दिखाया तो देखा कि उसमें लिखा था, ‘कबीर ने सर्वजित को हरा दिया।’ अपने लिखने में हुई गलती को सुधारने के लिए सर्वजित वापस काशी गया और कबीर से एक नई परची पर दस्तखत करवाकर लौटा। परंतु इस बार भी परची पर लिखा था कि कबीर ने सर्वजित को हरा दिया। वह फिर से बनारस गया लेकिन इस बार भी लिखा हुआ वही निकला। हैरान हो सर्वजित अपनी माता से बोला, “यह कबीर तो अवश्य कोई जादूगर है। वह कुछ कर देता है और मेरा लिखा हुआ बदल जाता है।”

उसकी माता कबीर की महानता से परिचित थी। बोली, “बेटा, कबीर एक संत हैं, प्रभु के प्रेमी हैं, जादूगर नहीं। उनके सामने मन के दोष एक ओर हट जाते हैं और सचाई प्रकट हो जाती है। उनसे प्रभावित होकर न चाहते हुए भी तुम बार-बार वही बात लिख देते हो। कबीर को परास्त करने के लिए तुम्हें चाहिए कि यह मालूम करो कि उनका उपदेश क्या है।” पुत्र को खामोश देखकर वह फिर बोली, “देखो, वह कितने विनम्र हैं, अपनी अज्ञानता को कितनी आसानी के साथ स्वीकार करते हैं। उनको जीतने के लिए तुम्हें भी दीनता अपनानी होगी क्योंकि अभिमान कभी नम्रता पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।”

सर्वजित एक बार फिर कबीर के पास गया परंतु इस बार उसके साथ पुस्तकों से लदा बैल नहीं था। कबीर साहिब की कुछ दिनों की संगति ने उसे बदल दिया। वापस आकर उसने अपनी माता का आभार माना जिसने

उसे कबीर के पास जाने की प्रेरणा दी। वह बोला, “माँ, कबीर साहिब सच में महान हैं। मैंने उनके चरणों में झुककर अपनी हार मान ली और उन्होंने मुझे नामदान देकर अपने शिष्यों में शामिल कर लिया।”

शुरू में विद्वानों का विचार था कि कबीर जीवन भर काशी में ही रहे। परंतु अब इस बात के काफ़ी सबूत मिलते हैं कि अपने लंबे जीवनकाल में उन्होंने दूर-दूर की यात्राएँ कीं। इनमें उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और पंजाब भी आते हैं। महाराष्ट्र के कुछ विद्वानों के अनुसार वह पंढरपुर भी गए थे।

कबीर ने अपनी रचनाओं में कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, बुंदेलखंडी, पंजाबी, मराठी और गुजराती। उन्होंने संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। स्पष्ट है कि अन्य संतों की तरह कबीर ने भी अपना संदेश देने के लिए जगह-जगह की यात्रा की। कबीर-पंथियों के अनुसार वह बलख, बुखारा, बग़दाद तथा मध्य-पूर्व के अन्य शहरों में गए। यद्यपि कबीर साहिब के कुछ दोहों से ऐसा आभास होता है कि वह मक्का भी गए थे पर उनकी अरब देशों की यात्रा का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।

गुजरात के कुछ विद्वानों की खोज से पता चलता है कि कबीर ने अपनी लंबी यात्राएँ पैंतीस वर्ष की आयु से शुरू कीं और कई बार गुजरात गए। द्वारका में उन्होंने जैसलमेर के राजकुमार चतुर सिंह को नामदान दिया जो आगे चलकर ज्ञानी जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुजरात के भक्त-कवि दीनदरवेश के अनुसार कबीर साहिब ने पाटन में राजा जगजीवन तथा पालनपुर में राजकुमार अली शेरखान को (जो बाद में पालनपुर का नवाब बना) नामदान दिया। इसी प्रकार द्वारका में वहाँ के बहुत बड़े व्यापारी शोभन सेठ और एक प्रमुख ब्राह्मण पुरोहित चौबे राधूमल को दीक्षा दी। गुजरात में कबीर साहिब से संबंधित सौ से अधिक स्मृति-चिह्न मिलते हैं।

जिस प्रकार कबीर साहिब धर्मदास को संतों के मार्ग पर लाए, उससे पता चलता है कि वह कभी-कभी जीवों को अपनी ओर लाने का कोई

अनोखा ढंग अपनाते थे। धर्मदास एक बहुत बड़ा साहूकार था। उसकी पूजा-पाठ तथा कर्मकांड में गहरी रुचि थी। एक बार वह गंगा के किनारे पूजा में बैठा था कि कबीर उधर से निकले। वह रुके, पूजा में रखी छोटी और बड़ी मूर्तियों की ओर देखा और धर्मदास से बोले, “तुम्हारे सामने रखे ये बड़े पत्थर क्या आधा सेर के बाट हैं और छोटे पाव भर के?”

अपने ठाकुरों के प्रति कबीर के वचन सुनकर धर्मदास को क्रोध आया। कबीर साहिब ने फिर पूछा, “यह बताओ कि क्या ये तुमसे कभी बोले हैं? तुम्हारी पूजा का जवाब दिया है?” और इसके पहले कि धर्मदास अपनी नाराज़गी प्रकट करता, कबीर साहिब चुपचाप चले गए। कबीर के वचन धर्मदास के मन में गूँजने लगे। सोचने लगा कि सच में ही इन ठाकुरों ने आज तक मेरी पूजा का कोई जवाब नहीं दिया।

कुछ महीनों बाद एक दिन धर्मदास और उसकी पत्नी आमना हवन कर रहे थे। एकाएक कबीर साहिब आए और बोले, “धर्मदास, तुम बड़े पापी हो।” आमना अपने पति की बुराई न सुन सकी और तेज़ी के साथ बोली, “मेरे पति कैसे पापी हो सकते हैं? तुम ही पापी हो।” कबीर ने कहा, “ज़रा इन लकड़ियों को तोड़कर देखो जो तुम हवन में जला रहे हो। ये कीड़ों से भरी पड़ी हैं। तुम कितने जीवों की हत्या कर रहे हो और किस बात के लिए?”

धर्मदास ने जब लकड़ियों को तोड़ा तो देखा कि उनकी दरारों में असंख्य कीड़ों ने अपने घर बना रखे हैं। यह देखकर उसे बहुत दुःख हुआ। उसने सिर उठाकर देखा परंतु कबीर साहिब तब तक चले गए थे। उसे याद आया कि यही महात्मा मुझसे एक बार पहले भी मिल चुके हैं। इस बार वह उनसे बात करना चाहता था पर निराश होना पड़ा। उसने आमना को दोष देते हुए कहा, “बड़े समय के बाद यह महात्मा आए थे और तूने दुर्वचन कहकर उन्हें भगा दिया।”

कबीर साहिब का शांत तेजस्वी रूप धर्मदास के मन में समा गया। वह उनसे मिलने के लिए व्याकुल हो उठा। आमना अपना दोष स्वीकार

न करते हुए बोली, “आप यज्ञ करवाइए और सब साधुओं को मुफ्त भोजन करने के लिए न्योता दीजिए। यह साधु भी ज़रूर आ जाएगा क्योंकि गुड़ पर तो मक्खियाँ हमेशा ही आती हैं।”

धर्मदास ने एक-एक करके बनारस तथा अन्य धर्मस्थानों में कई यज्ञ किए। हज़ारों साधुओं ने आकर खाना खाया परंतु कबीर साहिब उनमें नहीं थे। आखिर धर्मदास ने एक बहुत बड़ा यज्ञ मथुरा में जमुना के तीर पर किया परंतु कबीर साहिब न आए। धर्मदास दुःखी और हताश हो गया। उसने यज्ञों में बहुत धन खर्च कर दिया था, व्यापार बरबाद हो रहा था और दरिद्रता उसे घेरने लगी थी। न तो दुनिया का धन पास रहा, न मालिक की भक्ति का धन मिला। अत्यंत दुःखी होकर उसने अपने जीवन का अंत करने का निश्चय किया। वह शहर से दूर नदी के किसी सुनसान तीर पर डूबने के लिए जा रहा था कि उसे एक परिचित-सी आकृति दिखाई दी। यह तो वही तेजस्वी स्वरूप था, वही कृपापूर्ण मुसकान उसके मुख पर थी। धर्मदास कबीर साहिब के चरणों में गिर पड़ा और बोला, “महीनों से मैं आपको ढूँढ़ रहा हूँ। जगह-जगह जाकर मैंने कई यज्ञ किए, मेरा सारा रुपया खर्च हो गया पर आप न आए।...”

कबीर साहिब ने मिठास के साथ कहा, “धर्मदास, ऐसा ही होना था। तुम्हारी पत्नी ने कहा था कि गुड़ पर मक्खियों का ढेर लग जाता है। अगर मैं पहले आता तो तुम सोचते कि प्रभु के प्रेमी धन से जीते जा सकते हैं।” फिर कबीर साहिब ने धर्मदास को प्रेमपूर्वक उठाते हुए कहा, “उठो, धर्मदास। याद रखो कि जो लोग धन के पीछे भूखे जानवरों की तरह दौड़ते हैं, वे प्रभु के सच्चे भक्त नहीं होते। सच्चा गुरु कभी अपने शिष्यों से किसी वस्तु की कामना नहीं करता। अपने उपदेश के लिए वह कोई भेंट स्वीकार नहीं करता। अगर करता है तो उसे गुरु मत मानो। सतगुरु दाता होता है, माँगता नहीं। धन-संपत्ति तो वृक्ष की छाया के समान है जो कभी एक जगह नहीं ठहरती। चिंता न करो, मैं तुम्हें नाम का वह धन दूँगा जिसके सामने तीनों लोकों की संपदा भी तुच्छ है।”

कबीर साहिब ने धर्मदास और उसकी पत्नी आमना को नाम की बख्शिश की। धर्मदास ने उनकी संगति का लाभ उठाया, नाम का अभ्यास किया और कबीर साहिब ने उसे अपना जानशीन बनाया।

कबीर का किसी व्यक्ति, जाति, धर्म या समुदाय से कोई द्वेष नहीं था। अन्य सब संतों के समान उन्होंने भी जाति-पाँति के भेदभाव को महत्त्व नहीं दिया। जातियाँ मनुष्य की बनाई हुई हैं जिनसे बँधकर हम इनसान-इनसान में भेद करते हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि आत्मा की कोई जाति नहीं है, सब जीव उस एक परमज्योति से उत्पन्न हुए हैं, न कोई ऊँचा है न नीचा, न कोई अच्छा है न बुरा:

एक जोति थें सब उतपनाँ, कौन बाँहन कौन सूदा। ॥⁽¹⁴⁾

हर एक मनुष्य पाँच तत्त्वों का पुतला है और हर एक के अंदर एक-से मांस, लहू आदि हैं। लेकिन इस बात को भूलकर मनुष्य ने अपने आप को अलग-अलग जातियों में बाँट लिया है।

एक ही मिट्टी के बने पुतलों में से कोई खुद को एक जाति का कहता है तो कोई दूसरी का। कबीर कहते हैं: बेगर बेगर² नाम धराये, एक माटी के भाँडे ॥⁽¹⁵⁾

कबीर साहिब ने अपने जीवनकाल में कभी किसी जाति के व्यक्ति को नीचा या ऊँचा नहीं माना। उनके अनुसार कोई भी मनुष्य नीचा नहीं है, अगर कोई नीचा है तो वही है जिसके हृदय में प्रभु की भक्ति नहीं है, कहै कबीर मधिम³ नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि राँम न होई ॥⁽¹⁶⁾ अपना दृष्टान्त देते हुए वह कहते हैं कि मेरी निम्न जाति को लेकर लोग मेरा उपहास और तिरस्कार करते हैं, परंतु मैं तो इस जाति को उत्तम मानता हूँ क्योंकि इसमें जन्म लेकर मैंने प्रभु की भक्ति की है:

कबीर मेरी जात कउ सभ को हसनेहार ॥

बलिहारी इस जात कउ जिह जपिओ सिरजनहार ॥⁽¹⁷⁾

जब प्रभु की कोई जाति नहीं है तो उसके भक्तों और प्रेमियों की क्या जाति हो सकती है? संत कबीर उपदेश देते हैं कि मनुष्यों को जाति-पाँति के कीचड़ में नहीं डूबना चाहिए:

जात नहिं जगदीश की, हरिजन की कहां होय।

जात पांत के कीच में, डूब मरो मत कोय ॥⁽¹⁸⁾

रूढ़िवाद के गढ़ बनारस के छोर पर बैठकर कबीर साहिब नाम के अंतर्मुख अभ्यास का उपदेश दे रहे थे। सदियों से बनारस मूर्तिपूजा, दान, पुण्य, स्नान, व्रत, पाठ, यज्ञ, हवन आदि बाहरमुखी क्रियाओं का केंद्र रहा था। लोग कर्मकांड में डूबे हुए थे। उन्हें इनसे हटाकर नाम के अभ्यास की ओर लाना आसान न था। उनको जाति-पाँति के भेदभाव, धर्माधता और अंधविश्वास से जाग्रत करने के लिए कबीर ने सख्त लफ्ज़ों का प्रयोग किया है। वह जानते थे कि कोमल वचनों द्वारा कट्टर और कठोर हृदयों पर प्रभाव नहीं पड़ सकता, चंद्रमा की किरणें बर्फ की चट्टानों को नहीं पिघला सकतीं। कबीर के मन में किसी जाति या धर्म के लोगों के प्रति कोई द्वेष भाव नहीं था। उनके शिष्यों में हिंदू और मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र, पंडित और मुल्ला सभी तरह के लोग शामिल थे। उनके इस प्रभाव के कारण रूढ़िवादी पंडित और मौलवी दोनों ही उनसे द्वेष करने लगे।

परंतु बगैर किसी झिझक के कबीर मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, उपवास, नदियों और सरोवरों में स्नान, संन्यास और काया-क्लेश आदि की परंपराओं पर आघात करते रहे। वह पूछते थे कि अगर मालिक केवल मंदिर या मसजिद में ही रहता है तो बाक़ी सारे संसार में कौन व्याप्त हो रहा है? अगर हरि दक्षिण में और खुदा पश्चिम में है तो बाक़ी दिशाओं में कौन है? ब्राह्मण साल में चौबीस एकादशियों और क़ाज़ी रमज़ान के दिनों में व्रत रखते हैं तो बाक़ी दिन भी क्या प्रभु के बनाए हुए और उतने ही पवित्र नहीं हैं? जगन्नाथपुरी में स्नान करने और मसजिदों में सिर झुकाने, तीर्थयात्रा और हज पर जाने का क्या लाभ है जब दिल कपट से

1. शूद्र 2. बेगर बेगर=भिन्न-भिन्न 3. मंदा

भरा हुआ है? यह याद रखना चाहिए कि सब स्त्री-पुरुष उस प्रभु के बनाए हुए हैं और समान हैं। कबीर कहते थे कि मैं राम और अल्लाह दोनों का पुत्र हूँ और सभी महात्माओं और पीरों का आदर करता हूँ। सब स्त्री-पुरुषों के लिए मेरा समान उपदेश है कि उस एक की शरण लो, नाम का अभ्यास करो, भवसागर को तरने का यही एक मार्ग है:

अलहु एक मसीत बसत है अवर मुलख किस केरा॥
 हिंदू मूरत नाम निवासी दुह मह तत न हेरा¹॥
 अलह राम जीवउ तेरे नाई॥ तू कर मिहरामत² साई॥
 दखन देस³ हरी का बासा पछिम अलह मुकामा॥
 दिल मह खोज दिलै दिल खोजहो एही ठउर मुकामा॥
 ब्रह्मन गिआस⁴ करह चउबीसा काजी मह रमजाना॥
 गिआरह मास पास कै राखे एकै माहे निधाना॥
 कहा उडीसे⁵ मजन कीआ किआ मसीत सिर नांए॥
 दिल मह कपट निवाज⁶ गुजारै किआ हज काबे जांए॥
 एते अउरत मरदा साजे ए सभ रूप तुम्हारे॥
 कबीर पूंगरा⁷ राम अलह का सभ गुर पीर हमारे॥
 कहत कबीर सुनहो नर नरवै⁸ परहो एक की सरना॥
 केवल नाम जपहो रे प्रानी तब ही निहचै तरना॥⁽¹⁹⁾

प्रभु को रिझाने के लिए लोग लाल, पीले, हरे, गेरुए वस्त्र पहनते हैं, शरीर पर छापे, तिलक आदि लगाते हैं, गले में तरह-तरह की मालाएँ पहनते हैं तथा अनेक प्रकार के भेष धारण करते हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि ऐसे लोगों ने प्रभु को एक खिलौना बना लिया है, माला तिलक पहारि मन मानाँ, लोगनि राँम खिलौनाँ जाँनाँ॥⁽²⁰⁾

1. देखा 2. दया-मेहर 3. दखन देस=दक्षिण दिशा में 4. एकादशी
 5. जगन्नाथपुरी 6. नमाज़ 7. बेटा 8. नारी

कबीर की स्पष्टवादिता तथा उनके ऊँचे रूहानी संदेश का जवाब न तो बनारस के पंडितों के पास था और न असहिष्णु मुल्लाओं के पास। कबीर का उपदेश लोगों को रूढ़िवाद और धार्मिक रीति-रिवाजों से हटाकर प्रभु की अंतर्मुख आराधना की ओर प्रेरित करता था। इससे पुरोहितों आदि की रोज़ी पर असर पड़ने लगा। मौलवियों और पंडितों ने कबीर को सताने में कोई कसर न छोड़ी। परंतु संत अपने संदेश को हमेशा स्पष्ट रूप से बिना किसी भय या संकोच के देते रहे हैं। कबीर साहिब जब अपने पथ से विचलित न हुए तो उनके विरोधियों ने राजा की शरण ली। परंतु बनारस का राजा खुद कबीर साहिब का प्रशंसक था और माना जाता है कि वह उनसे नामदान प्राप्त कर चुका था।

पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में सुलतान सिकंदर लोधी बनारस आया। कहते हैं कि पुरोहितों और मुल्लाओं के प्रभाव में आकर बादशाह सिकंदर लोधी ने कबीर पर कई जुल्म किए। कबीर-पंथी तथा अन्य ग्रंथों में कई विवरण मिलते हैं कि उन पर अत्याचार किए गए लेकिन कबीर साहिब दृढ़ रहे।

क्राज़ियों और पंडितों की शिकायत पर सुलतान ने कबीर को अपने दरबार में बुलाया। कबीर साहिब ने हाथ उठाकर सुलतान को सलाम किया जैसा कि आम लोगों को किया जाता है। क्राज़ी के यह पूछने पर कि तुमने शहंशाह सिकंदर लोधी को सिर झुकाकर आदाब क्यों नहीं किया तो उन्होंने जवाब दिया कि वह एक ही शहंशाह को जानते हैं और उसी को सिर झुकाते हैं। क्राज़ी के पास इसका कोई उत्तर न था क्योंकि इसलाम के अनुसार सच्चे मुसलमान को चाहिए कि एक खुदा के सिवाय और किसी के आगे सिर न झुकाए।

क्राज़ी ने इलज़ाम लगाया कि कबीर हिंदुओं के राम और मुसलमानों के खुदा को एक बताते हैं। इस पर कबीर साहिब ने कहा, “जो ताक़त इनसान के शरीर में बैठकर बोल रही है वह न हिंदू है, न मुसलमान। वह अल्लाह हर घट में मौजूद है। उसकी अपने घट में तलाश करो। हिंदू और मुसलमान दोनों का कर्ता वह एक ही है; पर लोग उसका भेद पाने के बजाय उसके नाम पर आपस में झगड़ते हैं।”

पंडितों ने आरोप लगाया कि निम्न जाति का होते हुए भी कबीर हिंदुओं के मंदिरों, मूर्तियों तथा पूजा-पाठ की निंदा करता है। क्राज़ी ने कहा कि कबीर हज, काबा और रोज़े के खिलाफ़ बोलता है; वह मज़हब का दुश्मन है, काफ़िर है। सुलतान का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उसने कबीर से कहा कि या तो वह अपनी बातों के लिए माफ़ी माँगे या सज़ा के लिए तैयार हो जाए। पर कबीर निडर और निश्चिंत थे। उन्होंने माफ़ी माँगने से इनकार कर दिया क्योंकि प्रभु की भक्ति कोई जुर्म नहीं है।

धर्मांध की एकमात्र दलील तलवार होती है। सुलतान ने हुक्म दिया कि कबीर को नदी में डुबो दिया जाए। कबीर ने कहा, “हे प्रभु, मैं हमेशा तेरी शरण ही चाहता हूँ। लेकिन दुनिया तेरे भक्तों को अपना दुश्मन मानती है। जीवन और मरण दोनों में तू ही मेरा सहारा है।”⁽²¹⁾

कबीर के हाथ-पैर जंजीर से बाँधकर उन्हें नदी में डाल दिया गया। परंतु कहा जाता है कि लहरों ने जंजीर को तोड़ दिया और कबीर पानी की सतह पर आ गए। क्राज़ी और पंडित बोले, “शहंशाह, यह सब कबीर साहिब का छल है क्योंकि यह जादूगर भी है।” परंतु कबीर प्रभुप्रेम में लीन थे, वह बोले, “हे प्रभु, संसार में मेरा कोई संगी और साथी नहीं है। जल और थल में तू ही मेरा रखवाला है।” श्री आदि ग्रन्थ में सम्मिलित एक पद में कबीर कहते हैं:

गंग गुसाइन गहिर गंभीर॥ जंजीर बांध कर खरे। कबीर॥
मन न डिगै तन काहे कउ डराए॥ चरन कमल चित रहिओ समाए॥
गंगा की लहर मेरी टुटी जंजीर॥ म्रिगछाला पर बैठे कबीर॥
कह कबीर कोऊ संग न साथ॥ जल थल राखन है रघुनाथ॥⁽²²⁾

सुलतान के आदेश पर कबीर को बाँधकर मस्त हाथी के सामने डाल दिया गया। महावत ने काफ़ी कोशिश की कि हाथी पैर बढ़ाकर कबीर

को कुचल दे परंतु अंकुश की चोटों के बावजूद हाथी अपने स्थान पर खड़ा रहा। वह भला प्रभु के प्रेमी को कैसे कुचल सकता था? उसके हृदय में भी तो परमात्मा निवास करता था। कबीर के ही शब्दों में वा कै रिदै बसै भगवान॥⁽²³⁾

इसके बाद कबीर को जलती हुई चिता में फेंका गया परंतु उसमें से भी वह सकुशल निकल आए। प्रियादास के अनुसार उस समय कबीर का मुख अनुपम तेज से चमक रहा था। उपस्थित जनसमूह स्तब्ध-सा खड़ा था। सिकंदर लोधी ने क्राज़ी और पुरोहितों की ओर देखा। वे खामोश थे। सुलतान ने कबीर के बंधनों को खोलने का हुक्म दिया और उठकर उनके पास आया। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। कबीर साहिब की दृष्टि में करुणा और दया थी। सुलतान की नज़र झुक गई, उसके चेहरे पर दुःख और पश्चात्ताप के भाव थे। आखिर वह बोला, “मुझे आपकी अज़मत (महानता) का पता न था। आप एक ऊँचे दर्जे के फ़क्रौर हैं, ख़ुदा के बंदे हैं। मुझे माफ़ कर दें।”

सिर झुकाए, नज़र नीची किए सुलतान कबीर साहिब के आगे एक साधारण अपराधी के समान खड़ा था। एक दयापूर्ण मुसकान के साथ कबीर ने कहा, “तुम्हारा कोई दोष नहीं। ख़ुदा को यही मंज़ूर था। जो वह ठीक समझता है, वही करता है। सुलतान! सिर उठाओ, जो हो चुका उसे भूल जाओ। ख़ुदा रहम और प्यार का दरिया है। सच्चा पछतावा करनेवालों की उसके दरबार में क़द्र होती है। फ़िक्र न करो, वह तुम्हें माफ़ करेगा।”

सुलतान हैरान खड़ा था। कबीर साहिब के मुख पर नाराज़गी के कोई चिह्न न थे, उनके वचनों में ज़रा भी कड़वाहट न थी। सभी संतों के समान कबीर साहिब के हृदय में भी अपने निंदकों और सतानेवालों के प्रति कोई द्वेष भाव नहीं था। उन्होंने सुलतान को क्षमा कर दिया। कबीर कोमल-हृदय और दयालु थे और उनके ही शब्दों में छिमा साधु का खेल है...।⁽²⁴⁾

कहते हैं कि सिकंदर लोधी ने कबीर को धन और ज़मीन भेंट करनी चाही परंतु उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

लगभग सौ वर्ष तक कबीर साहिब अपने विचारों के द्वारा बनारस के रूढ़िवादियों को झकझोरते रहे। लेकिन एक अंतिम आघात अभी बाक़ी था। कबीर की आयु एक सौ बीस वर्ष के करीब हो गई थी। एक दिन उन्होंने घोषणा की कि मेरा अंतिम समय आ गया है और मैं मगहर में जाकर प्राण त्यागूँगा।

मगहर को एक दुर्भाग्यपूर्ण नगर माना जाता था। लोगों में विश्वास था कि जो व्यक्ति काशी में प्राण त्यागता है, उसे बैकुंठ प्राप्त होता है परंतु जो मगहर में मरता है, उसे अच्छी गति नहीं मिलती तथा उसका अगला जन्म गधे का होता है।

कुछ विद्वानों और पंडितों ने कबीर साहिब को समझाना अपना धर्म समझा। उन्होंने कहा, “लोग तो अपने अंतिम समय में दूर-दूर से चलकर बनारस आते हैं ताकि इस नगरी में मरकर मुक्ति प्राप्त करें। हे कबीर! तूने सारी उम्र पूजा-पाठ और धर्मशास्त्रों की आलोचना की है। इस पाप से मुक्त होने का एकमात्र उपाय पवित्र काशी नगरी में प्राण त्यागना है।”

कबीर का उत्तर स्पष्ट और दृढ़ था कि कठोर-हृदय पापी यदि बनारस में मरेगा तो भी वह नरक से नहीं बच सकेगा। परंतु परमात्मा के भक्त संत यदि मगहर में मरते हैं तो वे खुद ही मुक्त नहीं होते बल्कि अपने साथ सब शिष्यों को भी तार लेते हैं:

मनहो कठोर मरै बनारस नरक न बाँचिआ जाई॥

हर का संत मरै हाड़ुंबै¹ त सगली सैन² तराई॥⁽²⁵⁾

इसी प्रसंग में कबीर साहिब ने आगे कहा कि नरक क्या होता है और बेचारे स्वर्ग की क्या बिसात है? संतों ने तो दोनों को रद्द किया है। अपने गुरु के प्रसाद से मैं स्वर्ग और नरक में से किसी का मोहताज नहीं हूँ। अब तो मैं सिंहासन पर जा बैठा हूँ, परमात्मा से जा मिला हूँ। कबीर और परमात्मा दोनों इस प्रकार एक हो गए हैं कि अब कोई उनमें भेद नहीं कर सकता:

कवन नरक किआ सुरग बिचारा संतन दोऊ रादे॥
हम काहू की काण न कढते¹ अपने गुर परसादे॥
अब तउ जाए चढे सिंघासन मिले है सारिंगपानी॥
राम कबीरा एक भए है कोए न सकै पछानी॥⁽²⁶⁾

अपने निश्चय के अनुसार कबीर बनारस को छोड़कर मगहर की ओर चल पड़े। यह उनका अंतिम लंबा सफ़र था। शिष्यों के लिए यह एक दुःख की घड़ी थी। प्रेम के जिस आनंद से कबीर साहिब ने उनके हृदयों को प्रफुल्लित किया था, वही प्रेम गुरु के भावी वियोग की पीड़ा के रूप में बदल रहा था। कबीर मार्ग में रुकते हुए, अपने शिष्यों को भजन-सुमिरन, नेक जीवन और हक्र-हलाल की कमाई का उपदेश देते हुए मगहर पहुँचे।

मगहर के साथ दो दुर्भाग्यपूर्ण बातें जुड़ी हुई थीं। एक तो वहाँ पानी की कमी थी और दूसरे वहाँ मरने पर दुर्गति होने का कलंक था। कबीर साहिब के मगहर पहुँचने पर ये दोनों दाग मिट गए।

मगहर के पास से बहनेवाली आमी नदी बारिश के एक-दो महीनों को छोड़कर बाक़ी समय सूखी रहती थी। कहते हैं कि कबीर के आने पर नदी बहने लगी और अब उसमें पूरे साल पानी रहता है। कबीर ने मगहर में चोला छोड़कर यह सिद्ध कर दिया कि संसार के सब स्थान समान हैं; न बनारस स्वर्ग का दाता है और न मगहर नरक का कारण।

एक दिन सुबह अपने शिष्यों को दर्शन देने के बाद कबीर अपनी कुटिया में चले गए तथा हुक्म दिया कि कोई अंदर न आए। जब दोपहर के बाद तक कबीर कुटिया से बाहर न आए तो उनके कुछ शिष्य अंदर गए। कबीर साहिब धरती पर लेटे हुए थे, उनके मुख पर शांतिपूर्ण आभा थी परंतु शरीर में जीवन के कोई चिह्न न थे। लहर जिस समुद्र से उठी थी, उसी में समा चुकी थी।

1. काण...कढते=मोहताज नहीं रह गए

1. मगहर 2. शिष्यरूपी सेना

सन 1518 में कबीर साहिब की आत्मा इस नश्वर जगत को छोड़कर परमपिता परमात्मा में विलीन हो गई। यद्यपि कबीर साहिब की अवस्था सौ वर्ष से अधिक थी, उनका मुख हमेशा रूहानी ज्योति से चमकता रहता था। अंतिम दिनों तक वह अपने शिष्यों को मार्गदर्शन देते रहे और आत्म-निर्भरता के लिए करघे पर काम करते रहे। उम्र या सेहत उनके रूहानी मिशन को पूरा करने में कभी बाधक न बन सकी। कबीर के अंतिम दिनों के पदों में भी वही स्फूर्ति और शक्ति देखने को मिलती है जो उनकी वाणी की हमेशा विशेषता रही।

कबीर साहिब ने हिंदू और मुसलमान दोनों की धार्मिक परिपाटियों का विरोध किया था। आप अकसर कहते थे: हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।⁽²⁷⁾ परंतु फिर भी उनके शिष्यों में उनके अंतिम संस्कार को लेकर मतभेद हो गया। राजा वीर सिंह बघेला के नेतृत्व में हिंदू कबीर के शव का अग्नि-संस्कार करना चाहते थे तो नवाब बिजलीखान और मुसलिम शिष्य उसे दफनाना चाहते थे। दोनों पक्षों में विवाद इतना बढ़ा कि झगड़े की नौबत आ गई।

उसी समय कुछ शिष्यों ने कबीर साहिब के शव की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। कहते हैं कि कपड़ा हटाने पर शव के स्थान पर वहाँ फूलों का ढेर मिला।

कबीर के महान जीवन का यह उचित अंत था क्योंकि इस महान संत ने भी अन्य सब संतों के समान कभी जाति और धर्म को मान्यता नहीं दी, मनुष्य के बनाए हुए इन भेदभावों को कभी स्वीकार नहीं किया। कबीर ने अपने निजी जीवन द्वारा समता और सहिष्णुता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उनके अनुसार मनुष्य की सच्ची महिमा जाति, कुल, धर्म के स्थान पर परमात्मा से मिलाप करने में है। कबीर के अपने शब्दों में, साधारण जुलाहा होते हुए भी वह प्रभु-मिलाप की श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त कर चुके थे:

ज्यूँ जल में जल पैसि¹ न निकसै, यूँ दुरि² मिलै जुलाहा॥⁽²⁸⁾

1. प्रवेश करके 2. दुलककर

संदेश

मध्यकालीन कवियों ने कबीर साहिब को एक महान भक्त और संत माना है। जबकि बीसवीं शताब्दी के विद्वानों और विचारकों ने कबीर साहिब को केवल एक समाज-सुधारक के रूप में देखा है। हालाँकि उनके जीवन का उद्देश्य केवल समाज-सुधार नहीं था बल्कि उनका मुख्य ध्येय केवल रूहानी या आध्यात्मिक था। फिर भी संतों की उपस्थिति का उनके आसपास के वातावरण पर सदाचारपूर्ण असर अवश्य पड़ता है। कबीर साहिब के जीवन और उपदेश की रूहानी सुगंध का प्रभाव उनके समय के समाज पर अवश्य पड़ा।

कबीर साहिब का ध्येय बाहरी परिस्थितियों को सुधारना नहीं बल्कि मनुष्य की आंतरिक उन्नति करके उसके स्वभाव और रुझान को बदलना था। उन्होंने लोगों को घृणा के स्थान पर प्रेम को, द्वेष के स्थान पर सहनशीलता को तथा संदेह के स्थान पर विश्वास को अपनाने और परमात्मा को बाहर ढूँढ़ने के बजाय अपने अंतर में खोजने की प्रेरणा दी। वह न तो उपदेशक थे और न दार्शनिक, न पंडित थे न विद्वान। वह हरि के जन थे, प्रभु के प्रेमी थे। उन्होंने अपने अंतर में परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था और वह औरों को भी प्रभुप्राप्ति के मार्ग पर लगाने की योग्यता रखनेवाले पूर्ण गुरु थे। उनका मार्ग बुद्धि और तर्क की उधेड़बुन का नहीं बल्कि इस संसार में रूहानी जीवन बिताने का मार्ग था।

कबीर साहिब के समकालीन संत पीपा का एक पद कबीर साहिब के जीवन और उपदेश के प्रभाव को प्रकट करता है:

जो कलि मांझ कबीर न होते।
 तौ लै बेद अरु कलिजुग मिलि करि भगति रसातलि देते॥...
 हम से पतित कहा कहि रहते थे कौन प्रतीत मन धरते।
 नानां वानी देखि¹ सुनि स्रवन बहौ मारग अणसरते॥
 त्रिगुण रहत भगति भगवंत की तिहि बिरला कोई पावै।
 दया होइ जोई कृपानिधान की तौ नाम कबीरा गावै॥...
 भगति प्रताप राख्यबे कारन निज जन-जन आप पठाया।
 नाम कबीर साच परकास्या तहां पीपै कछु पाया॥⁽¹⁾

मोहसिन फ़ानी और अबुल फ़ज़ल ने कबीर साहिब को 'मुवाहिद' (एक ईश्वर को माननेवाला) कहा है। शेख़ सादुल्ला से (मृत्यु सन 1522), जो कबीर साहिब के ही वक्त्र में हुए थे, उनके पुत्र ने जब पूछा कि कबीर साहिब मुसलमान थे या काफ़िर तो उन्होंने जवाब दिया कि वह एक मुवाहिद थे। फिर यह पूछे जाने पर कि क्या मुवाहिद मुसलमान और काफ़िर दोनों से अलग हस्ती होता है तो शेख़ सादुल्ला ने कहा कि यह एक ऐसा सत्य है जिसे आसानी से समझा नहीं जा सकता। इसका ज्ञान बहुत धीरे और मुश्किल से होता है।

मुवाहिद के गहरे अर्थ को समझाने के लिए सैयद अब्दुल अतहर रिज़वी अपने सूफ़ी इतिहास में शेख़ फ़रीद के पुत्र ख़्वाजा याक़ूब के वचन दोहराते हैं, "मुवाहिद का ध्यान नेक कर्मों पर होता है। उसका हर एक कार्य प्रभु की कृपा पाने के लिए होता है; पानी उसको डुबो नहीं सकता और आग उसे जला नहीं सकती। वह तौहीद यानी वहदत अल-वुजूद में लीन होता है, वह बेखुदी के आलम में मस्त रहता है। इस वर्ग में आनेवाला सूफ़ी या आशिक़ हर तरफ़ से बेतअल्लुक रहता है। अगर वह अपने आप को ढूँढ़ता है तो खुदा को पा लेता है, अगर वह खुदा को

1. उच्चारण की दृष्टि से वाणी में कई स्थानों पर 'ष' के स्थान पर आवश्यकतानुसार 'ख' का प्रयोग किया गया है, जैसे देषि=देखि, मूरिष=मूरिख, पंषी=पंखी आदि।

ढूँढ़ता है तो खुद को पा लेता है। जब ऐसा प्रेमी अपने प्रियतम में लीन हो जाता है तब प्रेमी और प्रियतम के गुण एक हो जाते हैं।"

यह प्रेमी और प्रियतम का एक होना, आत्मा का परमात्मा में विलीन होना या ज्योति का परमज्योति में समाना ही सभी संतों का ध्येय होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि मैंने ऐसे पुरुष को अपना साथी बनाया है जो सुख और दुःख से परे है, मैं उसमें लीन होकर आनंद मनाऊँगा और अब कभी उससे नहीं बिछड़ूँगा:

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख नहीं कोइ।

हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्पूँ, कदे बिछोह न होइ॥⁽²⁾

कबीर साहिब के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए संत दादू सभी संतों की शिक्षा की एकता का संकेत देते हैं, "जो कबीर का पति था, मैं उसी का वरण करूँगा; मन, वचन या कर्म से मैं किसी दूसरे को अपना वर नहीं बनाऊँगा":

जे था कंत कबीर का, सोई बर बरिहौं।

मनसा बाचा कर्मना, मैं और न करिहौं॥⁽³⁾

कबीर का 'कंत'

कबीर साहिब ने कई बार अपने आप को 'अविनाशी पुरुष की दुलहिन', 'राम की बहुरिया' और 'राम की दुलहिन' कहा है। अपने विरह के पदों में वह पति से बिछुड़ी हुई दुलहिन के समान अपनी वेदना प्रकट करते हैं और मिलन के गीतों में कहते हैं बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये...॥⁽⁴⁾

परंतु कबीर साहिब यह स्पष्ट करते हैं कि 'राम' का अभिप्राय किसी देवता या अवतार से नहीं, बल्कि सर्वशक्तिमान पूर्ण परमात्मा से है। कबीर साहिब का राम पूर्ण, अविनाशी और हमेशा एक-सा रहनेवाला सत्य है; वह किसी प्रकार के परिवर्तन के नियम के अधीन नहीं है, साच सोई जो थिरह रहाई, उपजै बिनसै झूठ ह्वै जाई।⁽⁵⁾

मन और बुद्धि की पहुँच से परे

स्थूल जगत की सीमा में भाषा और विचार की हृद के अंदर उस परमसत्य, असीम प्रभु का वर्णन नहीं किया जा सकता। मन स्वयं स्थूल है और अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पना और अनुमान के द्वारा भी वह उस परम चेतन को नहीं समझ सकता और न ही उसका चिंतन या मनन कर सकता है। परमात्मा एक है या अनेक, इस प्रश्न के उत्तर में कबीर साहिब कहते हैं:

एक कहाँ तो है नहीं, दुइ कहाँ तो गारि।
है जैसा तैसा रहै, कहैं कबीर बिचारि॥⁽⁶⁾

कबीर साहिब के समय में बनारस विद्वानों, दार्शनिकों और पंडितों का केंद्र था जो अपने विचारों और सिद्धांतों पर वाद-विवाद करने में कुशल थे। कबीर साहिब ने अपने सरल किंतु अर्थपूर्ण तरीके से बताया कि परमतत्त्व के निज अनुभव के बिना ईश्वर, सृष्टि, माया आदि के बारे में विवाद अर्थहीन है और यदि एक बार जिज्ञासु परमात्मा का अनुभव प्राप्त कर ले तो उसके लिए इन बातों पर विचार करना तक व्यर्थ है।

परमात्मा का वर्णन संसार की किसी भी भाषा में नहीं किया जा सकता क्योंकि जहाँ वह है, वहाँ कोई भाषा नहीं है:

ऐसा लो तत ऐसा लो, मैं केहि बिधि कथौं गँभीरा लो॥ टेक॥
बाहर कहाँ तो सतगुरु लाजै, भीतर कहाँ तो झूठा लो।
बाहर भीतर सकल निरंतर, गुरु परतापै दीठा लो॥
दृष्टि न मुष्टि¹ न अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न जाई लो।
जिन पहिचाना तिन भल जाना, कहै न को पतियाई लो॥⁽⁷⁾

जो दीसै सो तो है नाहीं, है सो कहा न जाई।
सैना बैना² कहि समझाओं, गूँगे का गुड़ भाई॥⁽⁸⁾

1. वश में आना 2. सैना बैना=संकेतात्मक वचन

परमात्मा बुद्धि की शक्ति से नहीं पाया जा सकता और न ही तर्क यानी दलील के द्वारा उसके होने का सबूत दिया जा सकता है। वह कैसा है, कहाँ है आदि के बारे में सब सोच-विचार व्यर्थ है। कबीर साहिब कहते हैं:

बासुरि गमि¹ न रैणि गमि, नाँ सुपनैं तरगंम²।
कबीर तहाँ बिलंबिया³, जहाँ छाहड़ी न घंम⁴॥⁽⁹⁾

अर्थात् न वहाँ दिन की पहुँच है, न रात की और न ही वहाँ सपनों के घोड़े पर सवार होकर पहुँचा जा सकता है। कबीर उस स्थान पर विश्राम कर रहा है जहाँ न धूप है न छाँह।

परमात्मा सुख और दुःख, भले और बुरे, स्वर्ग और नरक आदि सब प्रकार के द्वैत से परे है। उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। संत उस परम चेतन के धाम में विचरते हैं। जो प्रभु को पा लेते हैं वे तर्क और वाद-विवाद में नहीं उलझते, जैसा कि कबीर साहिब ने कहा है, जो देखें सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं।⁽¹⁰⁾

शरीर के अंदर

यदि एक बार अभ्यासी परमात्मा को अपने अंदर प्रकट कर ले तो बाहर भी वह उसकी मौजूदगी कण-कण में देखता है। संत कहते हैं कि जब भक्त भगवान को अपने शरीर के अंदर देख लेता है तभी वह उसे सृष्टि के कोने-कोने में देख सकता है। कबीर साहिब कहते हैं कि जब तक मैं स्थूल शरीर के कामकाज में उलझा हुआ था तब तक परमात्मा मुझ से अलग था। जब मैंने अपने अंतर में उसका ज्ञान पा लिया तो जहाँ कहीं भी मैं देखता हूँ, केवल उसे ही पाता हूँ:

जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ राँमा, हरि पद चीन्हि कियौ बिश्रामा॥
तन रंजित तब देखियत दोई, प्रगट्यौ ग्यानँ जहाँ तहाँ सोई॥
लीन निरंतर बपु⁵ बिसराया, कहै कबीर सुख सागर पाया॥⁽¹¹⁾

1. पहुँच 2. घोड़ा 3. विश्राम 4. धूप 5. शरीर

एक सच्चे साधक के लिए परमात्मा शरीर के अंदर ही है। वह किसी जंगल, गुफा या पर्वत में नहीं है। न वह मनुष्य के बनाए हुए किसी मंदिर, मसजिद या गिरजे में रहता है और न ही उसे किसी मूर्ति या चित्र में सीमित किया जा सकता है। कबीर साहिब कहते हैं कि हमारे शरीर के अंदर ही वह अघट यानी शरीर रहित, अपार प्रभु रहता है, घट मह खेलै अघट अपार॥⁽¹²⁾

कबीर साहिब आश्चर्य प्रकट करते हैं कि वह शरीर रहित परमात्मा मनुष्य के शरीर में रहता है, फिर भी लोग उसे प्राप्त करने की कोशिश नहीं करते:

बसे अपंडी¹ पंड² मैं, ता गति लखै न कोइ।

कहै कबीरा संत हौ, बड़ा अचंभा मोहि॥⁽¹³⁾

ईसा मसीह समझाते हैं: खुदा की बादशाहत न यहाँ है, न वहाँ है, वह तुम्हारे अंदर है।⁽¹⁴⁾

इसी प्रकार कबीर समझाते हैं कि वह परमात्मा कहीं भी कम या ज्यादा मात्रा में नहीं है, वह सबमें पूर्ण रूप से व्याप्त है, घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।⁽¹⁵⁾ और तेरा साहिब तुज्झ में, अंत³ कहूँ मत जाय॥⁽¹⁶⁾

अपनी प्रसिद्ध वाणी 'बावन अखरी' में कबीर साहिब कहते हैं कि वह जो तुम्हारे निकट, तुम्हारे शरीर में है, उसको छोड़कर क्यों दूर भटकते हो? जिसकी तलाश में दुनिया भटक रही है, उसे मैंने अपने निकट ही पाया है। ढढा ढिग⁴ ढूढह कत आना॥ ढूढत ही ढह गए पराना॥⁽¹⁷⁾ इसी पद में आगे कहते हैं कि मैंने उसे सभी दिशाओं में, यहाँ तक कि ऊँची पर्वत-श्रेणियों में ढूँढ़ा परंतु नहीं पा सका। जब मैंने अपने अंदर देखा तो जिह गड़ गड़िओ सो गड़ मह पावा॥⁽¹⁸⁾ अर्थात् जिसने इस गड़ (शरीर) को बनाया है, उसे मैंने इस गड़ में ही पा लिया।

1. शरीर रहित 2. शरीर 3. अन्यत्र, दूसरी जगह 4. पास

मुक्ति-द्वार

धर्मग्रंथों ने स्वीकार किया है कि परमात्मा मनुष्य शरीर में ही मौजूद है परंतु यह स्पष्ट नहीं किया कि हम उसे अपने शरीर में कहाँ और कैसे पा सकते हैं। संत केवल इतना ही नहीं बताते कि परमात्मा हमारे शरीर में कहाँ है बल्कि उसे प्राप्त करने की विधि भी सिखाते हैं। परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग का द्वार हमारे शरीर में दोनों आँखों के बीच में है। आँखों के इस केंद्र को महात्माओं ने 'तीसरा नेत्र' और 'दिव्य चक्षु' कहा है तथा मुसलमान फ़कीरों ने 'नुक्ताए-सुवैदा'। आदि ग्रन्थ में इसे 'घर-दर' या 'घर का द्वार', 'मुक्ति-द्वार', 'तिल', 'तीसरा तिल', 'दसवीं गली', 'दसवाँ द्वार' आदि अनेक नामों से पुकारा गया है।

कबीर साहिब ने आँखों के केंद्र को कई तरह से समझाया है। इस स्थान को पश्चिम का यानी भौतिक जगत के परे के मंडलों का द्वार बताते हुए वह कहते हैं कि पश्चिम द्वार के ऊपर एक शिला है जिसमें खिड़की है तथा उस खिड़की के ऊपर दसवाँ द्वार है। इसके आगे के स्थान का कोई पारावार नहीं:

पसचम दुआरे की सिल ओड़॥ तिह सिल ऊपर खिड़की अउर॥

खिड़की ऊपर दसवा दुआर॥ कह कबीर ता का अंत न पार॥⁽¹⁹⁾

इस केंद्र को कबीर साहिब ने 'तिल', 'तिल के भीतर का तिल' और 'दो तिलों के बीच का तारा' कहा है:

मुरसिद नैनों बीच नबी¹ है।

स्याह सफेद तिलों बिच तारा, अविगत² अलख रबी है॥⁽²⁰⁾

तेरा साहेब है घट माहीं, बाहर नैना क्यों खोले॥

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले³॥⁽²¹⁾

1. प्रभु का दूत 2. अज्ञात 3. ओट में

परमात्मा हमारे शरीर के अंदर है, उसकी प्राप्ति का मार्ग हमारे अंदर है और उसकी तलाश भी हमें अपने शरीर के अंदर ही करनी है। इसलिए ज़रूरी है कि अभ्यासी अंदर जाए और इस आंतरिक रूहानी मार्ग पर चले। यद्यपि कबीर साहिब के शब्दों में यह बिंदु एक सँकरा द्वार है जो राई के दसवें भाग के समान बारीक है, फिर भी आत्मा को इस सूक्ष्म द्वार से प्रवेश करके ही अंदर के परम चेतन लोकों में जाना पड़ता है।

बाहर के संसार में जो कुछ भी हमें स्थूल नेत्रों से दिखाई दे रहा है, नाशवान है। कबीर साहिब कहते हैं कि बाहरी दृश्यमान जगत से ध्यान हटाकर उस अदृश्य प्रभु का चिंतन करो। जब दसवें द्वार का ताला खोलकर अंदर जाओगे, तब ही तुम्हें उस दयालु प्रभु के दर्शन होंगे:

ददा देख जो बिनसनहारा¹ ॥ जस अदेख तस राख बिचारा ॥
दसवै दुआर कुंची² जब दीजै ॥ तउ दइआल को दरसन कीजै ॥⁽²²⁾

इस अंदर के द्वार को खोलना आसान नहीं है। मन और आत्मा बाहरी संसार में पूरी तरह उलझे हुए हैं। आत्मा मन के साथ बँधी हुई है और इस स्थूल शरीर के पिंजरे में कैद है। यह अपने मूल स्रोत से, अपने असली घर से अनजान है। कबीर साहिब कहते हैं कि आत्मारूपी स्त्री नौ द्वारों वाले घर यानी इस शरीर के कारण भ्रम में पड़ी रहती है, उसे वह अनुपम वस्तु (परमात्मा) प्राप्त नहीं होती। जब तक आत्मा नौ द्वारों वाले इस घर में कैद रहती है, वह लुटती रहती है। इससे बचने के लिए इन दरवाज़ों का बंद होना ज़रूरी है, तभी आत्मा दसवें द्वार पहुँचती है और परमतत्त्व को पाकर उसी में समा जाती है:

नउ घर देख जो कामन भूली बसत अनूप न पाई ॥
कहत कबीर नवै घर मूसे³ दसवै तत समाई ॥⁽²³⁾

1. नाशवान 2. कुंजी 3. लुटना, बंद करना

इसलिए रूहानी अभ्यास में सबसे ज़रूरी बात मन को वश में करना है और यह शरीर के नौ द्वारों के ज़रिए बाहर सारे संसार में फैला हुआ है। संत कबीर कहते हैं कि नौ द्वारों को रोककर बाहर बहती हुई मन की वृत्तियों को बाँध लो, संसार के मोह और आकर्षणों को भूल जाओ और इस प्रकार अमर फल पाकर जन्म-मरण से रहित जीवन प्राप्त कर लो:

नउमी नवै दुआर कउ साध ॥ बहती मनसा राखहो बांध ॥
लोभ मोह सभ बीसर जाहो ॥ जुग जुग जीवहो अमर फल खाहो ॥⁽²⁴⁾

नाम

कबीर साहिब ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जिस राम का वह उल्लेख करते हैं, वह विष्णु के अवतार राजा रामचंद्र नहीं हैं। इसी प्रकार जिस रामनाम या नाम की महिमा कबीर ने की है वह मन, बुद्धि और इंद्रियों की पहुँच से परे है। उस नाम को बोलकर या लिखकर नहीं समझाया जा सकता, उसे केवल आत्मा के द्वारा देखा और समझा जा सकता है। वह अनुभव की वस्तु है, विद्या और तर्क की नहीं:

है कोई राँम नाँम बतावै, बस्तु अगोचर मोहि लखावै ॥ टेक ॥
राँम नाँम सब कोई बखाँनै, राँम नाँम का मरम न जाँनै ॥
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावैं तौ सुख पावै ॥
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनाँ मरम को¹ पावै ॥⁽²⁵⁾

कबीर का तात्पर्य है कि नाम कहने-सुनने में नहीं आ सकता। बिना उससे परिचय अर्थात् उसके अनुभव के, उसके भेद को कोई नहीं जान सकता।

लिखने, पढ़ने और बोलने में आ सकनेवाले नाम, समय और भाषा के परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। उस परिवर्तन रहित नाम को जो लिखने-बोलने में नहीं आता, कबीर साहिब सतनाम कहते हैं—वह नाम

1. कौन

जो हमेशा सत्य अर्थात् स्थायी और एकरूप है। देश और काल के क्रानून इस सच्चे नाम पर लागू नहीं होते:

सतगुरु का उपदेस, सत नाम निज सार है।

यह निज मुक्ति संदेस, सुनो संत सत भाव से॥⁽²⁶⁾

संतों के अनुसार यही वह आदि नाम है जो परमात्मा की परम शक्ति है। इस नाम से जुड़कर ही साधक नामी अर्थात् अपने मूल स्रोत में समा सकता है। संसार में प्रचलित असंख्य नामों में से कोई भी नाम आत्मा को उसके निजघर नहीं पहुँचा सकता। केवल सच्चे नाम, आदि नाम, मूल नाम के अभ्यास के द्वारा ही जीव संसार से मुक्त हो सकता है। परंतु ऐसे नाम के अभ्यास की विधि कोई बिरला पूर्ण पुरुष ही जानता है। कबीर साहिब कहते हैं:

कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।

आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय॥⁽²⁷⁾

नाम का आंतरिक अभ्यास ही परमपद की प्राप्ति का साधन है। गुरु रविदास इस बात की पुष्टि कबीर साहिब का उदाहरण देते हुए करते हैं कि नाम के द्वारा ही कबीर संसार में प्रसिद्ध हुए और उन्होंने अपने कर्मों के लेखे को नष्ट किया: हर के नाम कबीर उजागर॥ जनम जनम के काटे कागर॥⁽²⁸⁾

संतों का मार्ग नाम का मार्ग है। वे नाम की ही कामना करते हैं, नाम को ही संजोते हैं और नाम में ही समाना चाहते हैं। कबीर कहते हैं कि जिस तरह सूखी धरती जल के लिए तरसती है और भक्त भक्ति के लिए, इसी तरह कबीर तन की आशा छोड़कर नाम के लिए तरसता है:

अप्य² स्वारथी मेदिना³, भक्ति स्वारथी दास।

कबीर नाम स्वारथी, छाड़ी तन की आस॥⁽²⁹⁾

1. कागज़ 2. जल 3. धरती

संतों ने नाम को प्रभु की रचनात्मक शक्ति कहा है। कबीर साहिब, गुरु नानक तथा अन्य संतों के 'आदि नाम' का तात्पर्य यही है कि यह नाम सृष्टि के पहले भी था और परमात्मा में समाया हुआ था; दूसरे शब्दों में, नाम प्रभु के साथ था, नाम ही प्रभु था और है। संतों के अनुसार संपूर्ण सृष्टि की रचना इस नाम के द्वारा ही हुई है। गुरु नानक देव के शब्दों में, जेता कीता तेता नाउ॥ विण नावै नाही को थाउ॥⁽³⁰⁾ अर्थात् जो भी रचना प्रभु ने की है, नाम के द्वारा ही की है और सृष्टि का कोई भी स्थान नाम से खाली नहीं है।

नाम ने संपूर्ण सृष्टि की, स्थूल जगत तथा सूक्ष्म और कारण देशों की रचना की है। उसने सृष्टि की केवल रचना ही नहीं की है, वह सब खंडों-ब्रह्मांडों का आधार भी है। कबीर साहिब कहते हैं कि जिस नाम को संतों ने अपनाया है, उस नाम के बल पर सब द्वीप, खंड, मंडल आदि टिके हुए हैं:

कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।⁽³¹⁾

संत लिखने-पढ़ने में आनेवाले वर्णात्मक नाम को बिलकुल महत्वहीन नहीं बताते। जब तक चेतना स्थूल शरीर में है, इन नामों का महत्व है। ये मन और आत्मा को अभ्यास की शुरू की अवस्था में सहायता देते हैं। इनके द्वारा साधक अपनी चेतना को शरीर के नौ द्वारों से समेटकर आँखों के केंद्र में लाता है। परंतु वह नाम जो आत्मा को मुक्ति की ओर ले जाता है, इंद्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता। वह एक चेतनधारा है जिसका अनुभव केवल आत्मा ही कर सकती है।

कबीर साहिब कहते हैं कि देवनागरी वर्णमाला के बावन अक्षर नाशवान हैं परंतु वह अक्षर अर्थात् अविनाशी नाम इनमें नहीं है। जहाँ बोली या भाषा है, वहाँ वर्णमाला के अक्षर अवश्य होंगे, परंतु उस स्थान पर जहाँ कोई भाषा नहीं है, मन भी नहीं पहुँच सकता:

बावन अक्षर लोक त्रै सभ कछु इन ही माहे॥

ए अखर खिर जाहिगे ओइ अखर इन मह नाहे॥⁽³²⁾

जहा बोल तह अछर आवा॥ जह अबोल तह मन न रहावा॥⁽³³⁾

क्लाज़ियों और पंडितों द्वारा कुरान, वेदों, पुराणों और अन्य धर्मग्रंथों की व्याख्या का उल्लेख करते हुए कबीर साहिब स्पष्ट करते हैं कि उस अदृश्य अविनाशी नाम का ज्ञान उन्हें नहीं है:

काजी कथै कतेब कुराना, पंडित बेद पुराना।

वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना॥⁽³⁴⁾

सच्चा नाम अविनाशी है, वह हमेशा एक-सा रहता है। वर्णमाला के अक्षरों के रूप और उनके उच्चारण बदलते रहते हैं। परंतु संपूर्ण सृष्टि में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उस नाम में परिवर्तन ला सके। कबीर साहिब कहते हैं कि जिस नाम का संतों ने सहारा लिया है, वह अनादि, अमर अविनाशी नाम तीन गुणों वाली मायावी त्रिलोकी और पारब्रह्म से ऊपर है। वह सार शब्द है जिसे लेकर संत इस संसार में आते हैं:

छर अच्छर दूनों से न्यारा, सोइ नाम हमार।

सार सबद को लेइके आयो, मिरतू लोक मंझार॥⁽³⁵⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि प्रलय और महाप्रलय में खंड-ब्रह्मांड सब नष्ट हो जाते हैं परंतु नाम अविनाशी और अखंड है:

अखण्ड साहिब का नाम, और सब खंड है।

खंडित मेरु सुमेरु, खंड ब्रह्मांड है॥⁽³⁶⁾

यहूदी धर्म के महात्माओं ने भी शब्द का जिक्र किया है। वे भी उसे एक सदा रहनेवाली सत्ता बताते हैं, “तेरा शब्द आदि से सत्य है; और तेरा एक-एक निर्णय न्यायसंगत और अटल है।”⁽³⁷⁾; “उसका (परमात्मा का) नाम हमेशा रहेगा।”⁽³⁸⁾ पैगंबर आइसाया (Isaiah) का कथन है कि सब स्थूल वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं परंतु प्रभु का नाम नष्ट नहीं होगा, “घास सूख जाती है, फूल मुरझा जाते हैं लेकिन हमारे प्रभु का शब्द हमेशा रहेगा।”⁽³⁹⁾

जो कुछ भी परिवर्तनशील है, जो कुछ भी जरा और मृत्यु के अधीन है और जो कुछ भी समय और काल की सीमा के अंदर है, उसे संतों ने अपूर्ण कहा है। कबीर साहिब कहते हैं कि अधूरे नामों का आधार लेनेवाले बार-बार संसार में आते हैं। परंतु पूर्ण नाम यानी सच्चे नाम के अभ्यासी आवागमन से मुक्त होकर परमपद पाते हैं:

अंस नाम तें फिरि फिरि आवै। पूरन नाम परम पद पावै॥

नहिं आवै नहिं जायसो प्रानी। सत्तनाम की जेहि गति जानी॥⁽⁴⁰⁾

शब्द यानी नाम

संतों ने ‘नाम’ और ‘शब्द’ दोनों लफ्ज़ों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। शब्द ने सारे संसार की रचना की है। शब्द ही परमात्मा की रचनात्मक शक्ति है, शब्द ही परमात्मा है। कबीर साहिब कहते हैं:

कहै कबीर तें सबद को परखि ले, सबद ही आप करतार भाई॥⁽⁴¹⁾

परमात्मा नाम यानी शब्द के रूप में घट-घट में मौजूद है। कबीर साहिब नाम की आवाज़ का संकेत देते हुए कहते हैं कि सुरत अथवा आत्मा जब नाम को अपने आंतरिक कान से सुनने लग जाती है तो अंततः परमपद को प्राप्त कर लेती है, सुरत नाम सुनै जब काना, हंसा पावै पद निर्बाना॥⁽⁴²⁾

नाम और शब्द दोनों एक ही परमसत्य के बोधक हैं, संतों ने दोनों का उपयोग उसी एक सत्य को समझाने के लिए किया है। शब्द को न तो किसी भाषा में समझाया जा सकता है और न ही तर्क या बुद्धि के द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है। नाम यानी शब्द, परमपिता परमात्मा की वह सर्वव्यापी शक्ति है जिसका अनुभव अभ्यासी अपने अंदर एक सुरीली धुन के रूप में करता है। यह कुरान शरीफ़ का ‘कलाम’, कलमा या ‘कुन’ है; बाइबल का ‘वर्ड’, ‘लॉगॉस’ और ‘होली घोस्ट’ है; पारसियों का ‘सरोश’ और वेद-शास्त्रों की ‘दिव्य ध्वनि’, ‘आकाशवाणी’,

‘देववाणी’ है। संतों ने इसे शब्द, नाद, धुन, शब्द-धुन, अनाहत नाद, अनाहद नाद, वाणी, हुकम आदि अनेक नामों से पुकारा है। सूफी फ़कीरों ने इसी को ‘निदाए-आसमानी’, ‘निदाए-सुल्तानी’, ‘बाँगे-आसमानी’ और ‘कलामे-इलाही’ कहा है। कबीर साहिब तथा कुछ संतों ने शब्द (नाम) को वह अदृश्य धारा या डोर कहा है जिसके सहारे आत्मा वापस परमात्मा तक पहुँच सकती है।

हर संत ने, हर पूरे गुरु ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए शब्दमार्ग की शिक्षा दी है। शब्द जिसे संतों ने ‘अनहद शब्द’ भी कहा है, अपने आप बज रहा है। इसके उत्पन्न होने का कोई भौतिक कारण नहीं है। यह जड़ संसार तथा मन और माया की सीमा से परे के परम चेतन मंडल धुरधाम से आ रहा है। लिखने, पढ़ने और बोलने में आनेवाले वर्णात्मक नाम के विपरीत यह धुनात्मक नाम है।

संत जिस शब्द की महिमा करते हैं और जो उनका ‘अपना शब्द’ है अर्थात् जिस शब्द को लेकर वे संसार में आते हैं, वह लफ़्ज़ों यानी वर्णात्मक शब्दों की सीमा से परे है। सतगुरु के आदेश के अनुसार अपने अहंभाव को मिटाकर कोई बिरला व्यक्ति ही उस शब्द को समझ सकता है:

सब्द अतीत सब्द सो अपना, बूझै बिरला कोई।

कहैं कबीर सतगुरु की सैना¹, आप मिटे तब सोई॥⁽⁴³⁾

शब्द यानी नाम का अभ्यास ही परमात्मा की सच्ची पूजा है। शब्द प्रभु के धाम से आता है, यह आत्मा को परमात्मा से जोड़नेवाला तार है। यह वह राजमार्ग है जिस पर चलकर आत्मा स्थायी शांति और आनंद के धाम में पहुँच सकती है। शब्द के अभ्यास से मन पवित्र होता है और आत्मा सब आवरणों से मुक्त होकर शब्द-धुन में लीन हो जाती है। शब्द उसके अपने मूल स्रोत परमात्मा में विलीन कर देता है।

यही वह भक्ति या पूजा है जो मालिक के दरबार में मंजूर होती है और उस तक पहुँचने का ज़रिया है। कबीर साहिब कहते हैं कि इस आंतरिक पूजा को छोड़कर लोग बाहरमुखी पूजा में उलझे रहते हैं:

जे पूजा हरि नाही भावै, सो पूजनहार चढ़ावै॥

जिहि पूजा हरि भल मानै, सो पूजनहार न जाँनै॥⁽⁴⁴⁾

संतों ने स्पष्ट समझाया है कि नाम यानी शब्द का संबंध आत्मा से है। इसका अनुभव आत्मा को सुरत और निरत के द्वारा होता है। आत्मा की सुनने की शक्ति को संतों ने सुरत और देखने की शक्ति को निरत कहा है। अंदर के रूहानी मंडलों में आत्मा, शरीर और इंद्रियों के द्वारा अनुभव नहीं करती बल्कि अपने आप प्राप्त करती है। कबीर साहिब एक पद में इस अवस्था का वर्णन करते हैं:

पंडित होइ सु पदहि बिचारै, मूरषि नाँहिन बूझै।

बिन हाथनि पाँइन, बिन काँननि, बिन लोचन जग सूझै॥ टेक॥

बिनु मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुण गावै।

आछै¹ रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिर आवै॥

बिनहीं तालाँ ताल बजावै, बिन मंदल² षट ताला।

बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है गोपाला॥

बिनाँ चोलनै³ बिनाँ कंचुकी⁴, बिनही संग संग होई।

दास कबीर औसर भल देख्या, जाँनैगा जस कोई॥⁽⁴⁵⁾

शब्द का प्रकाश

इस प्रकार संतों का नाम एक अनबोली भाषा है जो आवाज़, राग, ताल और स्वर से रहित संगीत है। आंतरिक मंडलों में शब्द अर्थात् नाम उतना ही यथार्थ है जितने स्थूल जगत में यहाँ के पदार्थ। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, शब्द आत्मा द्वारा देखा और सुना जा सकता है। सभी संतों ने

बताया है कि शब्द में ध्वनि और प्रकाश दोनों हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि शब्द के प्रकाश की सहायता से ही आत्मा अंतर में अपना मार्ग देख सकती है, इसके बिना वह अंधी है:

सबद बिना सुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।

द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय॥⁽⁴⁶⁾

कबीर साहिब अपने एक पद में आत्मा को यह संसार छोड़कर अंतर के चेतन लोकों में जाने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि जहाँ परमात्मा विराजमान है, उस परम चेतन धाम में शब्द की ज्योति से प्रकाश हो रहा है, वहाँ अपने निर्मल श्वेत स्वरूप में शब्द प्रकाशमान है और हंस विहार कर रहे हैं:

मद्ध अकास आप जहाँ बैठे, जोति सबद उजियारा हो॥

सेत सरूप सबद जहाँ फूले, हंसा करत बिहारा हो॥⁽⁴⁷⁾

शब्द के प्रकाश का उल्लेख कबीर साहिब अन्य स्थानों पर भी करते हैं:

सबद घनघोर टंकोर¹ तहाँ अधर है, नूर को परसि के पीर पाया॥⁽⁴⁸⁾

कबीर कहै घट को जो मथै, तब पावै सबद प्रकास है जी॥⁽⁴⁹⁾

अन्य संतों ने भी शब्द की आवाज़ और प्रकाश का उल्लेख किया है। संत नामदेव कहते हैं कि जहाँ सब दिशाओं में दूर-दूर तक उज्ज्वल प्रकाश हो रहा है, वहीं अनहद शब्द धुनकार दे रहा है, जह झिल मिल कार दिसंता॥ तह अनहद सबद बजंता॥⁽⁵⁰⁾

पाँच शब्द

शब्द, धुन या नाम जो धुरधाम से उठकर सारे संसार में व्याप्त है, वह है तो एक, परंतु विभिन्न आंतरिक मंडलों में से होकर आता हुआ उन मंडलों

1. धनुष की डोरी की आवाज़

के अपने-अपने वातावरण में अभ्यासी को अलग-अलग रूप में सुनाई देता है। आंतरिक रूहानी धाम या पड़ाव पाँच हैं तथा साधक को इन धामों में अलग-अलग आवाज़ें सुनाई देती हैं और अलग-अलग तरह के प्रकाश दिखाई देते हैं।

कबीर साहिब सच्चे सूरमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब अभ्यासी पाँच आसमानों अर्थात् मंडलों को जीत लेता है, तब ही वह सच्चा सूरमा होता है। उसने अपना हृदय प्रभु को समर्पित कर दिया होता है जिससे उसकी आत्मा आवागमन से छुटकारा पा लेती है और वह धुरधाम पहुँचकर प्रभु को नमस्कार करता है:

पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।

दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा¹ धनी हजूर²॥⁽⁵¹⁾

इन पाँच मंजिलों का इशारा करने के साथ ही पाँच शब्दों का उल्लेख करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि पाँच शब्द प्रभु के धाम में गूँज रहे हैं। कबीर साहिब ऐसे निराकार और सब बंधनों से परे प्रभु की आरती करते हैं:

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिगपानी³॥

कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी⁴॥⁽⁵²⁾

मुसलमान फ़कीरों ने भी पाँच शब्दों का जिक्र किया है। मौलाना रूम कहते हैं कि खामोश होकर आसमान से आनेवाली पाँच नौबतों (धुनों) को सुन और साथ ही वह यह भी स्पष्ट करते हैं कि यह आसमान छः दिशाओं और सात आसमानों से परे है। खामोश ओ पंज नौबत बिशनों ज़ि आसमाने, क-आँ आसमाने-बैरूँ जाँ हफ़त ओ ई शश आमद॥⁽⁵³⁾

यद्यपि ये पाँच शब्द अत्यंत सूक्ष्म और चेतन हैं तथा किसी भी प्रकार के बाजे में से इन्हें पैदा नहीं किया जा सकता, फिर भी संतों ने समझाने के लिए इनकी तुलना बाहर की आवाज़ों से की है। कबीर साहिब इनको

1. नमस्कार 2. उपस्थिति, हाज़िरी 3. परमात्मा 4. मुक्ति देनेवाली

घंटे और शंख, मृदंग और बादल की गरज, किंगरी और सारंगी, मुरली या बाँसुरी तथा वीणा की आवाजों के समान बताते हैं। संत नामदेव, बेणी जी, गुरु नानक देव, दादू दयाल, दरिया साहिब, संत पलटू, तुलसी साहिब, स्वामी जी महाराज तथा अन्य संतों ने अंदर के शब्दों को इन्हीं बाजों की ध्वनियों के समान बताया है।

यह परम चेतन शब्द इस जड़ संसार की वस्तु नहीं है और न ही इसे बाहरी संसार में पाया जा सकता है। यह अंतर में आँखों के केंद्र पर निरंतर धुनकार दे रहा है और वहाँ पहुँचकर ही अभ्यासी की आत्मा इसे सुन सकती है।

सतगुरु

नाम यानी शब्द की खोज मनुष्य अपने आप नहीं कर सकता। अंदर जाने का मार्ग, शब्द से जुड़ने की विधि और अंदर रूहानी रास्ते पर चलने का तरीका केवल संत ही जानते हैं। आँखों के केंद्र, दसवें दरवाज़े, मुक्ति के दरवाज़े की कुंजी संतों के हाथ में है और केवल वे ही जिज्ञासु की आत्मा को अंतर में चेतन शब्द के साथ जोड़ सकते हैं।

यह कुंजी अभ्यास की वह विधि है जिसके द्वारा साधक अपनी चेतना को शरीर के नौ द्वारों से समेटकर, जीते-जी मरकर, आँखों के केंद्र में से होता हुआ रूहानी मंडलों में जाता है।

मुक्ति का द्वार, दसवाँ दरवाज़ा बड़ा मज़बूत है। संतों ने इसे वज्र-कपाट कहा है क्योंकि इसे खोलना बहुत मुश्किल है। परंतु पूरे गुरु के द्वारा दीक्षित अभ्यासी के लिए यह द्वार खुल जाता है। कबीर साहिब कहते हैं:

साचे सतगुरु की बलिहारी, जिन यह कुंजी कुफल¹ उघारी॥⁽⁵⁴⁾

ताला कुंजी हमें गुरु दीन्हीं, जब चाहौं तब खोलौं किवरवा॥

प्रेम प्रीति कै चुनरी हमरी, जब चाहौं तब नाचौं सहरवा²॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो, बहुरि न ऐबै एहि नगरवा॥⁽⁵⁵⁾

गुरु अमरदास जी कहते हैं कि अंदर के द्वार की कुंजी सतगुरु के हाथ में होती है, यह द्वार और किसी से नहीं खुल सकता:

सतगुरु हथ कुंजी होरत दर खुलै नाही गुर पूरै भाग मिलावणिआ॥⁽⁵⁶⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य आत्मिक ज्ञानरूपी पदार्थ बाहर ढूँढ़ता है और पा नहीं सकता। इसे पाने के लिए इसके भेद के ज्ञाता सतगुरु द्वारा मार्गदर्शन आवश्यक है:

बस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।

कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥⁽⁵⁷⁾

भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही बस्तु लखाय।

कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥⁽⁵⁸⁾

संसार के कार्यों में कुशलता प्राप्त करने के लिए एक शिक्षक या मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। जन्म से ही मनुष्य औरों से सीखता है। माता-पिता से वह खाना, बैठना, चलना और बोलना सीखता है। यदि बच्चा जन्म से बहरा होता है तो वह गूँगा भी हो जाता है क्योंकि वह औरों से सुनकर शब्दों का उच्चारण नहीं सीख सकता। बड़े होने पर मनुष्य अपने रिश्तेदारों, मित्रों और शिक्षकों से निरंतर शिक्षा ग्रहण करता रहता है। अध्यात्म एक गूढ़ विषय है और चेतना को नौ द्वारों से समेटकर अंदर रूहानी मंडलों में प्रवेश करना एक कठिन अभ्यास है। इसमें क्रदम-क्रदम पर एक पहुँचे हुए मार्गदर्शक अथवा पूरे गुरु की आवश्यकता होती है।

कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य कितनी ही कोशिशें कर ले, वह बिना गुरु के सच्चा ज्ञान नहीं पा सकता:

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।

बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय॥⁽⁵⁹⁾

कबीर साहिब का यह भी कथन है:

निसि औंधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय हैं, तहू सुदृष्टिहि। मंद॥⁽⁶⁰⁾

जिस किसी ने भी अंतर में परमात्मा को पाया है, गुरु की कृपा से ही पाया है। कबीर साहिब और संत नामदेव का उल्लेख करते हुए गुरु अमरदास जी कहते हैं कि छीपा नामदेव और जुलाहे कबीर ने पूरे गुरु के मार्गदर्शन में ही ऊँची रूहानी गति प्राप्त की, नामा छीबा कबीर जुलाहा पूरे गुरु ते गति पाई॥⁽⁶¹⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि अभ्यासी की सारी रूहानी प्रगति गुरु की कृपा से ही होती है:

ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, ता तें भया कबीर॥⁽⁶²⁾

आम तौर पर लोग हर साधु, संन्यासी और जोगी को प्रभु तक पहुँचा हुआ महात्मा मानकर उससे रूहानी प्राप्ति की आशा करते हैं। संसार में कुल-पुरोहितों, पंडितों, विद्वानों और अनेक प्रकार के संन्यासियों की कोई कमी नहीं है। ये लोग बाहरी भेष बनाते हैं, गेरुए, पीले, नीले या सफ़ेद कपड़े और हाथों में या गले में मालाएँ पहनते हैं। कुछ जटा रखते हैं, शरीर पर भस्म लगाते हैं तो कुछ मृगछाल पहनते हैं और खाने की हर चीज़ अपने हाथों पर रखकर खाते हैं।

संतों ने धार्मिकता और वैराग्य के ऐसे दिखावे का हमेशा खंडन किया है। प्रभु का सच्चा भक्त या संत, साधारण मनुष्यों की तरह पहनता है और जीवन बिताता है। कबीर के अनुसार सच्चे संतों और बाहरमुखी साधुओं में उतना ही अंतर होता है जितना आम और बबूल के पेड़ों में—आम की शाखा मीठे फलों से लदी रहती है जबकि बबूल की हर डाली काँटों से भरी रहती है:

साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल।
वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल॥⁽⁶³⁾

इसी प्रकार भेषी साधुओं और पाखंडियों के विषय में कबीर साहिब कहते हैं कि माला पहनकर, तिलक लगाकर या सिर मुँड़ाकर कोई भक्त नहीं बन जाता; ऐसे लोग दुनियादारी के रास्ते पर चलकर अपना मनुष्य जन्म गँवा देते हैं:

माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी के साथ॥⁽⁶⁴⁾

अगर सिर मुँड़ाने से परमात्मा मिल सकता है तो बेशक हर कोई मुँड़ा ले लेकिन बार-बार मुँड़े जाने से भेड़ परमपद प्राप्त नहीं करती:

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय॥⁽⁶⁵⁾

साधुओं का लिबास पहनकर मनुष्य साधु नहीं बन जाता, शेर की खाल ओढ़कर भी भेड़ अपनी ही चाल चलती है, उसकी आवाज़ शेर की आवाज़ नहीं हो सकती। वह बनावटी ही रहती है और अंत में वह जंगली कुत्तों का शिकार होती है:

बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल॥⁽⁶⁶⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि एक अंधा, वीरान जंगल और कँटीली झाड़ियों में से जिज्ञासु को रास्ता नहीं दिखा सकता, गंदगी के संपर्क में आकर कोई सुगंध नहीं फैला सकता, खोटे सिक्के से कोई हीरा नहीं खरीद सकता, कच्चा तैराक दूसरों को डूबने से नहीं बचा सकता और

एक भेड़िया, भेड़ों के झुंड की रक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार एक अधूरा गुरु या झूठा महात्मा जिसकी दृष्टि सांसारिक पदार्थों, भोगों और मान-प्रतिष्ठा पर लगी है, जिज्ञासु को अंदर मुक्ति के मार्ग पर नहीं ले जा सकता। ऐसे गुरु का शिष्य भी संसार की ओर ही प्रवृत्त होगा, जैसा कबीर साहिब अपने एक दोहे में कहते हैं:

जा का गुरु ग्रेही अहै, चेला ग्रेही¹ होय।

कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय॥⁽⁶⁷⁾

कबीर साहिब बताते हैं कि सच्चा यानी पूरा गुरु देख सकता है, उसकी अंदर की आँख खुली होती है और वह अपने शिष्य की अंतर्दृष्टि खोलकर उसे प्रभु के दर्शन करा सकता है। सच्चा गुरु ऐसा साबुन होता है जो शिष्य के मन पर जमे हुए जन्म-जन्मांतरों की मैल को धोता है; वह नाम का सच्चा सिक्का देता है जिसके द्वारा प्रभुप्रेम का हीरा खरीदा जा सकता है; सच्चे गुरु ने संसार के तूफानी समुद्र को पार कर लिया होता है और वह ऐसा कुशल तैराक होता है जो भवसागर में डूबते असंख्य पापियों को पार ले जा सकता है; वह चंदन का वृक्ष होता है जिसकी संगति से शिष्यरूपी साधारण पेड़ भी सुगंध से भरपूर हो जाता है। ऐसा सतगुरु संसार में रहते हुए भी संसार से परे होता है। संसार की धन-दौलत और मान-प्रतिष्ठा उसके कदमों में होती है पर वह केवल परमात्मा को ही चाहता है। वह अपने शिष्यों को आंतरिक आनंद का वह अमृत प्रदान करता है जिसे पाकर संसार के ऐश्वर्य और भोग तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं।

कबीर साहिब के अनुसार मनुष्य के लिए संत के नाम को अपनाना आसान है परंतु संतमार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलना है। सच्चा संत हमेशा शांत और स्थिर होता है, वह इस कठिन मार्ग पर चलकर धुरधाम पहुँच चुका होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि सच्चे संतों की चाल और दुनियादारों की चाल में बहुत अंतर होता है। झूठे महात्माओं

की चाल और रहन-सहन उनकी सांसारिकता को छिपाने का एक पर्दा होते हैं। एक पूर्ण गुरु (सच्चा संत) कोई विद्वान या प्रकांड पंडित नहीं होता; उसका ज्ञान किताबी ज्ञान नहीं बल्कि निजी रूहानी अनुभव से प्राप्त सच्चा ज्ञान होता है। उसे अपनी उच्च आत्मिक अवस्था का अभिमान नहीं होता, वह निस्स्वार्थ, सरल और सच्चा होता है; उसके हृदय में हर एक जीव के लिए आदर और प्रेम का भाव होता है। अपने एक दोहे में कबीर साहिब सच्चे संत का वर्णन इस प्रकार करते हैं:

निरबैरी निहकामता, साँई सेती नेह।

विषिया सू न्यारा रहै, संतहि का अँग एह॥⁽⁶⁸⁾

हर पूरा सतगुरु या संत ऐसी हस्ती है जो परमात्मा के धाम से इस संसार में आती है या जो रूहानी अभ्यास द्वारा वहाँ पहुँचकर प्रभु में समा जाती है। जो महात्मा बेखटके प्रभु के दरबार में जा और आ सकता है, केवल उसी में यह सामर्थ्य होता है कि और जीवों को भी वहाँ ले जा सके। उस परमसत्य के लोक में केवल परमात्मा ही है। जो महान आत्मा वहाँ पहुँचती है, वह परमात्मा में समाकर परमात्मा का ही रूप हो जाती है। ऐसे महान सतगुरु को संतों ने मुक्ति का द्वार, प्रभुप्राप्ति का मार्ग और देहधारी परमात्मा कहा है।

कबीर साहिब कहते हैं कि संत और सतगुरु उसी को कहा जा सकता है जो अपने शिष्यों को उस अलख प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन करा दे, भाइ कोइ सतगुरु सन्त कहावै, नयनन अलख लखावै॥⁽⁶⁹⁾ एक अन्य पद में वह कहते हैं कि मुझे वही सतगुरु प्रिय है जो सच्चे नाम का अमृत रस खुद पीता हो और मुझे भी पिला सके, जो मेरी आँखों से भ्रम का पर्दा हटाकर मुझे अपने आप का बोध करा सके और जिसके दर्शन करना ही परमात्मा के दर्शन करना हो:

साधो सो सतगुरु मोहिं भावै।

सत्त नाम का भरि भरि प्याला, आप पिवै मोहिं प्यावै॥...

परदा दूर करै आँखिन को, निज दरसन दिखलावै॥
जा के दरसन साहिब दरसै, अनहद सबद सुनावै॥⁽⁷⁰⁾

मौलाना रूम ने मुर्शिद के हाथ को खुदा का हाथ और उसकी आँख को खुदा के नूर से रोशन आँख कहा है। कबीर साहिब भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब मैं साधु (गुरु) से मिला तो परमात्मा से ही मिल लिया क्योंकि दोनों में तनिक भी अंतर नहीं; संत जो भी चाहते, कहते और करते हैं, वह प्रभु का ही चाहा, कहा और किया होता है।

साध मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा बाचा कर्मना, साधू साहिब एक॥⁽⁷¹⁾

सभी संतों का कहना है कि सतगुरु की भक्ति ही प्रभु की भक्ति है और सतगुरु से प्रेम करना परमात्मा से प्रेम करना है। कबीर साहिब कहते हैं कि संतों की देह निराकार परमात्मा का दर्पण है; जो उस निराकार को देखना चाहते हैं वे उसे संतों में ही देख सकते हैं:

निराकार की आरसी, साधोंहीं की देहि।
लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं में लखि लेहि॥⁽⁷²⁾

कबीर साहिब बार-बार यही कहते हैं कि गुरु और साहिब एक हैं, बाक्री सब भ्रम है, गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।⁽⁷³⁾ और जो शिष्य गुरु को मनुष्य समझता है, वह अंधा है तथा लोक और परलोक में दुःख पाता है:

गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध॥⁽⁷⁴⁾

गुरु का शब्दस्वरूप

स्थूल संसार में तो गुरु का होना बहुत ज़रूरी है ही, अंतर के मंडलों में भी साधक को उसकी क़दम-क़दम पर ज़रूरत पड़ती है। बाहर वह

जिज्ञासु को नामदान देकर उसे रूहानी मार्ग का भेद देता है, उसकी आत्मा को शब्द से जोड़ता है और उसके हृदय में प्रेम तथा भक्ति जाग्रत करता है। अपने निजी उदाहरण द्वारा और अपने मार्गदर्शन तथा अपनी असीम आत्मिक शक्ति द्वारा वह शिष्य को इस मार्ग पर चलने, शब्द का अभ्यास करने तथा संसार के आकर्षणों और परेशानियों का दृढ़तापूर्वक सामना करने की शक्ति देता है। आंतरिक मंडलों में तो सतगुरु का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। वह अपने परम चेतन शब्दमय रूप में हमेशा शिष्य के साथ रहता है और अंदर की कठिनाइयों और ख़तरों से उसकी रक्षा करता है।

अपने स्थूलरूप यानी देहस्वरूप में, सतगुरु शब्द का प्रकट रूप होता है जिसे ईसा मसीह ने 'देहधारी शब्द'¹ कहा है।⁽⁷⁵⁾ रूहानी मंडलों में गुरु का स्वरूप शब्द होता है। जब शिष्य की आत्मा रूहानी चेतन मंडलों में प्रवेश करती है तो गुरु अपने निर्मल, चेतन, शब्दस्वरूप में उसके सामने प्रकट होता है। गुरु के इस स्वरूप को संतों ने 'नूरी स्वरूप', 'ज्योतिर्मय स्वरूप' तथा 'शब्दस्वरूप' कहा है। कबीर अपनी वाणी में सतगुरु के शब्दस्वरूप का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि गुरु शब्द है और शब्द गुरु है। वह सतगुरु को शब्दरूपी जहाज़ कहते हैं जिसका भेद कोई बिरला अभ्यासी ही पा सकता है, सतगुरु सबद जहाज़ हैं, कोइ कोइ पावै भेद।⁽⁷⁶⁾

कबीर साहिब शब्दगुरु को अपनाने का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि बाक्री सब गुरु झूठे होते हैं, सबद गुरु को कीजिये, बहुतक गुरु लबार।⁽⁷⁷⁾ सतगुरु शब्दस्वरूप होते हैं, उनका कोई आदि और अंत नहीं होता, वह काया के अंदर सबसे ऊँचे स्थान पर अर्थात् आँखों के केंद्र पर होते हैं:

सबद सरूप सतगुरु अहैं, जाका आदि न अंत।
काया माहीं अग्र हैं, निहचे मानो संत॥⁽⁷⁸⁾

1. शब्दस्वरूप

अंतर में शिष्य का गुरु से मिलाप तथा गुरु के साथ निवास शब्दरूप में होता है। जब शिष्य शब्द के अभ्यास द्वारा जड़ शरीर में से सिमटकर अपने आत्मिक रूप में, अपने शब्दरूप में, अंदर के मंडलों में जाता है तो वहाँ उसका सतगुरु से मिलाप होता है। सतगुरु स्वयं शब्द होते हैं और शब्दरूप में ही जीव उनसे मिलकर उनका रूप हो सकता है। कबीर साहिब का कथन है:

हम बासी उस देस के, (जहाँ) जाति बरन कुल नाहिं।
सबद मिलावा है रहा, देह मिलावा नाहिं॥⁽⁷⁹⁾

संतों का असली रूप ही शब्द होता है। अंतर में वे खुद शब्द होते हैं और बाहर उनका देहस्वरूप शब्द का ही प्रकट अर्थात् मूर्त रूप होता है। कबीर साहिब कहते हैं, सब लोगन में सन्त बडे हैं, शब्द रूप जिन देहिया॥⁽⁸⁰⁾ संतों के पास जाकर उनसे शब्द का भेद लेकर, अपने अंदर शब्द को प्रकट कर लेना ही मुक्ति का उपाय है। कबीर साहिब के अनुसार:

सबद हमारा हम सबद के, सबदहि लेय परक्ख।
जो तूँ चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क॥⁽⁸¹⁾

सतगुरु का यह शब्दस्वरूप जो नामदान के बाद से हमेशा शिष्य के साथ रहता है, अत्यंत ज्योतिर्मय, आकर्षक और सुंदर होता है। कबीर साहिब इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि मैंने उसे देखा है परंतु उसके एक अंग की भी महिमा नहीं की जा सकती। वह तेज का पुंज और पारस के समान अभ्यासी को बदल सकनेवाला स्वरूप मेरे नेत्रों में समा गया है:

कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेज पुंज पारस धणीं, नैनूँ रहा समाइ॥⁽⁸²⁾

जब अभ्यासी की आत्मा आँखों के केंद्र से आगे ऊपर के मंडलों में जाती है, तब वह अपने सतगुरु की ज्योति के दायरे में प्रवेश करती है।

गुरु के शब्दस्वरूप से मिलाप होने पर शिष्य को अनुभव होता है कि उसके सतगुरु बाहर और अंदर हमेशा उसके साथ हैं।

गुरु अर्जुन देव कहते हैं:

सफल मूरत गुर मेरै माथै॥ जत कत पेखउ तत तत साथै॥⁽⁸³⁾

सब संतों ने कहा है कि सतगुरु के ज्योतिर्मय स्वरूप से मिलाप के बाद शिष्य कभी अपने गुरु से दूर नहीं होता। परंतु गुरु और शिष्य का यह मिलन जिसे कबीर साहिब ने सुरत सबद मेला कहा है, बगैर देहस्वरूप सतगुरु के मार्गदर्शन, सहायता और कृपा के संभव नहीं है। यह अनुभव देहस्वरूप के माध्यम से ही प्राप्त होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि जिन गुरु ने मुझे सारे जगत का भेद दिया है, वह गुरु मेरे अंदर प्रकट हो गए हैं। जिन (आंतरिक) शब्दगुरु को मैंने कभी देखा न था, उनको गुरु ने प्रत्यक्ष दिखा दिया। ज्ञान, आंतरिक मिलाप, प्रेम, सुख, दया, भक्ति तथा विश्वास और इन सबसे बढ़कर अंतर में सतगुरु के चरणों में निवास—ये सब प्रसाद गुरु की सेवा से ही पाए जा सकते हैं:

जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय।
जिन गुरु आँखि न देखिया, सो गुरु दिया लखाय॥⁽⁸⁴⁾

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु चरन निवास॥⁽⁸⁵⁾

देहस्वरूप सतगुरु की महिमा, शक्ति और महानता का पता अंतर में उनके ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन करने पर ही लगता है। बाहर न तो शिष्य गुरु के सामर्थ्य को समझ सकता है और न ही उसकी कल्पना कर सकता है। कबीर साहिब कहते हैं कि जब तक मैंने आंतरिक गुरु को नहीं जाना तब तक उनका गुणगान करता रहता था। जब मैंने गुरु को अपने अंतर में देख लिया तो जान गया कि गुरु का गुणगान करना असंभव है:

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।

अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं॥⁽⁸⁶⁾

सतगुरु दर्शन के आंतरिक अनुभव के बाद मन अंतर्मुख और स्थिर हो जाता है; काम, क्रोध, आशा और तृष्णा की आग बुझ जाती है और सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। कबीर साहिब का कहना है कि तब मन पवित्र होता है, उसे शांति मिलती है और हृदय का समुद्र आनंद से परिपूर्ण हो जाता है। जब अंदर गुरु प्रत्यक्ष हो जाते हैं तो जीव के सब कलुष धुल जाते हैं। तन के अंदर मन मान जाता है अर्थात् वश में हो जाता है और बाहर संसार में लिप्त नहीं होता। तृष्णा की धधकती आग बुझ जाती है, इसके भीषण ताप का स्थान शब्दरूपी जल की शीतलता ले लेती है:

सुचि पाया सुख उपजा, दिल दरिया भरपूर।

सकल पाय सहजे गया, साहिब मिला हजूर॥⁽⁸⁷⁾

तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग।

ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलन्ती आग॥⁽⁸⁸⁾

सतगुरु का शब्दस्वरूप कोई कल्पना नहीं बल्कि अभ्यासी को अंतर में प्रत्यक्ष होनेवाला एक अनुभव है। स्थूल संसार में शिष्य अपने गुरु के देहस्वरूप के संपर्क में आता है, अंदर रूहानी मंडलों में वह अपने सतगुरु के शब्दस्वरूप से मिलता है और धुरधाम पहुँचने पर वह देखता है कि सतगुरु और परमात्मा एक हैं।

जीते-जी मरना

जब शिष्य आँखों के केंद्र पर पहुँच जाता है तो उसकी रूहानी प्रगति शुरू होती है। उसकी आत्मा शरीर के नौ द्वारों से सिमटकर आँखों के पीछे आ जाती है और शरीर चेतना-शून्य यानी मुर्दे के समान हो जाता है। शिष्य की

आत्मा अंदर के आध्यात्मिक जगत में तब ही प्रवेश करती है जब शरीर अचेत हो जाता है परंतु शिष्य अंतर में पूरी तरह सजग रहता है, वहाँ उसकी चेतना पूर्णतया सक्रिय रहती है।

आत्मा को स्थूल शरीर में से समेटकर आँखों के केंद्र पर लाने की इस क्रिया को संतों ने 'जीते-जी मरना' कहा है। कबीर साहिब, गुरु नानक तथा अन्य संतों द्वारा प्रयुक्त 'जीते-जी मरना', 'मृत्यु से पहले मरना' और 'मरकर फिर जी उठना' आदि कथनों को विद्वानों ने केवल आलंकारिक कथन माना है। उनका विचार है कि 'जीते-जी मरने' का भाव संसार के प्रति मृत यानी उदास हो जाना है, संसार के आकर्षणों में से अनासक्त हो जाना है। इस प्रकार पंडितों और विद्वानों ने संतों के जीते-जी मरने की वास्तविक रूहानी अवस्था को वैराग्य की अवस्था समझ लिया है।

मृत्यु के समय आत्मा शरीर के विभिन्न अंगों—हाथ, पैर, धड़ आदि से सिमटकर आँखों के पीछे आ जाती है और यहाँ से निकलकर शरीर को हमेशा के लिए छोड़ देती है। संतों द्वारा सिखाए गए अभ्यास में शिष्य की आत्मा इसी प्रकार शरीर को छोड़कर आँखों के केंद्र में आती है और यहाँ से रूहानी मंडलों में प्रवेश करती है, परंतु इस अवस्था में उसे शरीर से जोड़े रखनेवाला वह सूक्ष्म तार नहीं टूटता जो मौत के समय टूट जाता है। अभ्यास के बाद शिष्य की आत्मा वापस शरीर में आ जाती है।

जीते-जी मरने की अवस्था प्रभु की प्राप्ति और जन्म-मरण के बंधनों से छूटने का एकमात्र साधन है। कबीर साहिब कहते हैं कि जीते-जी मरो और इस प्रकार मरकर पुनः जी उठो तो तुम्हारा फिर से जन्म नहीं होगा। जो इस प्रकार जीते-जी मरकर नाम में समा जाते हैं, उनकी लिव सुत्र अर्थात् माया रहित शुद्ध आत्मिक मंडलों में लगी रहती है:

जीवत मरहो मरहो फुन जीवहो पुनरप जनम न होई॥

कहो कबीर जो नाम समाने सुन रहिआ लिव सोई॥⁽⁸⁹⁾

जीते-जी मरने की यह अवस्था गुरु द्वारा दिए गए नाम के अभ्यास द्वारा प्राप्त होती है। इसका उल्लेख सभी संतों ने किया है। संत नामदेव

कहते हैं कि गुरु के द्वारा दिए गए शब्द के अभ्यास से मैंने अपने आप को पहचाना और ज़िंदा रहते हुए मरने की विधि सीखी। मेरे गुरु विसोबा खेचर कहते हैं कि हे नामदेव! जब हम जीते-जी मरने का अनुभव कर लेते हैं तो मृत्यु से ऊपर उठ जाते हैं।⁽⁹⁰⁾

मुसलिम संतों ने भी जीते-जी मरने को परमात्मा की प्राप्ति के लिए आवश्यक बताया है। ख्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि जब तक तू शरीर को ख़ाली नहीं करेगा, तू रूहानी आनंद की गली में पैर नहीं रख सकेगा। कबीर साहिब ने यही भाव इस प्रकार व्यक्त किया है:

ऊँचा तरवर गगन फल, बिरला पंछी खाय।

इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय॥⁽⁹¹⁾

मृत्यु के द्वार में से सबको गुज़रना पड़ता है। जिसने जन्म लिया है, उसे एक दिन मरना ही होगा। मृत्यु का भय और मरने के बाद क्या होगा, इसका डर हर मनुष्य के ऊपर छाया रहता है। परंतु संतों के शिष्य को मौत का कोई डर नहीं होता। वह मृत्यु को जीत लेता है क्योंकि वह प्रतिदिन मृत्यु के द्वार में से जाता और आता है। मौत उसके लिए कोई रहस्य नहीं होती क्योंकि वह अपने अनुभव के द्वारा उसे अच्छी तरह जान चुका होता है। कबीर साहिब कहते हैं, कबीर जिस मरने ते जग डरै मेरे मन आनंद॥⁽⁹²⁾ अभ्यासी मृत्यु को आनंद की घड़ी मानता है क्योंकि शब्द से जुड़कर उसने जान लिया होता है कि शरीर को त्यागने के बाद वह अविनाशी प्रभु से एक हो जाएगा। कबीर साहिब कहते हैं:

जे को मरै। मरन है मीठा, गुर प्रसादि जिनहीं मरि दीठा॥...

राम रमें रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हूवा॥⁽⁹³⁾

मरने के बाद हर जीव को शरीर छोड़कर सूक्ष्म जगत में जाना पड़ता है। परंतु संत कहते हैं कि मनुष्य को चाहिए कि शब्द के अभ्यास द्वारा

जीते-जी उस जगत में हो आए जहाँ मरकर उसे जाना पड़ेगा। कबीर साहिब कहते हैं कि गुरु का दिया हुआ परमज्ञान यही है कि शिष्य अंतर के जगत में जीते-जी प्रवेश करे और सुन्न मंडल अर्थात् मन तथा माया से परे के चेतन लोक में पहुँचे। जीव को चाहिए कि शरीर छूटने पर उसे जहाँ जाना है, उसका अनुभव जीवित अवस्था में ही प्राप्त कर ले:

कहै कबीर गुर परम गियाँन, सुनि मंडल मैं धरौ धियाँन॥

प्यंड परे जीव जैहै जहाँ, जीवत ही ले राखौ तहाँ॥⁽⁹⁴⁾

जीते-जी मृत्यु की क्रिया आत्मा को स्थूल जगत के बंधनों से छुड़ाने की क्रिया है। जब अभ्यासी अपनी इच्छा से शरीर के चोले को उतारकर अंदर के रूहानी जगत में प्रवेश करता है, तब ही उसे यह ज्ञान होता है कि वह शरीर नहीं बल्कि चेतन आत्मा है। अब वह प्रभु के गुणों का चिंतन करने और उसमें समाने के योग्य हो जाता है। कबीर साहिब के अनुसार ऐसा व्यक्ति बिरला होता है जो जीते-जी मरता है, ऐसा व्यक्ति मृत्यु के भय से मुक्त होकर प्रभु का गुणगान करता है और जहाँ भी देखता है वहाँ उसे ही पाता है:

कबीर ऐसा एक आध जो जीवत मिरतक होए॥

निरभै होए कै गुन रवै जत पेखउ तत सोए॥⁽⁹⁵⁾

शरीर को ख़ाली करके अंदर जाना ही जन्म-मृत्यु के बंधन से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है। सभी संतों का कथन है कि जीते-जी मरना ही परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग है। कबीर साहिब कहते हैं कि जो जीते-जी मरने की विधि जान लेते हैं, वे अंतर के पाँच रूहानी मंडलों में प्रवेश करके वहाँ के आनंद का अनुभव करते हैं। उनको वह अनुपम वस्तु (परमात्मा) प्राप्त हो जाती है, वे अपने अहं से मुक्त होकर प्रभु में समा जाते हैं:

जौ जीवित ही मरि जाँनै, तौ पंच सयल¹ सुख मानै।
कहै कबीर सो पाया, प्रभू भेटत आप गँवाया॥⁽⁹⁶⁾

कबीर साहिब के अनुसार भी इस अवस्था की प्राप्ति गुरु के द्वारा ही हो सकती है। अपने एक दोहे में वह कहते हैं कि सतगुरु ने मुझे शब्द का बाण मारा तो मैं गूँगा, बहरा और मतिहीन हो गया तथा इन पैरों से लँगड़ा हो गया अर्थात् जीते-जी मरने से मेरी आत्मा रूहानी मंडलों में चली गई जहाँ शरीर, इंद्रियों और बुद्धि का कोई उपयोग नहीं। आगे कहते हैं कि सतगुरु के बाण की चोट से मैं सुख की अवस्था में पहुँच गया, अब मैं न मरूँगा न जीऊँगा। वे लोग अमर हो जाते हैं जो इस प्रकार जीते-जी मरते हैं:

लागी गौंसी² सुख भया, मरै न जीवै कोय।
कहै कबीर सो अमर भे, जीवत मितक होय॥⁽⁹⁷⁾

गूँगा हुआ बावरा, बहिरा हुआ कान।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान॥⁽⁹⁸⁾

बेगम देस हमारा

संतों का 'अंदर जाना' कोई गहरे मानसिक चिंतन की अवस्था नहीं है। जिस 'अंदर' का वर्णन संत करते हैं, वह एक वास्तविकता है जिसका अनुभव पूरे गुरु का शिष्य तीसरे तिल को पार करने पर करता है।

आँखों के केंद्र से ऊपर जाने पर अभ्यासी रूहानी दुनिया के ऐसे दायरे में पहुँचता है जो अकथनीय है। यह दुःख-दर्द से रहित अलौकिक सुख का लोक है। जैसे-जैसे शिष्य चेतनता के ऊँचे मंडलों में बढ़ता है, वैसे-वैसे वह अधिक शांति और आनंद का अनुभव करता है। जब वह सर्वोच्च रूहानी देश में पहुँचता है तो उस आनंद का अनुभव करता है

जो अजर और अमर है, जो स्वयं परमात्मा है। संत कबीर इस लोक को बेगम देस कहते हैं—बेगम अर्थात् जहाँ कोई गम नहीं।

अवधू बेगम देस हमारा॥
राजा रंक फकीर बादसा, सबसे कहौं पुकारा।
जो तुम चाहत अहौ परम पद, बसिहो देस हमारा॥⁽⁹⁹⁾

गुरु रविदास ने इस लोक को बेगम पुरा कहा है। अधिकतर संतों ने अंदर के मंडलों के तथा वहाँ के रंग, शब्द, प्रकाश आदि के केवल संकेत ही दिए हैं। इनका अधिक विवरण गुरु अपने शिष्यों को नामदान के समय देते हैं।

गुरु नानक तथा अन्य गुरु साहिबान ने और संत रविदास, दादू दयाल, पलटू साहिब आदि संतों ने अपनी वाणी में इन मंडलों के केवल इशारे ही दिए हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में तुलसी साहिब और स्वामी जी महाराज ने कुछ अधिक ब्योरा देने की कोशिश की है। कबीर साहिब ने अंदर के देशों का वर्णन रूपकों और उदाहरणों के द्वारा किया है। आप अपने एक पद में कहते हैं कि आकाश की गुफा में निरंतर अमृत रस बरस रहा है। यहाँ बिना बाजे के संगीत हो रहा है जिसका ज्ञान अंतर में ध्यान लगने पर ही हो सकता है। वहाँ बिना तालाब के कमल खिल रहे हैं और निर्मल आत्माएँ (हंस) क्रीड़ा कर रही हैं। बिना चंद्रमा के प्रकाश हो रहा है और जिधर भी नज़र जाती है, निर्मल आत्माएँ दिखाई देती हैं। यहाँ पहुँचने पर काम, क्रोध आदि विकार भस्म हो जाते हैं, विकराल काल पास नहीं फटकता, युगों-युगों की इच्छाओं की प्यास बुझ जाती है और कर्म, भ्रम, पाप और व्याधि—सब दूर हो जाते हैं। जो इस लोक में पहुँच जाता है वह कभी नहीं मरता, वह अमर हो जाता है। यह तमाम अनुभव जीव को तब होता है, जब वह तीसरे तिल पर जाकर प्रभु के ध्यान में समाधि लगा लेता है।

रस गगन गुफा में अजर झरै॥ टेक॥

बिन बाजा झनकार उठै जहाँ, समुझि परै जब ध्यान धरै॥

1. सकल, सब 2. तीर, भाले आदि की नोक

बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केल करै॥
 बिन चंदा उँजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै॥
 दसवें द्वारे ताड़ी लागी, अलख पुरुष जा को ध्यान धरै॥
 काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै॥
 जुगन जुगन की तृषा बुझानी, कर्म भर्म अघ ब्याधि टरै॥
 कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अमर होय, कबहूँ न मरै॥⁽¹⁰⁰⁾

यह आनंद का धाम संतों का निजघर है। इस देश के सौंदर्य और सुख का अनुभव वेद-शास्त्रों के पठन, तर्क और कहने-सुनने से नहीं हो सकता और न ही जाति, वर्ण और कुल की मर्यादा के अनुसार चलकर या पूजा-पाठ, संध्या, नियम और रीति-रिवाजों को अपनाकर वहाँ पहुँचा जा सकता है। कबीर साहिब इस देश के बारे में एक और पद में कहते हैं:

बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा।
 बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा॥...
 महरम¹ होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा॥ टेक॥⁽¹⁰¹⁾

स्थूल, सूक्ष्म और कारण देशों को संतों ने 'ब्रह्मांड' या 'ब्रह्म का देश' कहा है। ब्रह्म से आगे के शुद्ध आत्मिक मंडलों को उन्होंने 'पारब्रह्म' कहा है। कबीर साहिब तथा कुछ अन्य संतों ने स्थूल संसार को पिंड, सूक्ष्म को अंड, कारण को ब्रह्मांड और परम चेतन मंडल को सचखंड कहा है।

पिंड का वर्णन करते हुए कबीर साहिब ने शरीर के छः चक्रों तथा उनको सिद्ध करने के यौगिक साधनों का जिक्र किया है। ये छः चक्र शरीर के अंदर हैं, इसलिए कबीर आँखों के नीचे के इन चक्रों के अभ्यास का खंडन करते हैं। संतों ने प्राणायाम, योगासन तथा इनसे संबंधित नियमों को स्वीकार नहीं किया है। ये साधन शरीर के नौ द्वारों

में सीमित हैं जबकि संतों का उपदेश नौ द्वारों से निकलकर तीसरे तिल में आने का है। कबीर साहिब कहते हैं कि अंदर की रूहानी यात्रा तब शुरू होगी, जब जिज्ञासु पूरे गुरु से उपदेश लेकर और नाम का अभ्यास करके अपने आप को आँखों के केंद्र पर ले आएगा।

संतों के अनुसार स्थूल, सूक्ष्म और कारण देशों को पार करने के बाद ही आत्मा शुद्ध रूहानी मंडलों में जा सकती है। ये मंडल त्रिकुटी से आगे 'दसवाँ द्वार' से शुरू होते हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि इस नौ दरवाज़ों वाली नगरी में भाग-दौड़ करनेवाले मन को स्थिर करो। जब तुम त्रिकुटी से ऊपर बढ़ोगे, 'दसवाँ द्वार' खुल जाएगा और तब मन मस्त हुआ नीचे त्रिकुटी में रह गया होगा:

नगरी एकै नउ दरवाजे धावत बरज रहाई॥

त्रिकुटी छूटै दसवा दर खूलहै ता मन खीवा भाई॥⁽¹⁰²⁾

संतों के आंतरिक मार्ग को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि पूरे सतगुरु के मार्गदर्शन में अभ्यास करके जिज्ञासु स्वयं अंदर जाकर उनके कथन की सचाई का अनुभव करे। कबीर साहिब कहते हैं: समझा का घर और है, अनसमझा का और।⁽¹⁰³⁾ अर्थात् जो व्यक्ति स्वयं यह अनुभव प्राप्त कर लेता है, उसे ज्ञान हो जाता है कि उसका असली घर यह संसार नहीं, प्रभु का धाम है। लेकिन जिनको यह ज्ञान नहीं है वे इस संसार को ही अपना घर समझते हैं।

मन

अंदर जाने में अभ्यासी को जिस सबसे बड़ी बाधा का सामना करना पड़ता है, वह मन है जो संसार के प्रलोभनों में उलझकर बाहरमुखी हो रहा है। कबीर साहिब इसे चोर कहते हैं क्योंकि यह अपने साथियों – काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष और इन सबसे बढ़कर, हौमैं के साथ मिलकर मनुष्य की रूहानी पूँजी लूट रहा है। वह अनमोल मनुष्य जन्म को बाहर के अर्थहीन कार्यों में लगाकर बरबाद कर रहा है:

तीन लोक चोरी भई, सब का धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा¹, पड़ा न काहू चीन्ह॥⁽¹⁰⁴⁾

संसार में कोई ऐसा विरोधी नहीं जिसे मनुष्य ने वश में न किया हो। उसने हाथी, घोड़े और शेरों को अपने अधीन किया है, राज्यों और देशों को जीता है परंतु अपने मन को नहीं जीत पाया है। युगों से मनुष्य मन को वश में करने के लिए अनेक उपाय करता आया है। जप-तप, तीर्थ-व्रत, यम-नियम, उपवास, संयम आदि मन को न कभी क़ाबू में कर सके और न कर सकते हैं। ऋषि-मुनि ऐसे अनेक उपाय वर्षों तक करते रहे पर मन को जीतने में असफल रहे। कबीर साहिब कहते हैं कि सब क्रियाएँ शरीर को कष्ट देने की हैं परंतु मन जैसे शक्तिशाली वैरी पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। शरीर को कष्ट देना, गुफाओं और जंगलों में रहना, हिमालय पर जाकर शरीर को गलाना आदि कठिन साधनाएँ, कबीर साहिब के अनुसार बाँबी को पीटने के समान हैं। इससे मनरूपी सर्प को मारा नहीं जा सकता:

बाँबी कूटें बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय॥⁽¹⁰⁵⁾

वास्तव में मन की प्रेरणा से ही जीव तीर्थों, पहाड़ों, सरोवरों आदि की ओर दौड़ता है, मन ही उसे पूजा-पाठ, दान-पुण्य, व्रत-उपवास आदि बाहरी क्रियाओं में उलझाता है। परंतु इन सब स्थानों पर जाने और इन क्रियाओं को अपनाने पर भी मन स्थिर नहीं होता। कबीर साहिब के अनुसार:

मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं॥⁽¹⁰⁶⁾

मन चंचल है। यह एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं बैठता। मनुष्य अपने शरीर को किसी अँधेरी गुफा में बंद कर ले तो भी मन वहाँ नहीं होगा। कबीर साहिब कहते हैं, कबीर मन मरकट¹ भया, नेक न कहूँ ठहराय।⁽¹⁰⁷⁾

मन अपने आप में निर्जीव है, वह अपनी ताक़त आत्मा से लेता है। बिजली का बल्ब खुद रोशनी से रहित होता है, वह प्रकाश देने की शक्ति बिजलीघर से मिलनेवाली ऊर्जा से प्राप्त करता है। मन और आत्मा का यह संबंध उस समय से चला आ रहा है, जब आत्मा धुरधाम से उतरकर नीचे के कारण, सूक्ष्म और स्थूल मंडलों में आई। जिस प्रकार मन आत्मा पर आश्रित है, उसी प्रकार इस संसार में आत्मा मन पर। इस स्थूल संसार में कार्य करने के लिए उसे मन का सहारा लेना पड़ता है।

मन कोई साधारण चीज़ नहीं, इसका स्रोत ब्रह्म है। यह अत्यंत शक्तिशाली है और यदि मित्र बन जाए तो सहायक होता है। यह पाँच तत्त्वों के सूक्ष्म अंश से बना हुआ है। जो व्यक्ति इसकी वृत्ति को अंतर्मुख करके इसे उन्मनी अवस्था अर्थात् ब्रह्म के मंडल में ले जाता है, उसे तीनों लोकों का ज्ञान हो जाता है:

इह मन सकती इह मन सीउ²॥ इह मन पंच तत को जीउ॥
इह मन ले जउ उनमन रहै॥ तउ तीन लोक की बातै कहै॥⁽¹⁰⁸⁾

इस स्थूल संसार में आकर मन भी स्वतंत्र नहीं है। विषयों के चाव की वजह से यह इंद्रियों का गुलाम बन गया है। कबीर साहिब कहते हैं कि मन विषयों को नहीं छोड़ता और विषय मन को नहीं छोड़ते, दोनों ही जीव पर पूरी तरह छा गए हैं:

मन नहीं छाड़ैं बिषै, बिषैं न छाड़ैं मन कौं।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग³ जन कौं⁴॥⁽¹⁰⁹⁾

मन पाँचों के बस परा, मन के बस नहिं पाँच।

जित देखूँ तित दौं¹ लगी, जित भागूँ तित आँच॥⁽¹¹⁰⁾

काम, क्रोध आदि विकार मन के अंग हैं। यह विषय-भोग में डूबा निरंतर अच्छे और बुरे कर्म करता रहता है। कबीर साहिब कहते हैं, कोटि करम पल में करै, यह मन विषया स्वाद।⁽¹¹¹⁾ एक अन्य स्थान पर आप कहते हैं:

कबीर मन बिकरै² पड़या, गया स्वादि कै साथि।

गलका खाया³ बरजता⁴, अब क्यूँ आवै हाथि॥⁽¹¹²⁾

कर्मों का मन से संबंध है। अपनी इच्छा, अपनी तृष्णा और अपनी वासना की पूर्ति के लिए मन लगातार कर्म करता रहता है। अपने किए कर्मों के फल को भोगने के लिए इसे बार-बार संसार में आना पड़ता है। इसकी तृष्णाएँ और कर्म इसे ऊँची-नीची योनियों में ले जाते हैं। मन के साथ बँधी होने के कारण आत्मा को भी बार-बार उसके साथ आना पड़ता है। मन के साथ ही उसे भी विभिन्न योनियों में भटकना और दुःख सहना पड़ता है।

विषयों में उलझकर, काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि को अपनाकर मन दुःख उठाता है परंतु उन्हें छोड़ता नहीं। वह खुद ही अपने कष्ट का कारण बना हुआ है पर चेतता नहीं। बाँस के वन में बाँसों ही के कारण (उनके आपस में टकराने के कारण) आग लग जाती है, बंसा अगनि बंस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे॥⁽¹¹³⁾ कबीर कुछ उदाहरण देते हुए कहते हैं कि मन स्वयं ही भूल करके अपना नुकसान करता है। शीशे से बने घर में पहुँचकर कुत्ता अपना ही प्रतिबिंब देखकर भौंक-भौंककर मर जाता है और बंदर सँकरे मुख वाले घड़े में रखे चनों

1. ज्वाला 2. विकारों में 3. गलका खाया=गले तक डूबा हुआ
4. मना करने पर भी

को निकालने के लिए हाथ डालता है, चने मुट्ठी में भर लेता है जिससे उसका हाथ घड़े में फँस जाता है पर चने बिखर न जाएँ, इस डर से मुट्ठी नहीं खोलता और पकड़ा जाता है। इसी प्रकार मन स्वयं ही माया के मोह में फँसकर कर्म करता है और कर्मजाल में बँधा रहता है। पद के अंत में कबीर साहिब नली अथवा चरखी पर लटके तोते का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि तोते को तो किसी और ने नहीं पकड़ा, वह खुद ही चरखी को पकड़े हुए है:

अपुनपौ आपही बिसरो।

जैसे स्वान कांच मंदिर में, भर्मित भूँकि मरो॥...

मर्कट मूठी स्वाद न बिहुरै¹, घर घर नचत फिरो।

कहै कबीर ललनी² के सुवना, तोहि कवने पकरो॥⁽¹¹⁴⁾

यही भाव एक अन्य पद में कबीर साहिब मन को संबोधित करते हुए इस प्रकार प्रकट करते हैं:

मरकट मुसटी अनाज की मन बउरा रे लीनी हाथ पसार॥

छूटन को सहसा परिआ मन बउरा रे नाचिओ घर घर बार॥

जिउ नलनी सूअटा गहिओ मन बउरा रे माया इह बिउहार॥

जैसा रंग कसुंभ का मन बउरा रे तित पसरिओ पासार॥⁽¹¹⁵⁾

मन जो आत्मा के लिए इस संसार में जीवन बिताने का एक साधन था, आत्मा पर हावी होकर उसके दर्द और परेशानी का कारण बन बैठा है। इस प्रकार युगों-युगों से वह आत्मा की रूहानी ज्योति को नष्ट कर रहा है। वह अमरबेल की तरह आत्मा पर छाया हुआ है। हर जन्म के साथ जीव एक नया शरीर लेता है और मौत के साथ ही उसे छोड़ देता

1. छोड़ता 2. बाँस की नली

है परंतु मन हर अवस्था में आत्मा से चिपका ही रहता है। इसी लिए कबीर साहिब कहते हैं: *माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।*⁽¹¹⁶⁾

मन हमेशा बदलता रहता है। कभी यह भक्ति की ओर जाता है तो कभी विषय-भोग की ओर, कभी यह शांत और नम्र रहता है तो कभी क्रोध और अहंकार से भरपूर होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि यदि जिज्ञासु गुरु से मिलकर सच्चे मन से उनसे शरण माँगे तो निस्संदेह गुरु उसे अपना लेंगे:

मन मोटा मन पातरा, मन पानी मन लाय।¹

मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही हूँ जाय॥⁽¹¹⁷⁾

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।

जो यह मन गुरु से मिलै, तौ गुरु मिलै निस्क²॥⁽¹¹⁸⁾

सतगुरु के उपदेश का सबसे आवश्यक अंग मन को शरीर के नौ द्वारों से समेटकर आँखों के केंद्र पर एकाग्र करना है। मन अनगिनत युगों से बाहर भटकने का आदी है और इसे विषय-भोगों की लत लग गई है। कबीर साहिब कहते हैं कि मन को विषयासक्ति से छुड़ाकर उसे पवित्र करना आवश्यक है। मन के पवित्र होने पर ही आत्मा उस परमात्मा में समा सकती है जो कि स्वयं निर्मल है:

जब लग मनहिं बिकारा, तब लगि नहीं छुटै संसारा॥

जब मन निरमल करि जाँनौ, तब निर्मल माँहि समानौ॥⁽¹¹⁹⁾

मन को पवित्र करने का उपाय उसे शरीर के नौ द्वारों से समेटकर आँखों के पीछे लाना है। यहाँ आने पर मन को आंतरिक रूहानी मंडलों का आनंद प्राप्त होने लगता है तथा उसकी वृत्ति अंतर्मुख हो जाती है।

मन कोई साधारण शक्ति नहीं है, यह ब्रह्म का अंश है, इसका असली घर त्रिकुटी अथवा ब्रह्म का देश है। जब अभ्यासी अपनी रूहानी यात्रा में इस देश में पहुँचता है तब मन अपने मूल स्रोत में मिलकर शांत हो जाता है। मन को इस स्थान पर लाना ही इस पर विजय प्राप्त करना है।

संतजन जब 'मन को मारने', 'मन को पीसने', 'मन को निर्मल करने', 'मन को जीतने', 'मन को मनाने' आदि की प्रेरणा देते हैं तो उनका अभिप्राय मन को त्रिकुटी में पहुँचाकर उसके मूल स्रोत में समा देने से होता है। कबीर साहिब उपदेश देते हैं कि विषयों में डूबे मनरूपी मदमस्त हाथी को मार दो, मन को पीसकर बारीक कर दो, मैमंता¹ मन मारि रे, नाँहाँ करि करि पीसि।⁽¹²⁰⁾ इसी भाव को और स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि मन को मारने का तात्पर्य है कि उसे शरीर के अंदर ही घेरकर अर्थात् नौ द्वारों के रास्ते बाहर जाने से रोककर, अंतर में एकाग्र किया जाए।

मैमंता मन मारि रे, घटहीं माँही घेरि।

जबहीं चालै पीठि दै, अंकुश² दे दे फेरि॥⁽¹²¹⁾

इस अवस्था का इशारा देते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि जब अंतर में वह कमल प्रकट हो जाता है जहाँ ब्रह्म का निवास है तो मनरूपी भ्रमर मुग्ध होकर वहीं रह जाता है अर्थात् जब अभ्यासी त्रिकुटी में यानी ब्रह्म के मंडल में पहुँच जाता है तो यह अपने स्रोत ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ।

मन भवरा तहाँ लुबधिया, जाँणैगा जन कोइ॥⁽¹²²⁾

कबीर साहिब तथा अन्य संतों ने मन को अंतर्मुख, एकाग्र तथा निर्मल करने का एकमात्र साधन नाम (शब्द) का अभ्यास बताया है। जैसे-जैसे मन शब्द को सुनेगा, वैसे-वैसे उसे आंतरिक रस प्राप्त होगा और उस रस के अनुभव के बाद संसार के रस फीके लगने लगेंगे। कबीर साहिब समझाते हैं:

इह रस छाडे उह रस आवा॥ उह रस पीआ इह रस नही भावा॥⁽¹²³⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि मन पर्वत के समान विशाल और कठोर था। परंतु जब इस पर शब्दरूपी टाँकी की चोट लगी तो इसके अंदर से सोने की खान निकली। इसलिए तू शब्द की खोज करके मन को वश में कर। यही मालिक से जुड़ने का सहज मार्ग है। जब मन आंतरिक मंडलों में शब्द की धुन सुनते-सुनते उसमें मग्न हो जाएगा तो यह अपनी भाग-दौड़ छोड़ देगा। यह सुन्न अर्थात् अचल हो जाएगा और शब्द में रमा रहेगा। पूर्णतया निर्मल हो जाने पर यह गगन में यानी त्रिकुटी के आकाश में पहुँचकर अपने स्रोत में समा जाएगा।

कबीर मन परबत हुआ, अब मैं पाया जानि।

टाँकी लागी सबद की, निकसी कंचन खानि॥⁽¹²⁴⁾

सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि॥⁽¹²⁵⁾

मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन हैं।

नहिं आवै नहिं जाय, सुन्न सबद थिति पावही॥⁽¹²⁶⁾

संत दादू दयाल भी कहते हैं कि मन नाम के सिवाय और किसी उपाय से एकाग्र नहीं होता:

कोटि जतन करि करि मूए, यहु मन दह दिसि जाइ।

राम नाम रोक्का रहै, नाही आन उपाइ॥⁽¹²⁷⁾

स्वामी जी महाराज समझाते हैं कि करोड़ों यत्न करने पर भी मन वश में नहीं आता परंतु शब्द की धुन को सुनकर यह संतुष्ट हो जाता है:

कोटि जतन से यह नहिं माने। धुन सुन कर मन समझाई॥⁽¹²⁸⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि एक बार अंदर स्थिर हो जाने पर मन अपनी काग-बुद्धि को त्यागकर शब्द की मधुर धुनें सुनता है—अब तो

मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात॥⁽¹²⁹⁾ नौ द्वारों से सिमटने पर मन का फैलाव समाप्त हो जाता है और वह अंतर में ध्यानमग्न हो जाता है। नाम के अभ्यास से धीरे-धीरे उसके बंधन से मुक्त हुआ जीव पवित्र परमधाम में पहुँच जाता है और सदा के लिए वहाँ का वासी हो जाता है:

मनुवाँ तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।

अमर लोक सुचि पाइया, कबहुँ न न्यारा होय॥⁽¹³⁰⁾

आत्म-साक्षात्कार अर्थात् आत्मज्ञान

जब अभ्यासी शरीर के नौ द्वारों को खाली करके आँखों के केंद्र से होता हुआ रूहानी मंडलों में प्रवेश करता है तो वह आत्मज्ञान की ओर बढ़ता है। अभ्यास के पक जाने पर वह जब चाहे शरीर को छोड़कर अंदर जा सकता है और वापस आ सकता है, तब उसे अनुभव हो जाता है कि उसका असली स्वरूप शरीर से भिन्न है। शरीर के आवरण को तो वह जब चाहे उतार सकता है और जब चाहे धारण कर सकता है। कबीर साहिब इसे अपने आप को और पराए को पहचानने की अवस्था कहते हैं। प्रभु से मिलाप प्राप्त करने की यह पहली सीढ़ी है। अपने आप को पहचान लेने के बाद ही आत्मा परमात्मा में समाती है:

कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाँहिं।

आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माँहिं॥⁽¹³¹⁾

परंतु सच्चा आत्म-साक्षात्कार अर्थात् अपने आप का ज्ञान त्रिकुटी में पहुँचकर मन के आवरण दूर करने पर होता है। मन का केंद्र तथा उद्गम-स्थान त्रिकुटी (ब्रह्म) का स्थान है। जिस प्रकार अभ्यासी की आत्मा नौ द्वारों को छोड़कर शरीर के आवरण को हटा देती है, उसी प्रकार त्रिकुटी के आकाश में पहुँचकर यह मन के आवरण से भी मुक्त हो जाती है। तब ही इसे अपनी असलियत का ज्ञान होता है। अब यह अपने आप को पहचान लेती है—कि यह न शरीर है, न मन है बल्कि इन दोनों से भिन्न एक निर्मल और चेतन सत्ता है। यही सच्चा

आत्मज्ञान है। इसे प्राप्त करने पर आत्मा अपने मूल परमात्मा से मिलाप के लिए आतुर हो जाती है।

कबीर साहिब कहते हैं कि अपने आप को पहचानने पर ही अभ्यासी प्रभु को पहचानने के योग्य होता है और सच्चे परमपद को प्राप्त कर सकता है। अपने एक पद में मौलवियों को समझाते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि अपने आप को जानकर ही तुम प्रभु को जान सकोगे और तब ही तुम बहिश्त अर्थात् परमधाम में पहुँच सकोगे, आपा जाँनि साँई कूँ जाँनै, तब है भिस्त सरीकी॥⁽¹³²⁾ इसी भाव को वह एक अन्य स्थान पर इस प्रकार प्रकट करते हैं, आप आप ते जानिआ तेज तेज समाना॥⁽¹³³⁾

आत्मारूपी ज्योति को उस परमज्योति यानी परमात्मा में समाने की योग्यता आत्मज्ञान के बाद प्राप्त होती है। यह अनुभव शब्द के अभ्यास द्वारा ही होता है। कबीर साहिब कहते हैं: मुक्ति सोज आपा पर जाँनै⁽¹³⁴⁾ अर्थात् मुक्ति की अवस्था वह होती है जिसमें आत्मा ने अपने आप को पहचानकर प्रभु को पहचान लिया होता है।

आत्म-साक्षात्कार की अवस्था का वर्णन करते हुए कबीर साहिब समझाते हैं कि नाम के अभ्यास से शिष्य जब उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ सुरत और निरत एक हो जाती हैं, अजपा जाप अर्थात् शब्द के प्रकट होने पर जाप समाप्त हो जाता है और कर्मों का लेखा उस अलेख प्रभु में समा जाता है अर्थात् आत्मा कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाती है, तब अभ्यासी की आत्मा उस 'आप' यानी परमात्मा में समा जाती है:

सुरति समाँणी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।

लेख समाँणाँ अलेख मैं, यूँ आपा माँहै आप॥⁽¹³⁵⁾

मन के शस्त्र

मन ने शरीररूपी किले में पाँच ज़बरदस्त पहरेदार बिठा रखे हैं। ये हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। अंदर जाने के लिए इनको जीतना आवश्यक है। काम मन को नीचे खींचता है, क्रोध इसे फैलाता है, मोह इसे दुनिया में जकड़े रखता है, लोभ इसे संसार के पदार्थों के

पीछे भटकाता है और अहंकार इसे परमात्मा की ओर जाने से रोकता है। इन्होंने जीव की दुर्गति कर रखी है। इनकी उपस्थिति में मनुष्य के सब गुण व्यर्थ हैं। कबीर साहिब कहते हैं:

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट में खान।

कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान॥⁽¹³⁶⁾

इनसे छूटने के लिए ऋषि-मुनियों, साधु-संन्यासियों, यतियों और वैरागियों ने अनेक उपाय किए परंतु सफल न हो सके। पुराण ऐसे पुरुषों के पतन की कथाओं से परिपूर्ण हैं।

कबीर साहिब इनसे मुक्त होने के लिए साधक को तरह-तरह के शारीरिक कष्ट सहने, जप-तप का मार्ग अपनाने या जंगलों में जाकर छिपने का उपदेश नहीं देते। वह कहते हैं कि घर-गृहस्थी में रहकर अपना सांसारिक कारोबार करते हुए शब्द का अभ्यास करो। यह हठकर्मों का मार्ग नहीं, सहज अभ्यास का मार्ग है। नाम के अभ्यास से धीरे-धीरे धन, परिवार आदि का मोह, काम भावना और सब सांसारिक कामनाओं से दूरी हो जाएगी तथा मनुष्य नाम में विलीन होकर नाम का रूप हो जाएगा:

सहजै सहजै सब गया, सुत बित। काम² निकाम³।

एकमेक है मिलि रहा, दास कबीरा नाम॥⁽¹³⁷⁾

अपनी रचना रमैनी में कबीर साहिब काम, क्रोध आदि विकारों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इनसे किसी को सुख और शांति नहीं मिल सकती। जिस प्रकार नीम का कीड़ा नीम के रस को चाहता है, उसी प्रकार मनुष्य विषय-वासना के ज़हर को अमृत समझकर उनके पीछे भागता है, नींब कीट रस नींब पियारा, यूँ विष कूँ अमृत कहै संसारा॥⁽¹³⁸⁾ इसी रमैनी के अंत में कबीर साहिब छुटकारे का मार्ग बताते हुए कहते हैं कि जब मनुष्य प्रेम और भक्ति की नाव में बैठेगा, जिसको

1. धन-दौलत 2. काम-भावना 3. सांसारिक इच्छाएँ

खेनेवाला सतगुरु होगा, उसके लिए वासनाओं से भरा हुआ भयंकर सागर गाय के खुर के समान छोटा हो जाएगा:

भाव भगति हित बोहिथा, सतगुर खेवनहार।

अल्प उदिक¹ तब जाँणिये, जब गोपदखुर बिस्तार॥⁽¹³⁹⁾

मूर्तिपूजा

मनुष्य की प्रवृत्ति स्वभाव से ही परमात्मा की भक्ति की ओर होती है क्योंकि आत्मा का स्वाभाविक झुकाव अपने मूल स्रोत परमात्मा की ओर है। परंतु यह न जानते हुए कि परमात्मा की तलाश कहाँ और किस प्रकार की जानी चाहिए, मनुष्य उसे मूर्तियों, धर्मग्रंथों, तीर्थों, नदियों, सरोवरों, पहाड़ों और गुफाओं आदि में ढूँढ़ता है। वह अपने हाथ से ईंट-पत्थरों की इमारतें खड़ी करके उन्हें परमात्मा के रहने का स्थान मान लेता है। उसे पाने के लिए वह रंग-बिरंगे भेष धारण करता है, तिलक आदि लगाता है, माला फेरता है, दान-पुण्य करता है और तप, संयम आदि कठिन साधनों को अपनाता है।

मनुष्य समझता है कि इन साधनों से वह प्रभु को प्रसन्न कर रहा है परंतु संतों के अनुसार वह केवल भ्रमों में उलझकर अपने आप को भुलावे में डाल रहा होता है। कबीर साहिब ने इस प्रकार की क्रियाओं का बड़े स्पष्ट और प्रबल शब्दों में खंडन किया है। इसके फलस्वरूप उन्हें अपने जीवनकाल में ही पुरोहितों, पंडितों और रूढ़िवादियों के हाथों अपमान और अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ीं। संतों ने हमेशा जीवों को बाहरी पूजा और कर्मकांड से हटाकर आंतरिक अभ्यास की प्रेरणा दी है। शरीर अत और कर्मकांड का खोखलापन प्रकट करने के कारण मंसूर और सरमद, संत नामदेव, गुरु रविदास, गुरु नानक देव, गुरु अर्जुन देव तथा अन्य गुरु साहिबान, दादू दयाल, मीराबाई, पलटू साहिब आदि संतों को कबीर साहिब के समान ही समाज के हाथों असहनीय यातनाएँ सहनी पड़ीं।

कबीर साहिब कहते हैं कि बाहरमुखी पूजा व्यर्थ है। सच्ची आराधना संत की सेवा है, सच्ची पूजा सच्चे नाम का अभ्यास है:

पाहन पानी पूजि कै, सेवा जासी बाद¹।

सेवा कीजै साध की, सत्तनाम करु याद॥⁽¹⁴⁰⁾

जड़ पदार्थ मनुष्य के प्रेम के बदले में उसे प्रेम नहीं दे सकते और न ही वे अभ्यासी को आंतरिक मंडलों में ले जा सकते हैं। कोई भी कलाकार एक मूर्ति बनाकर उसमें प्रभु को बंद नहीं कर सकता। जड़ वस्तुओं की पूजा को व्यर्थ बताते हुए एक अन्य स्थान पर कबीर साहिब कहते हैं:

पाँहिन कूँ का पूजिए, जे जनम² न देई जाब³।

आँधा नर आसामुखी⁴, यौही खोवै आब⁵॥⁽¹⁴¹⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि यह बाहरी पूजा करना पत्थर की नाव में बैठकर संसार-समुद्र को पार करने का प्रयास करना है, पाथर की इक नाव बनाई, उतरा चाहे छिन में⁽¹⁴²⁾ एक अन्य स्थान पर वह कहते हैं कि ये सब बाहरमुखी क्रियाएँ कागज की नाव के समान हैं और मनुष्य के कर्मों का भार पाषाण के समान है जिसे लेकर यह नाव भवसागर को पार नहीं कर सकती:

कागद केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।

कहै कबीर बिचारि कै, भव बूड़ा संसार॥⁽¹⁴³⁾

इसी प्रकार किसी भी पानी में यह ताकत नहीं कि मन पर चढ़ी पापों की मैल को उतार सके। कबीर साहिब कहते हैं कि कड़वी तुंबी को अड़सठ तीर्थों में धोने से भी उसका कड़वापन नहीं जाता, इसी प्रकार शरीर को धोने से अंतर की मैल नहीं छूटती:

कांइआ मांजस कउन गुनां॥ जउ घट भीतर है मलनां॥
लउकी¹ अठसठ तीरथ न्हाई॥ कउरापन तरु न जाई॥⁽¹⁴⁴⁾

विभिन्न प्रकार की बाहरमुखी क्रियाओं का निषेध करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि जो अभ्यासी प्रभु से मिलाप करने की युक्ति जानते हैं, वे अपने तन में ही उसकी खोज करते हैं। उनको परमपद अवश्य प्राप्त होगा, इसमें कोई संदेह नहीं:

रौम बिनाँ संसार धंध कुहेरा², सिरि प्रगटया जम का फेरा॥ टेका॥
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तरु क मूये हज जाई।
जटा बाँधि बाँधि जोगी मूये, इनमें किनहूँ न पाई॥
कवि कवीवैं कविता मूये, कापड़ी³ केदारौं⁴ जाई।
केस लूँचि लूँचि⁵ मूये बरतिया⁶, इनमें किनहूँ न पाई॥
धन संचते राजा मूये, अरु ले कंचन भारी।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूये, रूप भूले मूर्ख नारी॥
जे नर जोग जुगति करि जाँनै, खोजै आप सरीरा।
तिनकूँ मुक्ति का संसा नाही, कहत जुलाह कबीरा॥⁽¹⁴⁵⁾

कबीर साहिब ने बाहरमुखी क्रियाओं का केवल खंडन ही नहीं किया है बल्कि परमात्मा की सच्ची भक्ति का मार्ग भी बताया है। उन्होंने मंदिर-मसजिदों की आलोचना की है क्योंकि परमात्मा का असली मंदिर मनुष्य का शरीर है। अगर उन्होंने रीति-रिवाजरूपी छोटे सिक्कों को त्यागने की प्रेरणा दी है तो इनके बदले प्रभुप्राप्ति की सही युक्ति के रूप में अशक्तिवादी मनुष्य के सामने रखी हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि लोग किनारे पर पड़े हुए खाली शंखों और सीपियों को बटोरने में लगे हुए हैं,

1. कड़वी लौकी, तुंबी 2. कुहरा 3. काँवर लेकर चलनेवाला 4. केदारनाथ
5. उखाड़-उखाड़कर 6. व्रतधारी

उन्हें चाहिए कि समुद्र में गोता लगाएँ जहाँ उन्हें रूहानियत के अनमोल मोती मिलेंगे।

समुद्र से रत्न प्राप्त करने की यह विधि अथवा शरीर के अंदर जाने का भेद संत अपने शिष्यों को दीक्षा के समय प्रदान करते हैं। दीक्षा (नामदान) के समय वे जिज्ञासु को तीन साधन—सुमिरन, ध्यान और शब्द—धुन बताते हैं।

संतों के अभ्यास की विधि मन और आत्मा को शरीर में से समेटकर, आँखों के केंद्र पर लाकर, आंतरिक मंडलों में ले जाने की विधि है। मन की बाहर भटकने की आदत को रोकने के लिए संतों ने दुनिया के सुमिरन की जगह नाम का सुमिरन, बाहरी ध्यान की जगह आंतरिक ध्यान और बाहर के स्वादों की जगह अंदर शब्द के रस का स्वाद लेने का उपाय बताया है।

सुमिरन

संतों का सुमिरन केवल जिह्वा से किसी नाम का जाप नहीं है। यह मन के द्वारा किया जाता है। सुमिरन करने के लिए किसी प्रकार की माला आदि बाहरी साधन की ज़रूरत नहीं है। मन सुमिरन में इतना लीन हो जाना चाहिए कि दुनिया के कामकाज करते हुए भी अभ्यासी का सुमिरन चालू रहे। सुमिरन की एकाग्रता का जिक्र करते हुए कबीर साहिब कई उदाहरण देकर समझाते हैं:

सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम॥⁽¹⁴⁶⁾

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार॥⁽¹⁴⁷⁾

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों सुरभी¹ सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं॥⁽¹⁴⁸⁾

सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल॥⁽¹⁴⁹⁾

सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल॥⁽¹⁵⁰⁾

सब संतों ने सुमिरन के महत्त्व पर जोर दिया है। मुसलिम फ़क़ीर भी कहते हैं कि खुदा के नाम का ज़िक्र अर्थात् सुमिरन, मन के द्वारा करना चाहिए। मौलाना रूम का कलाम है, “तू नाम का ज़िक्र बग़ैर ज़बान और तालू के कर॥”

इस सुमिरन के द्वारा आत्मा आँखों के केंद्र पर आती है, अंदर के वज्र-कपाट खुल जाते हैं और आंतरिक मंडलों का मार्ग सरलतापूर्वक तय होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि सुमिरन के द्वारा मनुष्य प्रभु में समा जाता है: कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय॥⁽¹⁵¹⁾

सुमिरन के विषय में अपने एक शब्द में कबीर साहिब कहते हैं कि सुमिरन से अभ्यासी मुक्ति प्राप्त करता है तथा फिर से संसार में नहीं आता। वह निर्भय पद में पहुँचकर अनहद शब्द की धुन सुनता है। मनुष्य को चाहिए कि ऐसा सुमिरन करे क्योंकि इसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती:

जिह सिमरन होए मुकति दुआर॥ जाहे बैकुंठ नही संसार॥
निरभउ कै घर बजावह तूर॥ अनहद बजह सदा भरपूर॥
ऐसा सिमरन कर मन माहे॥ बिन सिमरन मुकति कत नाहे॥⁽¹⁵²⁾

जब अभ्यासी अंदर के मंडलों में ऊपर की ओर प्रगति करता है तब कई बार काल की शक्तियाँ उसको डराने, प्रलोभन देने और गुमराह करने की कोशिश करती हैं परंतु सुमिरन के सामने ये शक्तियाँ ठहर नहीं सकतीं। जैसे ही अभ्यासी गुरु के दिए हुए नाम का सुमिरन करता है, ये शक्तियाँ भाग जाती हैं। कबीर साहिब कहते हैं: सत्तनाम सुन भागें सारे, जब सतगुरु नाम उचारा है॥⁽¹⁵³⁾

सतगुरु जिस नाम के सुमिरन की बख्शिशा करते हैं, उसमें गुरु की अपनी अपार शक्ति होती है। यह नाम अभ्यासी की अंतर में हर संकट से रक्षा करता है। यमराज और यमदूतों तक का साहस नहीं कि इस सुमिरन के आगे ठहर सकें। सभी द्वीप और खंड इसी के सहारे टिके हुए हैं और यह सारे ब्रह्मांड में गूँज रहा है। कबीर साहिब का कथन है:

कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।
जम डरपै सब भय करैं, गाजि रहा ब्रह्मंड॥⁽¹⁵⁴⁾

परंतु यह सुमिरन और इसकी विधि केवल पूरे गुरु से ही मिल सकती है। कुल-पुरोहितों, पंडितों, संन्यासियों और भेषधारियों द्वारा दिए गए सुमिरन का न तो कोई रूहानी महत्त्व होता है और न ही कोई आंतरिक लाभ। संतों द्वारा सुमिरन के लिए दिए जानेवाले नाम पुस्तकों में लिखे मिल सकते हैं, परंतु इनके पीछे वह रूहानी शक्ति नहीं होती जो पूरे गुरु के दिए नाम में होती है।

कबीर साहिब कहते हैं कि यह सुमिरन पूरे गुरु से प्राप्त करो और इसे अपने मन में लगातार करते रहो:

सिमर सिमर हर हर मन गाईए॥ इह सिमरन सतगुरु ते पाईए॥⁽¹⁵⁵⁾

जिस प्रकार तीर धनुष से छूटने पर ही लक्ष्य को बींध सकता है और गोली बंदूक में से चलने पर ही निशाने पर लग सकती है, उसी प्रकार पूर्ण सतगुरु द्वारा प्राप्त होनेवाले नाम के सुमिरन से ही मुक्ति मिल सकती है। संतों के दिए सुमिरन में ऐसी शक्ति होती है कि वह शिष्य की आत्मा को नौ द्वारों से खींचकर रूहानी मंडलों में ले जाती है।

दरिया साहिब मारवाड़ वाले कहते हैं कि सतगुरु के मुख से निकले हुए सच्चे शब्द और हाथी के दाँतों में बड़ी समानता है। गज-दंत क्रिले के दरवाज़े को तोड़ते हैं और गुरु के शब्द अनंत कर्मों को तोड़ते हैं। हाथी के बिना, केवल दाँत क्रिले का द्वार नहीं तोड़ सकते, उनसे केवल स्त्रियों के हाथों की चूड़ियाँ और खिलौने ही बन सकते हैं:

सत सब्द सत गुरुमुखी, मत गजंद मुख दंत।
 यह तो तोड़ै पौल¹ गढ़, वह तौड़े करम अनंत॥
 दाँत रहै हस्ती बिना, तो पौल न टूटै कोय।
 कै कर धारै कामिनी, कै खेलारौ² होय॥⁽¹⁵⁶⁾

कबीर साहिब बार-बार जिज्ञासु से कहते हैं कि वही नाम लाभप्रद और जीव का अपना होता है जो सतगुरु देते हैं:

सत नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
 और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै॥⁽¹⁵⁷⁾

सतगुरु द्वारा दिया गया सुमिरन हमेशा फलप्रद होता है। ऐसे नाम के सुमिरन का प्रभाव कभी नष्ट नहीं होता। कबीर साहिब कहते हैं:

सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय।
 खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय॥⁽¹⁵⁸⁾

ध्यान

जब सुमिरन के द्वारा मन शरीर में से सिमटकर आँखों के केंद्र पर आता है तो वह अपने स्वभाव के कारण वापस नीचे की ओर गिरने लगता है, क्योंकि इस केंद्र पर उसे कोई ऐसा आधार नहीं मिलता जिसके सहारे वह यहाँ ठहरा रह सके। मन को अंदर ठहराने के लिए संत ध्यान का साधन बताते हैं। सुमिरन के समान ध्यान भी मन का स्वभाव है और यदि सुमिरन मन को नौ द्वारों से हटाकर ऊपर लाता है तो ध्यान मन को संसार की ओर जाने से रोककर अंदर टिकाता है।

जन्म-जन्मांतरो से मन को संसार के पदार्थों और शक्तियों का ध्यान करने की आदत पड़ी हुई है। संत कहते हैं कि जहाँ मन का ध्यान और

प्यार होगा, वहीं जाकर जीव को जन्म लेना पड़ेगा। इसी लिए संसार का प्यार बार-बार संसार में जन्म लेने का कारण बनता है।

ध्यान चाहे किसी देवता की मूर्ति का हो या किसी महात्मा के चित्र का, वह जड़ का ही ध्यान है जो जीव को जड़ जगत के बंधनों से नहीं छुड़ा सकता। कबीर साहिब कहते हैं:

जहँ आसा तहँ बासा होई। मन बच कर्म सुमिरे जो कोई॥
 देह धरे कीन्हेउ जिमि आसा। अन्त आय लीन्हेउ तहँ बासा॥⁽¹⁵⁹⁾

पेड़, सर्प, पक्षी और जानवरों का ध्यान, आत्मा को इन्हीं के स्तर पर ले जाएगा। ये जीव तत्त्वों के हिसाब से एक, दो, तीन या चार तत्त्वों वाले हैं और सृष्टि में मनुष्य के दर्जे से कहीं नीचे हैं। मनुष्य पाँच तत्त्वों का बना हुआ है और सृष्टि का सिरमौर है। एक, दो, तीन या चार तत्त्वों के प्राणियों के ध्यान से मनुष्य इनके साथ लगाव अथवा मोह पैदा करके नीचे गिरेगा।

कबीर साहिब कहते हैं कि अनमोल मनुष्य जन्म पाकर साधक को चाहिए कि वह ऐसा ध्यान धरे कि उसे दोबारा जन्म लेकर किसी प्रकार का ध्यान न करना पड़े:

सो गुर करहो जे बहुर न करना॥ सो पद रवहो जे बहुर न रवना॥
 सो धिआन धरहो जे बहुर न धरना॥ ऐसे मरहो जे बहुर न मरना॥⁽¹⁶⁰⁾

मनुष्य ने परमात्मा को देखा नहीं है जिससे उसका ध्यान कर सके और पत्थर, पेड़, पशु, पक्षी आदि उसके ध्यान के योग्य नहीं। संत पूरे गुरु के ध्यान का उपदेश देते हैं क्योंकि सतगुरु मनुष्य के रूप में रहते हुए भी अंतर में परमात्मा में समाए रहते हैं। कबीर साहिब के अनुसार ऐसे गुरु के दर्शन ही परमात्मा के दर्शन हैं। ईसा मसीह भी कहते हैं, “जिसने मुझे देखा है, उसने परमपिता को देख लिया है।”⁽¹⁶¹⁾

संतों के अनुसार सतगुरु का ध्यान प्रभु का ही ध्यान है। कबीर साहिब कहते हैं कि सतगुरु का देहस्वरूप वह दर्पण होता है जिसमें

1. मुख्य द्वार 2. खिलौने

निराकार प्रभु का प्रतिबिंब दिखाई देता है। अगर उस प्रभु को देखना है तो उसे संतों में ही देख:

निराकार की आरसी, साधोंहीं की देहि।

लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं में लखि लेहि॥⁽¹⁶²⁾

देहस्वरूप में सतगुरु मनुष्य के ही स्तर पर होते हैं। मनुष्य उन्हें देख सकता है, उनसे मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है, उनसे बातचीत कर सकता है, उनकी भक्ति करके उनकी प्रेमपूर्ण कृपा पा सकता है। परमात्मा अलख और अगोचर है तथा जब तक मनुष्य देह में बैठा है, उससे किसी प्रकार का संपर्क नहीं कर सकता। इसलिए कबीर साहिब हरि हरिजन दोउ एक हैं ही नहीं कहते बल्कि घोषणा करते हैं कि हरिजन अथवा संत प्रभु से भी बड़े हैं क्योंकि प्रभु उनके अंदर प्रकट होता है:

हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं।

कह कबीर जग हरि बिखे¹, सो हरि हरिजन माहिं॥⁽¹⁶³⁾

इसी लिए कबीर साहिब और अन्य संतों ने गुरु के ध्यान को बहुत महत्त्व दिया है।

सूफ़ी फ़क़ीरों ने भी मुर्शिद यानी गुरु का ध्यान करने पर ज़ोर दिया है। ख़्वाजा हाफ़िज़ ध्यान की पूर्णता का वर्णन करते हैं, “जब मुर्शिद का रूप मेरे हृदय में स्थिर हो गया तो आदि और अंत का सब भेद मुझ पर प्रकट हो गया।... ऐ प्रियतम, जब अभ्यास में मैंने तेरी सूरत को अंतर में धारण कर लिया तो मेहराब² तेरी पुकार से गूँज उठी।” स्वामी जी महाराज भी गुरु के ध्यान को मुक्ति का साधन मानते हैं, गुरु का ध्यान कर प्यारे। बिना इस के नहीं छुटना॥⁽¹⁶⁴⁾

1. में 2. भाव मस्तक

सच्ची भक्ति यानी पूजा गुरु के आंतरिक चरणों की पूजा है, सच्चा नाम गुरु के द्वारा दिया हुआ नाम है, सच्चा ध्यान गुरु के स्वरूप का ध्यान है तथा सच्चा प्रेम (गुरुप्रेम) ही अंतिम सत्य है:

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।

मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव¹॥⁽¹⁶⁵⁾

शब्द-धुन

संतों के अभ्यास का तीसरा अंग भजन अर्थात् अंतर में शब्द-धुन को सुनना है। मन और आत्मा जब सुमिरन के द्वारा सिमटकर आँखों के केंद्र पर आते हैं तथा ध्यान के द्वारा यहाँ ठहरते हैं, तब वे इस स्थान पर शब्द के संपर्क में आते हैं। शब्द की धुन हर मनुष्य के अंदर लगातार हो रही है; परंतु उसका खयाल बाहर दुनिया में लगा रहता है, इसलिए वह सुनाई नहीं देती। जब अभ्यासी आँखों के केंद्र पर पहुँचता है, तब वह सीधे शब्द के संपर्क में आता है तथा शब्द से जुड़कर आंतरिक मंडलों में होते हुए शब्द के स्रोत परमात्मा तक पहुँच जाता है।

यद्यपि शब्द की पूरी शक्ति और मिठास का अनुभव अंदर जाने पर ही होता है, पर सतगुरु से दीक्षित कुछ शिष्य अपने अभ्यास के आरंभ में ही शब्द को सुनना शुरू कर देते हैं। पूरे गुरु शब्द का ही रूप होते हैं, वह शिष्य को नामदान के समय, आत्मा को शब्द के साथ जोड़ने की विधि बता देते हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि सतगुरु ने मुझ पर अपार कृपा करके ऐसा अमर शब्द प्रदान किया है जिसके फलस्वरूप मैं अंतर के शीतल और सुखमय लोकों में पवित्र आनंद ले रहा हूँ:

सतगुरु मोहिं निवाजिया, दीन्हा अम्मर बोल।

सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल॥⁽¹⁶⁶⁾

1. सत भाव=सच्चा प्रेम

संतों द्वारा बताए गए रूहानी अभ्यास का खास उद्देश्य शिष्य को अंतर में शब्द की ध्वनि और प्रकाश के साथ जोड़ना है। सतगुरु द्वारा दी गई दीक्षा का यह सबसे ज़रूरी अंग है। कबीर साहिब कहते हैं: गुरु तो ऐसा चाहिये, देवै सबद लखाय॥⁽¹⁶⁷⁾ सुमिरन और ध्यान की पूर्णता होने पर आत्मा सीधे शब्द के संपर्क में आती है। शब्द की ध्वनि की मिठास और प्रकाश का आनंद केवल अनुभव की चीज़ है। भीखा साहिब के शब्दों में:

सबद प्रकास दियो गुरु दान। देखत सुनत नैन बिनु कान॥
जा को सुख सोइ जानत जान। हरि रस मधुर कियो जिन पान॥⁽¹⁶⁸⁾

सहजे ही धुन होत है, हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत¹ नाहिं॥⁽¹⁶⁹⁾

अभ्यास में गहरी एकाग्रता की अवस्था में मन और तन स्थिर हो जाते हैं। सुरत, शब्द की धुन में और निरत उसके प्रकाश में लीन हो जाती है। कबीर साहिब कहते हैं कि इस एक क्षण के आनंद की बराबरी युगों तक स्वर्गों के निवास का सुख भी नहीं कर सकता:

तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप² न पावै कोय॥⁽¹⁷⁰⁾

अभ्यास में एकाग्रता की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त होने पर ज़बानी सुमिरन तथा अजपा सुमिरन अर्थात् मन के अंदर अपने आप होनेवाला जप बंद हो जाता है। इस अवस्था में अभ्यासी के लिए अनहद शब्द भी समाप्त हो जाता है क्योंकि उसकी आत्मा शब्द में लीन होकर शब्द का ही रूप हो जाती है, बूँद समुद्र बन जाती है। जब इस प्रकार सुरत यानी आत्मा शब्द में समा जाती है तो वह काल की सीमा से परे हो जाती है। कबीर साहिब कहते हैं:

1. आवश्यकता 2. ब्रह्मा का एक दिन

जाप मरै, अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल नहिं खाय॥⁽¹⁷¹⁾

नाम (शब्द) के अभ्यास से मन पवित्र होता है और अभ्यासी के आंतरिक मार्ग की बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं। शब्द के अभ्यास से संचित कर्मों का विशाल ढेर जो जन्म-जन्मांतरों से त्रिकुटी में जमा हो रहा होता है, भस्म हो जाता है:

कबीर सतगुरु नाम से, कोटि बिघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा¹, केता काठ जराय॥⁽¹⁷²⁾

विश्वास के साथ किया गया सच्चे नाम का अभ्यास सब भ्रमों और कर्मों के बंधनों को दूर करता है। सतगुरु ऐसे अभ्यासी की सब कामनाएँ पूरी करते हैं:

सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै॥⁽¹⁷³⁾

कर्म

स्थूल, सूक्ष्म और कारण मंडलों में बिना कारण के कोई भी कार्य अथवा क्रिया नहीं हो सकती। मन और माया की सीमा में हर क्रिया के पीछे कोई न कोई निमित्त यानी कारण अवश्य होता है। इसी प्रकार इनकी सीमा में किया जानेवाला हर कार्य भविष्य में होनेवाली किसी घटना का कारण बनता है। कार्य और कारण का यह सिलसिला आत्मा को मन-माया के देश में बाँधे रखता है। कार्य और कारण के इस क्रानून को कर्म-सिद्धांत कहते हैं।

कर्म और उसके फल के नियम के अनुसार ही जीव संसार में जन्म लेता है और यहाँ आकर सुख-दुःख भोगता है। कबीर साहिब कहते हैं:

1. आग

जैसी करनी जासु की, तैसी भुगतै सोय।⁽¹⁷⁴⁾ यही भाव गुरु नानक देव प्रकट करते हैं, जैसा बीजै सो लुणै जो खटे सो खाए॥⁽¹⁷⁵⁾ अर्थात् मनुष्य जैसा बीज बोता है वैसी ही फ़सल उसे काटनी पड़ती है और जो वह कमाता है, उसी के अनुसार गुज़ारा करना पड़ता है।

मनुष्य को कर्म करते समय सोचना चाहिए। कर्म करने के बाद जब उसका फल भोगने का समय आता है, तब पछताने से कोई लाभ नहीं होता क्योंकि कर्मों के क़ानून के अनुसार जीव को अपने किए हुए कर्मों को तो भुगतना ही पड़ता है। कबीर साहिब कहते हैं:

करता था तौ क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ।
बोवै पेड़ बँबूल का, अंब कहाँ तैं खाइ॥⁽¹⁷⁶⁾

शेख़ फ़रीद का भी यही कलाम है:

फरीदा लोड़ै दाख़ बिजउरीआं किकर बीजै जट॥
हँडै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पट॥⁽¹⁷⁷⁾

अर्थात् मनुष्य बबूल के बीज बोता है पर चाहता है कि बिजौर देश के बढ़िया अंगूर खाए, मोटी ऊन कातता है और चाहता है रेशम पहने।

कबीर साहिब के अनुसार विष के बीज बोने पर मनुष्य को विषैला फल ही मिलेगा, उस समय उसकी शिकायतें व्यर्थ होंगी, विष की क्यारी बोड़ करि, लुणत¹ कहा पछिताइ॥⁽¹⁷⁸⁾

कबीर साहिब इस भाव को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कलियुग में यही दुःख की बात है कि लोग बुरे कर्म करते हैं परंतु भूल जाते हैं कि उनके फल भोगने से नहीं बच सकते; जो वस्तु लोटे में डाली जाएगी वही उसकी टोंटी में से निकलेगी, कहैं कबीर ये कलि है खोटी, जो रहै करवा² सो निकरै टोटी॥⁽¹⁷⁹⁾

मनुष्य के कर्म चाहे अच्छे हों चाहे बुरे, उसे मन और माया के देश में जकड़े रखते हैं। कर्मों की यह शृंखला कभी टूटती नहीं और हर कर्म के साथ इसमें नई कड़ियाँ जुड़ती ही जाती हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने ही द्वारा बनाए गए बंधनों से इस सुख-दुःख के संसार में बँधा रहता है। कबीर साहिब कहते हैं: आपै बरै¹ करम की रसरी, आपन गर² कै फाँसा॥⁽¹⁸⁰⁾

कर्मों की ओर प्रेरित करनेवाली ताक़त मन है जिसके आदेश के अनुसार शरीर कर्म करता है। कर्मों के कारण जीव बार-बार संसार में आता है और मन हमेशा उसके साथ रहता है। केवल अच्छे कर्म हों तो स्वर्गों में निवास मिलता है, परंतु उन नेक कर्मों का फल समाप्त होने पर जीव को फिर चौरासी के चक्कर में आना पड़ता है। अगर बुरे कर्म हों तो उसे नरकों में कष्ट भोगना पड़ता है। जीव संसार में हर बार मनुष्य का चोला प्राप्त नहीं करता। अपनी इच्छाओं, तृष्णाओं और कर्मों के फलस्वरूप उसे पशुओं, पक्षियों, जल के जीवों, कीड़े-मकोड़ों और यहाँ तक कि पेड़-पौधों के चोले भी अपनाने पड़ते हैं। कबीर साहिब कहते हैं:

असथावर जंगम कीट पतंगा॥ अनिक जनम कीए बहु रंगा॥
ऐसे घर हम बहुत बसाए॥ जब हम राम गरभ होए आए॥⁽¹⁸¹⁾

मुसलिम संतों ने भी आवागमन के सिद्धांत की पुष्टि की है। मौलाना रूम कहते हैं कि इस दुनिया में हम सैकड़ों रूप लेते हैं, कभी एक कभी दूसरा। लाखों बार हम इस दुनिया में आए और यहाँ से गए हैं क्योंकि यह दुनिया आने और जाने की जगह है।

जन्म-मरण के इस चक्र से जीव केवल मनुष्य जन्म में ही छुटकारा पाने का उपाय कर सकता है। संतों ने मनुष्य जन्म को एक दुर्लभ अवसर बताया है, क्योंकि इसमें ही जीव संतों की शरण लेकर और नाम का अभ्यास करके प्रभु से मिलाप कर सकता है। कबीर साहिब कहते हैं कि

मनुष्य देह को पाने के लिए देवी-देवता भी तरसते हैं। ऐसी देह को पाकर हमें प्रभुभक्ति करनी चाहिए और इस जन्म का पूरा लाभ उठाना चाहिए:

इस देही कउ सिमरह देव॥ सो देही भज हर की सेव॥

भजहो गोबिंद भूल मत जाहो॥ मानस जनम का एही लाहो¹॥ (182)

यद्यपि अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकार के कर्म बंधन का कारण हैं, फिर भी संत बुरे कर्मों को छोड़कर अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। अच्छे कर्मों की वजह से जीव को मनुष्य जन्म मिलता है जो प्रभुप्राप्ति का एक बहुमूल्य अवसर होता है।

कर्मों के बंधन को संतों ने तीन लड़ों की रस्सी कहा है। ये तीन लड़ हैं—प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित कर्म।

इस संसार में जीव अपने भाग्य यानी प्रारब्ध के अनुसार योनि, कुल, गोत्र, वातावरण, सुख-दुःख आदि पाता है। उसके जीवन की धारा एक पूर्वनिश्चित मार्ग पर चलती है। जिन कर्मों के अधीन होकर जीव जन्म लेता है, उनके अनुसार ही उसे संसार में जीवन बिताना पड़ता है। भाग्य की रेखा को, प्रारब्ध कर्मों के फल को कोई बदल नहीं सकता। कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य इस संसार में कर्मों से बँधा हुआ आता है और बँधा हुआ ही जाता है, करम का बाँध्या जीयरा, अह निसि आवै जाइ।⁽¹⁸³⁾

यह संसार कर्मभूमि है। यहाँ आकर जीव को कर्म करने ही पड़ते हैं। खाने-पीने, चलने-फिरने, यहाँ तक कि साँस लेने में भी जीव कर्म करता है और आगे के लिए बीज बोता है। कर्मों का यही नियम है कि हर कर्म कारण होता है और उसका फल कार्य। हर नया कर्म आगे के लिए कारण बनता है। इस प्रकार इस संसार में आकर जीव जो भी कर्म करता है, उन्हें संत क्रियमाण कर्म कहते हैं जिनका फल उसे भविष्य में भोगना पड़ता है।

पिछले कर्मों का हिसाब चुकाते समय भी जीव कोई न कोई नया कर्म भी करता रहता है। इस प्रकार कर्मों का अंबार उन्हें भुगतने पर भी कम नहीं होता। एक जन्म में मनुष्य इतने कर्म कर डालता है कि उनका हिसाब चुकाने में उसे कई जन्म लग सकते हैं। जो कर्म इस तरह इकट्ठे हो जाते हैं, उन्हें संतों ने 'संचित कर्म' कहा है। अगर जीव प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों से छुटकारा पा भी ले तो ये संचित कर्म उसे वापस संसार में ले आते हैं।

इस सृष्टि का विधान ही ऐसा है कि जीवात्मा कर्मों के अधीन जन्म लेती है, कर्मों के अधीन जीती, मरती और फिर से जन्म लेती है। एक बार गुलाम बन जाने के बाद वह हमेशा के लिए कर्मों की गुलाम बनी रहती है। कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य इस संसार में कर्मों की ज्वाला से घिरा रहता है। चाहे वह दाहिने जाता है या बाएँ, अच्छे कर्म करता है या बुरे, उसके सब काम कर्मों की अदृश्य लपटों के बीच ही होते हैं अर्थात् उसका हर कार्य कर्म और उसके फल के नियम के अधीन होता है। उसके पीछे संचित कर्मों की अग्नि है और भविष्य भी कर्मों की इस दहकती ज्वाला के अंदर ही है:

झल बाँवै झल¹ दाँहिनै, झलहिं माँहि ब्यौहार।

आगैं पीछे झलमई, राखैं सिरजनहार॥ (184)

छुटकारे का उपाय

जो मनुष्य कर्मों के जाल और जन्म-मरण के चक्र से घबरा जाता है, वही उनसे बचने के उपाय सोचता है। संतों की शरण में जाकर प्रभु की सच्ची भक्ति करना ही छूटने का एकमात्र उपाय है। संत कर्मों के जाल की भयानकता ही नहीं बताते बल्कि उससे मुक्त होने का साधन भी सिखाते हैं। वे कहते हैं कि प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण कर्मों के बंधन से छूटने के तीन उपाय हैं—1. कर्मों को धैर्यपूर्वक भुगत लेना 2. शरण लेना और 3. शब्द (नाम) का अभ्यास करना।

प्रारब्ध कर्मों का हिसाब उन्हें भुगतकर ही चुकाया जा सकता है। परंतु मनुष्य उन्हें भोगते समय सुखी और दुःखी होता है; काम, क्रोध आदि के अधीन होकर व्याकुल होता है और उन्हें बदलने की कामना के अधीन होकर नई इच्छाएँ, आशाएँ और तृष्णाएँ पैदा करता है। इनके फलस्वरूप कर्मों का बंधन बढ़ता जाता है। संत उपदेश देते हैं कि हमें अपने प्रारब्ध कर्मों का हिसाब धैर्य, शांति और समभाव के साथ सहकर चुका देना चाहिए क्योंकि प्रारब्ध कर्मों में किसी प्रकार का फेर-बदल नहीं हो सकता। कबीर साहिब के अनुसार:

जाकौ जेता निरमया, ताकौ तेता होइ।
रती घटै न तिल बधै, जौ सर कूटै कोइ॥⁽¹⁸⁵⁾

कबीर साहिब मनुष्य शरीर को एक घड़े के समान बताते हुए कहते हैं कि कुम्हार घड़े को बनाकर उसे अपनी इच्छानुसार बाहर धूप में या पानी में रख सकता है और चाहे तो सँभालकर घर के अंदर रख सकता है। वह चाहे तो उसे चोट लगा सकता है और चाहे तो टूटने से बचा सकता है। यह सब उसके अपने अधिकार में है। इसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि अपने आप को उस बनानेवाले प्रभु की इच्छा पर छोड़ दे और कोई शिकायत न करे:

भानण¹ घड़ण सँवारण संग्रथ, ज्युँ राषै त्यूँ रहिए॥⁽¹⁸⁶⁾

ऐसा धैर्य और साहस प्राप्त करना सरल नहीं और न ही संसार के सुख-दुःख को समतापूर्वक स्वीकार करना आसान है। शरण लेने अथवा प्रभु की मौज में अपने आप को छोड़ देने में मनुष्य का सबसे बड़ा बाधक उसका अहंकार है। मनुष्य हर बात में अपने आप को कर्ता समझकर राग, द्वेष आदि में उलझा रहता है।

1. तोड़ने में

समभाव प्राप्त करने, अहंकार से छुटकारा पाने तथा नए कर्मों से न बँधते हुए, प्रारब्ध कर्मों को भुगतने का सामर्थ्य शब्द (नाम) के अभ्यास द्वारा प्राप्त होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि पिछले कर्मों का लेखा घट या बढ़ नहीं सकता। मनुष्य को चाहिए कि उनसे परेशान न हो, बल्कि मन को संतों की सेवा (नाम के अभ्यास) में लगाकर अपने उद्धार का उपाय करे:

अरे मन धीरज काहै न धरै।
सुभ और असुभ करम पूरबले, रती घटै न बढ़ै॥
होनहार होवै पुनि सोई, चिन्ता काहे करै।...
साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटिन ब्याधि हरै।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, सहज में जीव तरै॥⁽¹⁸⁷⁾

संचित कर्मों का भंडार जो त्रिकुटी में है, उसे शब्द के अभ्यास द्वारा नष्ट किया जा सकता है। स्वामी रामानंद कहते हैं: गुर का सबद काटै कोट करम॥⁽¹⁸⁸⁾ कबीर साहिब भी कहते हैं:

जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥⁽¹⁸⁹⁾

स्वामी जी महाराज का कथन है: शब्द कर्म की रेख कटावे।⁽¹⁹⁰⁾ जन्म-जन्मांतरों से जीव के खाते में जो असंख्य कर्म अर्थात् संचित कर्म इकट्ठे हो गए हैं, वे शब्द (नाम) के अभ्यास से कट जाते हैं। कबीर साहिब के अनुसार कोटि करम कटि पलक में, जो रंचक आवै नाँव।⁽¹⁹¹⁾ सतगुरु की शरण में आकर उनके दिए हुए नाम की साधना करना ही कर्मों से छूटने का कारगर उपाय है। कबीर साहिब का कथन है:

सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ रहै¹, ता की बेदन जाय॥⁽¹⁹²⁾

1. पथ रहै=संयम से रहे

कबीर साहिब कहते हैं कि जीव ने गुरु से नाम लेने तथा उनकी शरण में आने से पहले संचित कर्मों की जो गठरी बाँध रखी होती है, वह गुरु की ओट लेने पर नष्ट हो जाती है:

पहिले बुरा कमाइ के, बाँधी विष की पोत।

कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट॥⁽¹⁹³⁾

नाम के अभ्यास के द्वारा मन की वृत्ति जब अंतर्मुखी हो जाती है तो वह बाहरी संसार के अनेक कर्म करने से बच जाता है। संत रज्जब के अनुसार भी जीव अपने ही अच्छे तथा बुरे कर्मों के कारण संसार में जन्म लेता है। मनुष्य जन्म पाकर उसे चाहिए कि वह अपने आप को इस प्रकार अंतर में प्रभु में लीन रखे, जिस प्रकार एक कुएँ की परछाई कुएँ में ही रहती है:

भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या। जीव।

यह तुम्हारा तुमकुँ मिल्या, तुम क्यूँ मिले न पीव॥⁽¹⁹⁴⁾

जैसे छाया कूप की, बाहर निकसै नाहिं।

जन रज्जब यूँ राखिये, मन मनसा हरि माहिं॥⁽¹⁹⁵⁾

कबीर साहिब इस संसार को एक विशाल वृक्ष बताते हैं जिस पर भाँति-भाँति के पक्षी रात बिताने के लिए आते हैं और सुबह उड़ जाते हैं। वह इसे एक हाट बताते हैं जिसमें लोग सौदा बेचने और खरीदने अर्थात् कर्मों का ऋज चुकाने और नए कर्म इकट्ठे करने आते हैं और साँझ होने पर अपना सामान समेटकर चले जाते हैं। कर्मों के इस निरंतर चलते चक्र से छुटकारा पाने के लिए कबीर साहिब एक लुहार का दृष्टांत देते हुए कहते हैं कि अभ्यास-रूपी निहाई पर, सुरत और निरत की सँडसी से पकड़कर, नामरूपी हथौड़े से बलपूर्वक आघात करना ही कर्म की रेखा को मिटाने का उपाय है:

अस कोई मन हि लोह सम तावै॥ टेक॥...

सुरत निरत की सँडसी करि लै, जुगत निहाई जमावै।

नाम हथौड़ा दृढ़ कर मारै, करम की रेख मिटावै॥⁽¹⁹⁶⁾

रूहानी मार्ग के नियम

रूहानी मार्ग के कुछ नियम हैं। ये किसी प्रकार के बाहरमुखी रीति-रिवाज नहीं बल्कि संसार में एक सहज, नेक जीवन बिताने के नियम हैं। सत्य, ईमानदारी, दयालुता आदि सदाचार के नियमों को सब धर्मों के महात्माओं ने अपनाया है। इनके पालन के साथ ही संत शाकाहार, मादक वस्तुओं से परहेज और पवित्र नैतिक जीवन पर भी बहुत जोर देते हैं।

दया, करुणा तथा सब जीवों के प्रति प्रेम, संतमत के आवश्यक अंग हैं। इस मार्ग में क्रूरता, द्वेष और जीवहत्या का कोई स्थान नहीं है। कबीर साहिब कहते हैं कि सबके प्रति दया और करुणा का भाव रखना चाहिए क्योंकि साई के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर। सोय॥⁽¹⁹⁷⁾

जीवहत्या और मांसाहार को धर्म के नाम पर बढ़ावा देनेवाले पंडितों और मुल्लाओं की कबीर साहिब ने कठोर आलोचना की है। पंडितों को संबोधित करते हुए वह कहते हैं कि तुम कैसी मूर्खता कर रहे हो! जीवहत्या करके तुम उसे धर्म कहते हो तो बताओ कि अधर्म किसे कहोगे? तुम लोग एक दूसरे की सराहना 'मुनिवर, मुनिवर' कहकर करते हो तो बताओ कि कसाई किसे कहोगे? इसी प्रकार मुल्लाओं से कबीर साहिब कहते हैं कि तुम बेरहमी से जानवरों को मारते हो और इसे हलाल कहते हो परंतु जब खुदा के दरबार में तुम्हारे सामने तुम्हारे पापों का लेखा रखकर हिसाब पूछा जाएगा तब तुम्हारा क्या हाल होगा?

पडीआ कवन कुमत तुम लागे॥...

जीअ बधहो सो धरम कर थापहो अधरम कहहो कत भाई॥

अपस कउ मुनिवर कर थापहो का कउ कहहो कसाई॥⁽¹⁹⁸⁾

कबीर जीअ जो मारह जोर कर कहते हहे जो हलाल¹ ॥
दफतर दई जब काढ है होइगा कउन हवाल ॥⁽¹⁹⁹⁾

गुरु रविदास भी जीवहत्या और मांसाहार का निषेध करते हुए कहते हैं कि किसी जीव को न मार। हर जीव में प्रभु निवास करता है। जीवहत्या का पाप करोड़ों गायों का दान करने पर भी नहीं धुल सकता:

प्रानी बध नहिं कीजियहि, जीवह ब्रह्म² समान।
'रविदास' पाप नह छूटइ, करोर गउन करि दान ॥⁽²⁰⁰⁾

संतों का शाकाहार का नियम कर्म-सिद्धांत पर आधारित है। कारण और कार्य का यह कठोर नियम है कि जीव को पीड़ा पहुँचाने वाला स्वयं पीड़ा सहेगा। जीवों की हत्या करके मांस खानेवाला आगे जाकर स्वयं किसी की खुराक बनेगा। कर्मों के हर कर्ज को चुकाना ही होगा। किसी भी संत ने मांसाहार को उचित नहीं कहा है।

पूजा, पाठ, शास्त्रों के अध्ययन और विद्वत्ता का कोई महत्त्व नहीं यदि मनुष्य के हृदय में दया और प्रेम नहीं। निर्दयी व्यक्ति संतों की वाणी का अध्ययन करते हुए भी दुर्गति से नहीं बच सकेंगे:

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥⁽²⁰¹⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि वेदों में लिखी जीव की बलि को धर्म कहने से वह धर्म नहीं बन जाती, अधर्म ही रहती है। ऐसे पापों का भार सिर पर लादकर न तो कभी कोई मुक्ति पा सका है और न ही पा सकेगा, चाहे धर्म और शास्त्र ऐसे पापों की कितनी ही सराहना क्यों न करें:

अजामेध, गोमेध यज्ञ, अश्वमेध, नरमेध।
कहहिं कबीर अधर्म को, धर्म बतावे वेद ॥⁽²⁰²⁾

जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप शिर होय।
निगम सुनि अस पापते¹, भिस्त² गया नहिं कोय ॥⁽²⁰³⁾

मांसाहार की तरह ही शराब, भाँग, अफ़्रीम, तमाकू आदि का भी संत विरोध करते हैं। कबीर साहिब के शब्दों में:

भाँग तमाखू छूतरा³, अफयूँ और सराब।
कह कबीर इन को तजै, तब पावै दीदार ॥⁽²⁰⁴⁾

शराब आदि मादक पदार्थ मनुष्य के सद्गुणों का नाश करते हैं और मन को बाहर ले जाते हैं। ये अभ्यासी के लिए विष के समान हैं क्योंकि ये मन को दुनिया में उलझाकर परमार्थ से विमुख करते हैं। इनकी आदत आसानी से पड़ जाती है परंतु आसानी से छूटती नहीं।

कई धर्मों ने शराब, अफ़्रीम आदि को एक धार्मिक रिवाज के रूप में अपनाया है। कबीर साहिब के समय में ऐसे साधु थे और आज भी हैं जो मादक वस्तुओं के उपयोग और वासना में प्रवृत्त होने को अभ्यास का अंग मानते थे। ऐसे लोगों को संत कबीर, गुरु नानक देव, संत रविदास, संत दादू दयाल आदि ने पाखंडी और पापी बताते हुए उन्हें 'साकत' कहा है। कबीर साहिब साकत लोगों की तीव्र आलोचना करते हैं:

कबीर साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ⁴ ॥
उह साकत बपुरा मर गइआ कोए न लैहै नाउ ॥⁽²⁰⁵⁾

मदिरा आदि नशीली चीज़ों का उपयोग मनुष्य को पशु के समान विवेकहीन बना देता है, मानुष से पसुआ करै... ॥⁽²⁰⁶⁾ ये वस्तुएँ मनुष्य को भक्ति से विमुख करके काम, क्रोध तथा विषय-वासना की ओर ले जाती हैं। दादू दयाल कहते हैं: माँस अहारी, मदु पिवै, विषै बिकारी सोइ ॥⁽²⁰⁷⁾

अंदर रूहानी मंडलों में जाने पर अभ्यासी उस दिव्य नशे का रस लेता है जिसके आगे संसार के सब भोग फीके लगते हैं। वह नाम की मदिरा पीता है जिसका नशा कभी उतरता नहीं। बाहर के नशे मनुष्य को मतिहीन करते हैं, उसकी बुद्धि को भ्रष्ट करते हैं, उसे भले-बुरे की समझ से रहित कर देते हैं। नाम का नशा मनुष्य की बुद्धि को निर्मल और मन को अंतर्मुख करता है; यह ऐसा नशा है जो जीव को प्रभु के महल में स्थान दिलाता है।

इसी लिए कबीर साहिब का कहना है:

कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिं।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला आहिं॥⁽²⁰⁸⁾

सहज योग

रूहानी मार्ग पर चलने के लिए एक पवित्र नैतिक जीवन अत्यंत आवश्यक है। परंतु संतों ने कभी ब्रह्मचर्य धारण करने या बाल-बच्चों को छोड़कर संन्यास लेने का उपदेश नहीं दिया है। संतों का मार्ग संसार से भागने का नहीं बल्कि संसार में रहते हुए उसमें अनासक्त रहने का मार्ग है। साधक को चाहिए कि वह अपने परिवार की ज़िम्मेदारियाँ निभाए तथा ईमानदारी की कमाई द्वारा उसका पालन करे। परंतु उनके प्रति अपने कर्तव्य निभाते हुए भी उनके मोह में न उलझे। कबीर साहिब एक नियमित गृहस्थ जीवन का उपदेश देते हैं। गृहस्थी में रहते हुए भी मनुष्य को शील और विवेक के साथ जीवन बिताना चाहिए और गुरुमुख अर्थात् सतगुरु के उपदेश पर चलना चाहिए, उनके सत्संग में रहना चाहिए तथा मन-वचन से उनकी सेवा करनी चाहिए:

सत्त सील दाया सहित, बरतै जग ब्यौहार।
गुरु साधू का आसित¹, दीन बचन उच्चार॥⁽²⁰⁹⁾

1. सहारा, निर्भर

जो मानुष गृहधर्म युत, राखै सील बिचार।
गुरुमुख बानी साधु सँग, मन बच सेवा सार॥⁽²¹⁰⁾

कबीर साहिब ने अपने मार्ग को 'मध्य मार्ग' कहा है। यह न विषय-भोग छोड़ने का मार्ग है, न भोगों में फँसने का; न त्याग का मार्ग है, न संग्रह का; न संसार से भागने का मार्ग है, न संसार में उलझने का। वह एक दोहे में इस मार्ग का इशारा देते हुए कहते हैं:

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥⁽²¹¹⁾

अभ्यासी के लिए त्याग और भोग दोनों ही प्रकार का जीवन हानिप्रद है। त्याग में मन को बलपूर्वक दबाने का प्रयास किया जाता है जबकि भोग में उसे खुली छूट दे दी जाती है। कबीर साहिब कहते हैं: यह सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि॥⁽²¹²⁾

संत कहते हैं कि मनुष्य को संसार में जल में कमल के समान रहना चाहिए। जिस प्रकार मुर्गाबी पानी में रहती है, पानी में खाती-पीती है परंतु जब उड़ती है तो सूखे परो के साथ; इसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि संसार में रहते हुए अपनी सुरत यानी आत्मा को शब्द के साथ जोड़कर भवसागर को पार कर ले। गुरु नानक देव कहते हैं:

जैसे जल मह कमल निरालम¹, मुरगाई नै साणे²॥
सुरत सबद भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥⁽²¹³⁾

संतों ने कबीर साहिब के इस मध्य मार्ग को 'सहज मार्ग' भी कहा है। यह इंद्रियों के दमन और तपस्या का मार्ग नहीं है। यह नाम के अभ्यास द्वारा सहज रीति से मन को संसार की ओर से धीरे-धीरे हटाने का मार्ग है। कबीर साहिब कहते हैं:

1. निर्लेप 2. मुरगाई...साणे=मुर्गाबी के पंख नहीं भीगते

सहजै सहजै सब गया, सुत बित¹ काम निकाम²।
एकमेक हैं मिलि रहा, दास कबीरा नाम॥⁽²¹⁴⁾

कबीर साहिब इस भाव को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो लोग नाम के प्रेमी और अभ्यासी होते हैं, वे ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेते हैं कि अपने शरीर से संसार का कामकाज करते हैं लेकिन उनका ध्यान नाम में लगा रहता है:

जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
देही से उद्यम करें, सुमिरन करें बिदेह॥⁽²¹⁵⁾

सहज मार्ग से संतों का अभिप्राय केवल आसान मार्ग से ही नहीं बल्कि उस ऊँची अवस्था से भी है जो मन और माया की पहुँच से परे है। सहज अवस्था आत्मा की मूल, स्वाभाविक अवस्था है जिसमें वह तब थी जब वह परमात्मा के साथ थी। इस अवस्था का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि वहाँ न वर्षा है, न समुद्र, न धूप है, न छाँह, न उत्पत्ति है, न प्रलय। उस धाम में जीवन और मृत्यु, सुख और दुःख की पहुँच नहीं है। वहाँ न सुन्न है, न समाधि की अवस्था। दूसरे शब्दों में वह अवस्था सुन्न अर्थात् दसवें द्वार और समाधि से परे है। उसमें ध्यान, समाधि आदि की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि उसमें आत्मा प्रभु में समाई होती है। उस सहज अवस्था की बात अकथनीय और निराली है। सतगुरु निरंतर उसमें लीन रहते हैं:

तह पावस सिंधु धूप नही छहीआ तह उतपत परलउ नाही॥
जीवन मिरत न दुख सुख बिआपै सुन समाध दोऊ तह नाही॥
सहज की अकथ कथा है निरारी॥

तुल¹ नही चढ़ै जाए न मुकाती² हलुकी लगै न भारी॥
अरध उरध³ दोऊ तह नाही रात दिनस तह नाही।
जल नही पवन पावक फुन⁴ नाही सतगुर तहा समाही॥
अगम अगोचर रहै निरंतर गुर किरपा ते लहीऐ।
कहो कबीर बल जाउ गुर अपुने सतसंगत मिल रहीऐ॥⁽²¹⁶⁾

कई विद्वानों ने कबीर साहिब की आलोचना की है कि उन्हें दर्शनशास्त्र, तर्क, न्याय आदि सिद्धांत-ग्रंथों का ज्ञान नहीं था, इसलिए वह मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा और शास्त्रों के पठन-पाठन के महत्त्व को नहीं समझ सके। परंतु कबीर साहिब किताबी ज्ञान के स्थान पर प्रभु से सीधे संपर्क को कहीं अधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार बुद्धि, तर्क और पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान केवल बाहरमुखी ज्ञान है जो मन तथा बुद्धि के परे की बातों से अनजान है। सच्चा ज्ञान तो उस एक परमात्मा का अनुभव है:

जे वो एकै जाँणियाँ, तौ जाँण्या सब जाँण।
जे वो एक न जाँणियाँ, तो सबहीं जाँण अजाँण॥⁽²¹⁷⁾

कबीर साहिब समझाते हैं कि अगर उस एक परमात्मा का ज्ञान नहीं हुआ तो बहुत प्रकार के ज्ञान प्राप्त कर लेने का क्या अर्थ है! उस एक को जानने से सब कुछ प्राप्त हो जाएगा, परंतु मन-बुद्धि के समस्त ज्ञान का संचय कर लेने पर भी मनुष्य उस एक प्रभु का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। बाहरी ज्ञान चाहे कितना ही क्यों न हो, परमार्थ में विशेष सहायक नहीं हो सकता, वह जीव को सहज अवस्था में नहीं पहुँचा सकता:

कबीर एक न जाँणियाँ, तौ बहु जाँण्याँ क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ॥⁽²¹⁸⁾

किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ॥ किआ बेद पुरानां सुनीऐ॥
पड़े सुने किआ होई॥ जउ¹ सहज न मिलिओ सोई॥⁽²¹⁹⁾

धर्मग्रंथ और दर्शनशास्त्र बदलते रहे हैं परंतु वह परमसत्य और उसकी प्राप्ति का मार्ग कभी नहीं बदलता। संत उस परमसत्य को प्रकट करते हैं जबकि पुस्तकें केवल उसकी चर्चा करती हैं। कबीर साहिब भी कहते हैं कि विद्या विश्व की सब विशेषताएँ बयान कर सकती है परंतु उस परमपिता परमात्मा के गुणों का पार नहीं पा सकती, विद्या कोटि सबै गुण कहैं, पारब्रह्म कौ पार न लहैं॥⁽²²⁰⁾

सच्चे ज्ञान का आधार अनुभव है। जिस व्यक्ति को प्यास है उसे पानी चाहिए, कुआँ खोदने की विधि बतानेवाली किताब नहीं। किसी नाम के जाप का भी क्या लाभ यदि उससे प्रभु के भेद का पता न चले, जो पै भेद न जानई, नाम कहा तौ काह॥⁽²²¹⁾

संतों के मार्ग में आनेवाले को तो ज्ञान के भार को हटाना पड़ता है, तभी वह सरल मन और अहंकार रहित बुद्धि के साथ प्रभु की भक्ति कर सकता है।

बुल्लेशाह का कथन है कि खुदा के अनुभव के सिवाय और सब बातें व्यर्थ हैं, दुनिया के सब विवाद विद्वानों के पैदा किए हुए हैं; धर्मग्रंथों और दर्शनशास्त्र की पुस्तकों ने लोगों के पागलपन को बढ़ाया ही है।

होर ने सभ्भे गल्लड़ियां, अल्लाह अल्लाह दी गल्ल।
कुझ रौला पाया आलमां, कुझ कागज़ां पाया झल्ल॥⁽²²²⁾

संतों का मार्ग आंतरिक अनुभव प्राप्त करने का मार्ग है, पढ़ने-लिखने का नहीं; भक्ति का मार्ग है, सोच-विचार का नहीं; प्रेम का मार्ग है, तर्क का नहीं। कबीर साहिब कहते हैं:

1. जो, यदि

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥⁽²²³⁾

प्रेम

रूहानी अभ्यास का ध्येय परमात्मा के लिए सच्चा प्रेम जाग्रत करना है क्योंकि संतों के अनुसार परमात्मा प्रेम है और प्रेम ही परमात्मा है। आत्मा और परमात्मा के मिलन का जिक्र करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि परमात्मा प्रेम का स्वरूप है:

सतलोक सब लोक-पति, सबा समीप प्रमान।
परम जोति से जोति मिलि, प्रेम सरूप समान॥⁽²²⁴⁾

अर्थात् सतलोक में कुलमालिक से मिलाप होने पर वह हमेशा आत्मा के साथ रहता है। ज्योति-स्वरूप आत्मा उस परमज्योति में मिल जाती है, उस प्रेम के स्वरूप प्रभु में समा जाती है।

आत्मा परमात्मा की अंश है। यह उस प्रेम के सागर की एक बूँद है और उससे बिछुड़कर इस संसार में दुःख झेल रही है। यह अपने मूल स्रोत में समाकर ही सुखी हो सकती है। हर पूजा और भक्ति का ध्येय प्रभु से मिलाप प्राप्त करना है। संत कहते हैं कि उसकी तलाश में लोग व्यर्थ बाहर भटक रहे हैं, उसके मिलाप की चाह रखनेवाले को चाहिए कि अपने अंतर में जाकर प्रेम के उस अखूट भंडार को प्राप्त करे। कबीर साहिब कहते हैं कि वह प्रियतम अंतर में है, वह प्रेम का ऐसा प्याला है जो हमेशा भरा रहता है परंतु कोई सच्चे गुरु का शिष्य ही उसका पारखी होता है और वही उसे पीकर मतवाला होता है:

हिरदे में महबूब है, हर दम का प्याला।
पीयेगा कोई जौहरी, गुरुमुख मतवाला॥⁽²²⁵⁾

भक्ति भाव की प्रबलता और प्रभु से मिलने की गहरी लगन ही प्रेम है। प्रेम वह शक्ति है जो मनुष्य को प्रेम का रूप बनाकर अपने में समा

लेती है। जब प्रेमी प्रेम में अपने अस्तित्व को खो देता है तो वह प्रियतम का ही रूप बन जाता है। कबीर साहिब कहते हैं:

नंना निस दिन निरखत जाई॥ निरखत नैन रहे रतवाई॥

निरखत निरखत जब जाए पावा¹॥ तब ले निरखह² निरख³ मिलावा॥⁽²²⁶⁾

अर्थात् दिन-रात मैं उसकी तलाश में लगा रहा, उसे खोजते-खोजते मेरी आँखें लाल हो गईं। इस प्रकार उसकी तलाश करते हुए जब मैंने उसे पा लिया तो उसने मुझे अपने में विलीन कर लिया।

यह ऐसा मिलाप है जिसमें फिर कभी वियोग नहीं होता। जब बूँद समुद्र में समाकर समुद्र हो जाती है तब वह उससे अलग नहीं हो सकती। कबीर साहिब कहते हैं:

बबा बिंदह बिंद मिलावा॥ बिंदह बिंद न बिछुरन पावा॥⁽²²⁷⁾

इसी विषय में कबीर साहिब आगे कहते हैं कि भक्त को इस प्रकार प्रभु में ध्यान लगाना चाहिए कि फिर उसका ध्यान और कहीं न जाए, तभी वह उस परमसत्य को पा सकेगा। जो भक्त प्रेम की ऐसी लिव लगा लेता है, वह अल्लाह को पाकर उसके चरणों में समा जाता है:

लला ऐसे लिव मन लावै॥ अनत न जाए परम सच पावै॥

अर जउ तहा प्रेम लिव लावै॥ तउ अलह लहै लह चरन समावै॥⁽²²⁸⁾

परमार्थ के सत्य को बोलचाल की भाषा में समझाने के लिए संत संसार की वस्तुओं और संबंधों का उदाहरण देते हैं। संसार में सबसे गहरा प्रेम पति और पत्नी के बीच माना जाता है। संत इस प्रेम का उदाहरण देकर निर्मल रूहानी प्रेम को समझाने की कोशिश करते हैं। आत्मा और परमात्मा के मिलाप को वे एक बिछुड़ी हुई पत्नी का पति से मिलाप कहते हैं। उनके अनुसार सब आत्माएँ स्त्रियाँ हैं जो अहंकार और भ्रम

के परदे की वजह से परमात्मारूपी पति से मिलने में असमर्थ हैं। वही आत्मा सौभाग्यशाली है जो इस परदे को हटाकर परमात्मा से मिलाप कर लेती है। कबीर साहिब के वचन हैं:

सब घट¹ मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।

बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय॥⁽²²⁹⁾

शरीर के अंदर प्रभु का प्रकट होना, आत्मा को उसके दर्शन होना, यह आत्मा के अनन्य प्रेम पर निर्भर करता है। अगर प्रेमी आत्मा का ध्यान प्रियतम परमात्मा की ओर से हटकर तनिक भी इधर-उधर जाता है तो उसे प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह स्वामी तब ही प्रसन्न होता है जब पत्नीरूपी आत्मा का मन केवल उसी के खयाल में डूबा रहता है। कबीर साहिब कहते हैं:

इक चित होय न पिय मिलै, पतिव्रत ना आवै।

चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कैसे पावै॥⁽²³⁰⁾

यह रूहानी प्रेम एक अलौकिक अनुभव होता है। इसमें सांसारिक प्रेम की तरह किसी प्रकार की वासना, स्वार्थ और कामना नहीं होती। मौलाना रूम कहते हैं कि जिस इश्क का मैं ज़िक्र करता हूँ वह स्त्री-पुरुष के बीच का दुनियावी इश्क नहीं है। संतों के अनुसार परमात्मा के प्यार में डूबी आत्मा को जो आंतरिक अनुभव होते हैं, वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों को भस्म कर देते हैं। कबीर साहिब कहते हैं:

चढ़ी अखाड़े² सुंदरी, माँड़ा³ पिउ से खेल।

दीपक जोया⁴ ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल॥⁽²³¹⁾

वह प्रियतम सौंदर्य, वस्त्र और गहनों से प्रभावित नहीं होता। आत्मारूपी स्त्री अपने परमात्मारूपी पति को तभी रिझा सकती है जब

1. पाया, प्राप्त किया 2. देखनेवाला 3. जिसे देखा जा रहा है

1. शरीर 2. प्रेम के मैदान में 3. ठान लिया 4. जलाया

वह विश्वास, पवित्रता और लगन के अलंकारों से अपने आप को सजा ले। कबीर साहिब कहते हैं कि उस प्रियतम की दृष्टि में बाहरी रूप, वस्त्र आदि का कोई महत्त्व नहीं है। गहरा प्रेम और पतिव्रत ही आत्मारूपी स्त्री का सबसे बड़ा सौंदर्य है:

पतिबरता मैली भली, काली कुचिल¹ कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारों कोटि सरूप॥⁽²³²⁾

पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत²।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससि की जोत॥⁽²³³⁾

पत्नी और पति, आत्मा और परमात्मा दोनों शरीररूपी घर में साथ रहते हैं। दोनों एक ही सेज पर हैं परंतु हौंमें (अहं) की बाधा के कारण मिलाप नहीं होता। कबीर साहिब कहते हैं:

धन पिर एकै संग बसेरा॥ सेज एक पै मिलन दुहेरा³॥
धन सुहागन जो पीअ भावै॥ कह कबीर फिर जनम न आवै॥⁽²³⁴⁾

इस रूहानी प्रेम का सच्चा अनुभव शब्द (नाम) के अभ्यास द्वारा अंदर जाने पर ही होता है। जब आत्मा नाम का अभ्यास करके अंदर जाकर नाम में समा जाती है तब वह अपने प्रियतम से मिलाप करती है। कबीर साहिब कहते हैं कि ऐसी प्रेमी आत्मा फिर अपने परमेश्वररूपी पति से कभी दूर नहीं होती:

सुरत समानी नाम में, नाम किया परकास।
पतिबरता पति को मिली, पलक न छाड़ै पास॥⁽²³⁵⁾

1. मैली 2. छोटा-सा दाना 3. कठिन

प्रेम की इस अनुपम अवस्था को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को चाहिए कि अपने मन को पीसकर उसका मैदा बना दे, तभी उसे मिलाप का सच्चा सुख प्राप्त होगा:

इस मन काँ मैदा करौं, नान्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीस॥⁽²³⁶⁾

प्रेम का मूल्य

प्रेम की अनमोल दौलत हासिल करना आसान नहीं। यह न दुनिया की मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर मिल सकती है, न दुनिया को त्यागने से, न यह रुपये-पैसों से खरीदी जा सकती है और न व्रत, उपवास, दान, पुण्य आदि से पाई जा सकती है। कबीर साहिब कहते हैं:

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥⁽²³⁷⁾

एक सच्चा प्रेमी इस प्रेम के रस का पान करने के लिए अपने सिर की कुर्बानी देने को तैयार रहता है। दूसरे शब्दों में वह अपना तन, मन, धन, अपना सर्वस्व प्रेम पर न्योछावर कर देता है। वह सिर देकर प्रेम की कीमत चुकाता है अर्थात् वह अपने अहं यानी हौंमें को पूरी तरह मिटा देता है। प्रेम में केवल प्रियतम ही रहता है, प्रेमी अपना अस्तित्व खो देता है। अपने आप को खोकर प्रियतम का रूप बन जाना ही प्रेम का आदर्श है। मनुष्य हर वस्तु देने को तैयार हो जाता है परंतु अपनी हौंमें नहीं दे पाता। जब तक हौंमें है तब तक सच्चे प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेम के मार्ग में दो नहीं रह सकते; अगर प्रेमी अपना अस्तित्व बनाए रखता है तो प्रियतम उसमें नहीं आ सकता। कबीर साहिब कहते हैं: प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥⁽²³⁸⁾

प्रेम का यह आदर्श कठिन प्रतीत होता है। परंतु संत कहते हैं कि पूरे गुरु से मिलाप होने पर मनुष्य उनके मार्गदर्शन में प्रेम के पथ पर क्रदम बढ़ाते हुए इस आदर्श को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

कर हरिजन से हेत

परमात्मा इन आँखों से दिखाई नहीं देता। उसे इंद्रियों, बुद्धि और मन के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। संत जानते हैं कि मनुष्य उसी के साथ मोह, लगाव या प्रेम पैदा कर सकता है जिसे वह देख और सुन सके, जिससे वह बातचीत कर सके और जिसके वह संपर्क में आ सके। जिसे देखा न हो और जिसका केवल अनुमान ही लगाया गया हो, उसके प्रति प्रेम एक भ्रम होगा, असलियत नहीं। कबीर साहिब कहते हैं कि बिना देखे, बिना स्पर्श किए और बिना संपर्क में आए, भक्ति और प्रेम नहीं हो सकते। केवल 'प्रभु-प्रभु' दोहराने से प्रभु नहीं मिलता। 'धन-धन' कहने से अगर कोई धनवान बन सकता तो संसार में कोई भी निर्धन न रहता:

बिन देखे बिन दरस परस बिन, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनी जो होई, निरधन रहै न कोई॥⁽²³⁹⁾

इसी लिए संत कहते हैं कि प्रभु के प्रेमियों से प्रेम करो जो पूर्ण प्रेम के द्वारा प्रभु में समाकर प्रभु का रूप हो गए हों। ऐसा व्यक्ति केवल कोई संत या पूरा सतगुरु ही होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि तू परमात्मा से नहीं, परमात्मा के प्रेमी से प्रेम कर, हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।⁽²⁴⁰⁾ क्योंकि ऐसे हरिजन के दर्शन में परमात्मा के दर्शन हैं, जाके दरसन साहिब दरसै...।⁽²⁴¹⁾ ऐसे पूर्ण प्रेमी या सतगुरु से मिलाप प्रभु से ही मिलाप है:

हरिजन मिले तो हरि मिले, मन पाया विश्वास।
हरिजन हरिका रूप है, ज्यों फूलन में बास॥⁽²⁴²⁾

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि हरि का सच्चा सेवक अर्थात् सतगुरु, हरि जैसा ही होता है, हर का सेवक सो हर जेहा॥ भेद न जाणहो माणस देहा॥⁽²⁴³⁾

कबीर साहिब कहते हैं कि ऐसा प्रभु का प्रेमी गुरु मिलना आसान नहीं। यदि ऐसा प्रेमी मिल जाए तो संसार के विष अमृत के समान हो जाएँ यानी विकार सद्गुणों में बदल जाएँ।

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, विष से अमृत होय॥⁽²⁴⁴⁾

सतगुरु से मिलाप के द्वारा ही सच्चा प्रेम उत्पन्न होता है। सतगुरु ही इस प्रेम के प्रेरक होते हैं, वास्तव में वह प्रेम के प्रकट रूप होते हैं। दादू दयाल कहते हैं कि सच्चे प्रेम का प्याला केवल सतगुरु ही अपने हाथ से भर-भरकर पिलाते हैं:

भरि भरि प्याला प्रेम रस, अपने हाथ पिलाइ।
सतगुरु कै सदिकै किया, दादू बलि बलि जाइ॥⁽²⁴⁵⁾

सतगुरु के प्रति प्रेम हो जाने पर उनके दर्शन के बिना चैन नहीं आता, अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर आत्मा अमृत का पान करती है। इस लगन में सब तरफ से ध्यान हट जाता है, गुरु के रंग में मन इतना लीन हो जाता है कि यहाँ कौन आया, कौन गया, इसकी खबर ही नहीं रहती:

लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि देंह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह॥⁽²⁴⁶⁾

और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहौं, मन राता गुरु रंग॥⁽²⁴⁷⁾

प्रेम गुरु का प्रसाद है और इसको तभी अपने अंदर बनाकर रखा जा सकता है जब प्रेमी अपने आपाभाव को दूर करके खुद को गुरु की शरण में छोड़ दे।

संत समझाते हैं कि इस स्थूल संसार में सतगुरु प्रेम का अवतार होता है; आत्मिक मंडलों में सतगुरु अपने ज्योतिर्मय स्वरूप में प्रेम का प्रकट रूप होता है; परंतु धुरधाम में सतगुरु और प्रेम दोनों एक होते हैं। इसी लिए सच्चा भक्त बाहर और अंदर, सतगुरु के दर्शन के सिवाय और कोई

कामना नहीं करता। कबीर साहिब के शब्दों में भक्त की एकमात्र इच्छा यही होती है, और कोई याचों नहीं, निस दिन याचों तोहिं॥⁽²⁴⁸⁾

शरण

जैसे-जैसे शिष्य के अंतर में सतगुरु का प्रेम जाग्रत होता जाता है, वैसे-वैसे वह अपनी इच्छा को गुरु की इच्छा में विलीन करता जाता है। अंत में उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह पूर्णतया निर्लेप होकर हौमैं को त्यागकर, जीवन में आनेवाले हर प्रकार के सुख-दुःख को गुरु की मौज मानकर स्वीकार करने लगता है।

अपने आप को गुरु की इच्छा पर छोड़ देने को संतों ने 'शरण लेना' और 'रज़ा' या 'भाणे' में रहना कहा है। प्रेम और शरण का आपस में गहरा संबंध है। प्रेम में केवल प्रियतम ही रह जाता है, प्रेमी को अपना कोई खयाल नहीं रहता। वह एक दास के समान गुरु के हुक्म और सेवा में रहता है और उसका खयाल गुरु को छोड़कर और कहीं नहीं जाता। सुख या दुःख कुछ भी आ जाए, उस पर कोई असर नहीं होता:

सेवक सेवा में रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।

दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय॥⁽²⁴⁹⁾

शरण का आधार प्रेम है। प्रेम का ध्येय ही अपने आप को प्रियतम में खो देना है, खुद को उसकी रज़ा में राज़ी रखना है। सच्चे प्रेम के बिना सच्ची शरण संभव नहीं और शरण के बिना प्रेम अपूर्ण है।

शरण की अवस्था में प्रेमी भक्त की बुद्धि और विचार, गुरु की रूहानी विचारधारा के अनुरूप हो जाते हैं। उसकी एकमात्र इच्छा अपने गुरु को खुश करने की होती है। वह निरंतर उसकी मौज में रहता है। परंतु जैसा कि कबीर साहिब कहते हैं, यह अवस्था किसी प्रकार की चतुराई द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। यह सच्चे आंतरिक प्रेम द्वारा ही मिल सकती है:

सेवक स्वामी एक मति, जो मति में मति मिलि जाय।
चतुराई रीझें नहीं, रीझें मन के भाय¹॥⁽²⁵⁰⁾

शरण का आदर्श अपने आप को गुरु में लीन कर देना है। सूफ़ी फ़क़ीरों ने इसे मुशिद की हस्ती में खुद को फ़ना कर देना यानी फ़ना फ़ि शैख़ कहा है।

अंतर में सतगुरु के शब्दस्वरूप में समा जाने की ऊँची अवस्था अहंकार के दूर होने पर ही मिलती है। प्रेम के बिना शरण संभव नहीं। जब तक दो होने का भाव रहता है तब तक न तो सच्ची शरण प्राप्त होती है और न गुरु के प्रति प्रेम परिपूर्ण होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि प्रेम की यह अवस्था अकथनीय है। इसमें अपने अस्तित्व को खो देने पर ही गुरु प्राप्त होता है। परंतु यदि प्रेमी गुरु की मौज में न रहकर अपनी हौमैं को पकड़े रखता है तो गुरु का खयाल नहीं रह सकता:

आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।

अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय²॥⁽²⁵¹⁾

इसके विपरीत कबीर साहिब समझाते हैं कि जब प्रेमी अपनी बाहरमुखी वृत्ति को उलटकर अपने अंदर जाता है तो सतगुरु और सेवक (अथवा कुलमालिक प्रभु और वह) दोनों एक हो जाते हैं:

उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनंत।

साहिब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत॥⁽²⁵²⁾

शब्द के अभ्यास के बिना शरण और प्रेम की यह उच्च अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। शब्द के अभ्यास द्वारा जब प्रेमी शिष्य अंतर में जाकर सतगुरु के ज्योतिर्मय स्वरूप में समा जाता है तो प्रेम और शरण

दोनों अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं। अंदर सतगुरु के शब्दस्वरूप में लीन होकर ही अभ्यासी अकथ कथा अर्थात् शब्द के भेद को जान सकता है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: अकथ कथा वीचारीए जे सतगुर माहे समाए॥⁽²⁵³⁾

प्रेम और शरण दोनों ही गुरु के प्रसाद हैं, उसकी कृपा से ही मिलते हैं। गुरु की मौज में रहना परमात्मा की मौज में रहना है, गुरु की शरण परमात्मा की शरण है। कबीर साहिब शरण की अवस्था को एक मुर्दे का दृष्टांत देकर समझाते हैं। मुर्दे को उत्तम वस्त्र पहनाए जाएँ तो वह खुशी नहीं मनाता, उसे चिथड़ों में लपेटा जाए तो नाराज़ नहीं होता। न वह चाहता है कि उसे पालकी में रखा जाए और न ही कठोर ज़मीन पर लिटाए जाने पर कोई शिकायत करता है। इसी प्रकार एक सच्चा प्रेमी हर सांसारिक अवस्था को प्रियतम की इच्छा मानकर खुशी-खुशी स्वीकार करता है। वह सतगुरु के प्रेम में इतना डूबा रहता है कि आराम और तकलीफ़, सुख और दुःख में वह कोई फ़र्क ही नहीं कर पाता।

सच्चा प्रेमी प्रियतम से किसी वस्तु की याचना नहीं करता, अपनी मुक्ति की भी नहीं। गुरु रविदास कहते हैं:

कह रविदास सरन प्रभ तेरी॥ जिउ जानहो तिउ कर गति मेरी॥⁽²⁵⁴⁾

प्रेमी हर प्रकार के कष्ट को प्रियतम का वरदान मानता है। इसी भाव को प्रकट करते हुए कबीर साहिब कहते हैं: हे स्वामी! जो कुछ भी हो रहा है, तेरी मौज से हो रहा है। जो यह समझ जाता है, वह सहज अवस्था को प्राप्त करता है:

जो किछ होआ सो तेरा भाणा॥ जो इव बूझै सो सहज समाणा॥⁽²⁵⁵⁾

संत कबीर के वचन हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त यानी प्रेमी भक्त को ही हरिजन कहा जाता है। हरिजन के हुक्म और भाणे में रहना और शरण की भावना को मन में बसाए रखना सच्चे सुख की प्राप्ति का साधन है:

हर जन ऊतम भगत सदावै आगिआ मन सुख पाई॥
जो तिस भावै सत कर मानै भाणा मन वसाई॥⁽²⁵⁶⁾

शरण का मार्ग कठिन है। तन, धन और सांसारिक पदार्थों से मन को हटाना आसान है पर अपने आप को सतगुरु की मौज में राज़ी रखना कठिन है। शरण प्रेम की ऊँची अवस्था का नाम है। अपनी हस्ती को सतगुरु में खो देना ही प्रेम का आदर्श है और यही ध्येय शरण का भी है। कठिन होते हुए भी प्रेम और शरण का मार्ग कर्मों के बंधनों को काटने और प्रभु से मिलने का अचूक मार्ग है। कबीर साहिब कहते हैं कि मैं सतगुरु की कृपा से स्वर्ग और नरक दोनों से बच गया हूँ, अब मैं निरंतर सतगुरु के प्रेम में मग्न और उनकी मौज में मस्त रहता हूँ:

कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतगुर के परसाद॥
चरन कमल की मउज। मह रहउ अंत अर आद॥⁽²⁵⁷⁾

सतगुरु की शरण कर्मों को नष्ट करने का उत्तम साधन है। यह जन्म-मरण के बंधनों से छुटकारा प्राप्त करने का अचूक उपाय है। शरण में हौमैं का अंत हो जाता है। गुरु की शरण दृढ़ कर लेने पर शिष्य संसार में कर्म तो करता है परंतु अहंकार से, कर्ता भाव से मुक्त होने के कारण वह कर्मों में लिप्त नहीं होता। वह कर्म करते हुए भी निष्कर्म रहता है।

सतगुरु की शरण और उनका प्रेम सब इच्छाओं को नष्ट कर देता है। प्रेमी शिष्य की एकमात्र कामना सतगुरु के दर्शन की ही रहती है। सांसारिक पदार्थों की प्यास मिट जाती है। कबीर साहिब कहते हैं कि मैंने अंदर जाकर गुरुप्रेम के रस का पान कर लिया है। अब मेरे अंदर किसी प्रकार की प्यास बाक़ी नहीं रही है, मैं प्रेम के दिव्य नशे में मग्न हूँ। मैंने अब गुरु के प्रेम का अनुभव कर लिया है, अब न तो मेरी कोई कामना रही है और न ही कोई कर्म बाक़ी रहे हैं जो मुझे वापस यहाँ ला सकें।

जिस प्रकार कुम्हार द्वारा पकाया हुआ घड़ा दोबारा चाक पर नहीं चढ़ाया जा सकता, उसी प्रकार प्रेम के द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेने के बाद अब मैं फिर से जन्म नहीं लूँगा:

कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय॥⁽²⁵⁸⁾

कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक¹।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक॥⁽²⁵⁹⁾

विरह

जिस प्रकार प्रेम और प्रभु से मिलाप सतगुरु या परमात्मा का प्रसाद है, उसी प्रकार विरह भी उनकी ही देन है। कबीर साहिब कहते हैं कि प्रियतम ने ही विरह को भेजा है ताकि उन भक्तों को जिनके हृदय में गहरी व्याकुलता है, ढूँढ़कर उन्हें सांत्वना दे जिससे उन्हें शांति प्राप्त हो:

बिरहा पीव पठाइया, कहि साधू परमोधि²।
जा घट तालाबेलिया³, ता को लावो सोधि॥⁽²⁶⁰⁾

विरह प्रेम को दृढ़ करता है, उसे गहरी तीव्रता देता है। प्रियतम को देखने, उससे मिलने और हमेशा उसके साथ रहने की तड़प संसार की सब इच्छाओं को भस्म कर देती है। एक भिखारी के समान वह केवल प्रियतम के दर्शन की ही याचना करता रहता है। कबीर साहिब कहते हैं कि विरहरूपी कमंडल को लेकर मेरे नेत्र बैरागी के समान दर्शन की भिक्षा माँगते हैं और चाहते हैं कि दर्शन पाकर वे दिन-रात उसी में लीन रहें:

बिरह कमंडल कर⁴ लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी⁵, छके रहैं दिन रैन॥⁽²⁶¹⁾

1. इच्छा, प्यास 2. सांत्वना देना 3. व्याकुलता 4. हाथ 5. भिक्षा

सभी संतों ने प्रियतम प्रभु के वियोग की पीड़ा को अपनी वाणी में प्रकट करने की कोशिश की है। सच्चे भक्त का प्रेम रूहानी प्रेम होता है और उसका विरह सतगुरु में समा जाने की तड़प होती है। प्रेमी का रोम-रोम प्रियतम को याद करता है।

विरह की वेदना असह्य होते हुए भी न तो प्रेमी अपने प्रियतम को पल भर के लिए बिसारता है और न ही घबराकर उसके प्रेम को छोड़ता है। संसार के सुख और ऐश्वर्य उसे लुभाकर इस मार्ग से हटा नहीं सकते, दुःख और दर्द उसे डरा नहीं सकते। प्रेमी को हर समय या तो प्रियतम का साथ चाहिए या अंतर में उसकी याद। ऐसे प्रेम का रंग कभी उतरता नहीं; ऐसा प्रेमी प्रेम की गली में क्रदम रखने के बाद पीछे मुड़कर नहीं देखता। संत पलटू कहते हैं:

पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग॥⁽²⁶²⁾

मिलाप की तरह विरह में भी अपना एक प्रकार का नशा है जिसे प्रेमी किसी हालत में भी छोड़ने को तैयार नहीं होता। कबीर साहिब अपने प्रियतम से कहते हैं कि जो प्रेम का तीर तूने कल मुझे मारा था, वह मेरे अंतर में समा गया है। आज मुझ पर फिर उसी तीर से आघात कर क्योंकि उसके बिना मुझे सच्चा सुख नहीं मिल सकता:

जिहि सरि¹ मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं॥⁽²⁶³⁾

प्रेमी शिष्य के हृदय में सतगुरु के दर्शन की लालसा इतनी गहरी होती है कि निरंतर उन्हें निरखते रहने पर भी दर्शन की प्यास नहीं बुझती। संत धरनीदास कहते हैं:

1. तीर

धरनी पलक परै नहीं, पिय की झलक सोहाय।
पुनि पुनि पीवत परम रस, तबहूँ प्यास न जाय॥⁽²⁶⁴⁾

सच्चा प्रेमी प्रियतम के दर्शन के सिवाय और कुछ नहीं चाहता, यहाँ तक कि मुक्ति भी नहीं:

राता माता नाम का पीया प्रेम अधाय।
मतवाला दीदार का माँगै मुक्ति बलाय¹॥⁽²⁶⁵⁾

सच्चे विरह का फल मिलन है। विरह वह सीढ़ी है जो प्रेमी भक्त को धुरधाम ले जाकर प्रियतम के चरणों में पहुँचा देती है। संत कबीर कहते हैं:

बिरहा मो से यों कहै, गाढ़ा पकड़ो मोहिं।
चरन कमल की मौज में, लै पहुँचाओं तोहिं॥⁽²⁶⁶⁾

जब शिष्य केवल अपने सतगुरु के दर्शन ही चाहता है और संसार की किसी वस्तु से उसे शांति नहीं मिलती तो गुरु भी दया करके दर्शन दे देते हैं:

बिरह जलन्ती देखि कर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिरकि के, जलती लई बुझाय॥⁽²⁶⁷⁾

इस प्रकार प्रियतम के विरह की तीव्र वेदना प्रेमी को मिलाप की ओर ले जाती है। जब तक प्रेमी और प्रियतम दो रहते हैं तब तक वियोग की पीड़ा प्रेमी के हृदय में खटकती रहती है। जब दोनों मिल जाते हैं तो केवल प्रेम ही रह जाता है, प्रेमी और प्रियतम दोनों एक हो जाते हैं। मिलाप की इस ऊँची रूहानी अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेमी प्रियतम के रूप में समाकर भी उसके अद्वितीय रूप का वर्णन नहीं

1. बला से, परवाह नहीं

कर सकता। वह तो उसके रंग में रँगकर, उसकी छवि में समाकर, तन, मन, सब कुछ भूल जाता है:

पिया को रूप कहाँ लग बरनों, रूपहि माहिं समानी।
जो रँग रँग सकल छबि छाके¹, तन मन सभी भुलानी॥⁽²⁶⁸⁾

हर प्रकार के रूहानी अभ्यास का आधार प्रेम है। नाम यानी शब्द के अभ्यास के पीछे प्रभु से मिलने की गहरी लगन होनी चाहिए। शब्द अपने मूल रूप में परमात्मा है और इस संसार में सतगुरु के रूप में प्रकट होता है। प्रभु, शब्द और सतगुरु तीनों का स्वरूप एक ही है और वह है प्रेम। सतगुरु जब जिज्ञासु को दीक्षा देते हैं तो वह अंतर में उसे शब्द से, प्रभुप्रेम की धारा से जुड़ने की विधि सिखा देते हैं।

इस संसार में हर कर्म का कोई न कोई स्थूल आधार होता है। प्रेम को भी शुरू में ऐसे आधार की आवश्यकता होती है। यह आधार देहस्वरूप सतगुरु होता है। जब तक बाहर सतगुरु से प्रेम नहीं होगा, आत्मा अंतर में जाकर गुरु के शब्दस्वरूप के सच्चे प्रेम का रस नहीं ले सकेगी। मुसलिम फ़कीरों ने भी मजाज़ी इश्क़ यानी देहस्वरूप सतगुरु के प्रेम को हक़ीक़ी इश्क़ यानी रूहानी प्रेम की सीढ़ी माना है। इसी लिए कबीर साहिब कहते हैं कि तू हरि के जन अर्थात् संत-सतगुरु से प्रेम कर, वही तुझे परमात्मा से मिला सकते हैं:

हरि से तू जनि² हेत³ कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक⁴ हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत॥⁽²⁶⁹⁾

संत परमात्मा के सच्चे प्रेमी होते हैं। वे प्रेम में मग्न रहते हैं, प्रेम की ही शिक्षा देते हैं और उनसे प्रेम की ही उज्ज्वल किरणें निकलती हैं। इतनी ऊँची अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी वे विनयशील और नम्र होते हैं। वे परमात्मा का रूप होते हुए भी इस संसार में अपने आप को उसका

दास कहते हैं। अपने हर गुण को उसकी देन समझते हैं। कबीर साहिब इस भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं:

मैं रनि राती¹ जे निधि पाई, हमहिं कहाँ यह तुमहिं बड़ाई।
कहैं कबीर मैं कछू न कीन्हा, सखी सुहाग राँम मोहिं दीन्हाँ।⁽²⁷⁰⁾

आत्मिक स्तर पर सतगुरु परमात्मारूपी प्रियतम से मिलकर उससे एक हो चुके होते हैं, परंतु देहस्वरूप में वे स्वयं प्रेमी का रूप अपनाकर अपने शिष्यों के लिए प्रेम का आदर्श स्थापित करते हैं। अपने प्रेम और विरह के पदों के द्वारा संत हमें प्रेम की प्रेरणा देते हैं। वे हमें एक पतिव्रता स्त्री की भावना को अपनाकर परमात्मारूपी पति से प्रेम करने का उपदेश देते हैं। परंतु जब वे मिलाप का वर्णन करते हैं तो वह अंतर में प्रभु से उस मिलाप का संकेत होता है जो उनके लिए रोज़ के अनुभव की बात है। कबीर साहिब एक दुलहिन का उदाहरण लेकर कहते हैं:

चुनरिया हमरी पिय ने सँवारी। कोई पहिरै पिय की प्यारी॥
आठ हाथ की बनी चुनरिया। पँच रँग पटिया पारी॥
चाँद सुरज जा में आँचल लागे। जगमग जोति उँजारी॥
बिनु ताने² यह बनी चुनरिया। दास कबीर बलिहारी॥⁽²⁷¹⁾

कबीर साहिब के पदों में भक्ति और प्रेम की कोमल भावना है। उनके विरह-गीत प्रियतम से मिलाप की गहरी तड़प, विरह की वेदना और व्याकुलता से भरे हुए हैं। उनके प्रभु-मिलन के शब्द उनके प्रेम की अगाध गहराई को व्यक्त करते हैं और अनुपम सौंदर्य से परिपूर्ण परमात्मारूपी पति से आत्मा के एक हो जाने का वर्णन करते हैं।

कबीर-पंथी परंपरा के अनुसार अपने जीवन के अंतिम दिन, शिष्यों को दर्शन देते समय कबीर साहिब ने मंगलाचार का पद गाने का

आदेश दिया। पद की समाप्ति पर वह अपनी कुटिया में चले गए और उनकी दिव्य ज्योति वापस जाकर उस परमज्योति में समा गई जिसमें से निकलकर वह आई थी। कबीर साहिब स्वयं इस दिव्य प्रेम में मग्न रहे, इसी की उन्होंने प्रेरणा दी और अंत में इसी में विलीन हो गए। उनका यह पद परमात्मा से अंतिम समय के मिलाप का संदेश देता है:

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा रांम भरतार॥ टेक॥...
राँमदेव मोरैं पाँहुनैं आये मैं जोबन मैं माती¹॥...
कहै कबीर हँम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी॥⁽²⁷²⁾

वाणी

विनती

नीचे दिए जा रहे पाँच पदों में से पहले चार में प्रभु से विनती की गई है और पाँचवाँ पद सतगुरु से विनती का है।

पहले पद में प्रभु के आगे पहले क्षमा करने और बाद में कर्मों का लेखा माँगने की प्रार्थना की गई है, दूसरे में भिन्न-भिन्न योनियों में डालकर तरह-तरह का नाच नचाना बंद करने की, तीसरे में घर या वन में कहीं भी सुख-शांति न मिलने से शरण में आए भक्त को उसके निजघर पहुँचाने की और चौथे में यह कहा गया है कि प्रभु, जीव को संसार के बाज़ार में लाकर माया के हाथों बेच देता है और फिर सतगुरु के रूप में स्वयं ही यहाँ आकर ग्राहक बनकर उसे वापस खरीद लेता है और अगर वह मौज में आकर फिर इसे बेचना चाहे तो कोई उसे रोक नहीं सकता। पाँचवें पद में सतगुरु से यह विनती की गई है कि मेरे अंतर में अपने शब्दस्वरूप की संगति प्रदान करने की कृपा करें जिससे मन वश में हो जाए और मैं भवसागर के पार हो जाऊँ।

बाप राँम सुनि बीनती मोरी, तुम्ह सँ प्रगट लोगन सँ चोरीं॥ टेक॥
पहलैं काँम मुगध मति कीया, ता भै कं पै मेरा जीया॥
राँम राइ मेरा कहा सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै॥
कहै कबीर बाप राँम राया, कबहुँ सरनि तुम्हारी आया॥⁽¹⁾

बीनती एक राँम सुनि थोरी, अब न बचाइ राखि पति मोरी॥ टेक॥
जैसैं मंदला¹ तुमहि बजाबा, तैसैं नाचत मैं दुख पावा॥

1. एक तरह का बाजा

जे मसि¹ लागी सबै छुड़ावौ, अब मोहि जनि² बहु रूप कछावौ³।
कहैं कबीर मेरी नाच उठावौ⁴, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ॥⁽²⁾

मन थिर रहैं न घर हैं मेरा, इन मन घर जारै⁵ बहुतेरा॥ टेक॥
घर तजि बन बाहरि कियौ बास, घर बन देखौं दोऊ निरास॥
जहाँ जाँऊँ तहाँ सोग संताप, जुरा⁶ मरण कौ अधिक वियाप⁷॥
कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर मैं घर दे परमानंदा॥⁽³⁾

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाँई, तन मन धन मेरा रामजी के ताँई॥ टेक॥
आँनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक बेचनहारा॥
बेचै राँम तो राखै कौन, राखै राँम तो बेचै कौन।
कहै कबीर मैं तन मन जारया, साहिब अपनाँ छिन न बिसारया॥⁽⁴⁾

सतगुरु मोरी चूक सँभारो।
हौं अधीन हीन मति मोरी, चरनन तें जिन टारो॥ टेक॥
मन कठोर कछु कहा न माने, बहु वा को कहि हारो॥
तुम हीं तें सब होत गुसाँई, या को बेग⁸ सँवारो॥
अब दीजे संगत सतगुरु की, जा तें होय निस्तारो॥
और सकल संगी सब बिसरैं, होउ तुम एक पियारो॥
कर देख्यो हित सारे जग से, कोइ न मिल्यो पुनि भारो॥
कहैं कबीर सुनो प्रभु मेरे, भवसागर से तारो॥⁽⁵⁾

सतगुरु

पहले पद में यह बताया गया है कि सच्चे जिज्ञासु के लिए वही मुहूर्त शुभ होता है जिसमें उसे अंतर में सतगुरु के शब्दस्वरूप के दर्शन होते हैं।

1. कालिख 2. मत 3. धारण कराओ 4. नाच उठावौ=भाव आवागमन बंद करो
5. जलाए हैं 6. बुढ़ापा 7. व्यापक 8. जल्दी से

शब्द को सुनने से उसके सब भ्रम और संशय दूर हो जाते हैं, उसके कर्मों का हिसाब साफ़ हो जाता है और देह के अंदर ही उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है।

दूसरे पद में संतों की नीर-क्षीर विवेकी हंसों के साथ तुलना करते हुए यह कहा गया है कि उनका ध्यान सदा हरि के चरणों में रहता है; वे चुपचाप शब्द-धुन सुनते रहते हैं और केवल उन्हीं ने आत्म-साक्षात्कार किया होता है।

तीसरे पद में यह बताया गया है कि सतगुरु स्वयं भी अनाहत नाद के जाम पीते हैं और शिष्यों को भी पिलाते हैं। उनके दर्शन तो स्वयं प्रभु के दर्शन होते हैं। उन्होंने स्वयं अभयपद अर्थात् परमधाम प्राप्त किया होता है और शिष्यों को भी वहाँ पहुँचा देते हैं।

चौथे पद में अपने प्रिय शिष्य धर्मदास को संबोधित करते हुए कबीर साहिब ने कहा है कि केवल सतगुरु ही प्रभु तक पहुँचने का सही रास्ता बता सकते हैं। सो जल्दी से जल्दी उनकी संगति करो, नहीं तो चौरासी के फेर में पड़े रहोगे और अन्य किसी भी योनि में तुम उनका साथ नहीं पा सकोगे।

धौन सो घरी महूरत्य दिनाँ, जब ग्रिह आये हरि के जनाँ॥ टेक॥
दरसन देखत यह फल भया, नैनौं पटल¹ दूरि हैं गया।
सब्द सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा॥
परसत² घाट³ फेरि करि घड़या, काया कर्म सकल झड़ि पड़या।
कहैं कबीर संत भल भाया, सकल सिरोमनि घट मैं पाया॥⁽⁶⁾

हरिजन हंस दसा लीये डोलै, निर्मल नाँव चवै⁴ जस बोलै॥ टेक॥
मानसरोवर तट के बासी, राम चरन चित आँन⁵ उदासी॥
मुकताहल⁶ बिन चंच न लाँवै मौनि गहै कै हरि गुन गाँवै॥

1. परदा 2. भेंट करना, मिलन 3. घड़ा 4. चुआना, वर्षा करना 5. अन्य
6. मोती

कउवा कुबधि निकट नहीं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै॥
कहै कबीर सोइ जन तेरा, खीर नीर¹ का करै नबेरा²॥⁽⁷⁾

साधो सो सतगुरु मोहिं भावै।

सत्त नाम का भरि भरि प्याला, आप पिवै मोहिं प्यावै॥
मेले जाय न महँत कहावै, पूजा भेंट न लावै।
परदा दूर करै आँखिन को, निज दरसन दिखलावै॥
जा के दरसन साहिब दरसै, अनहद सबद सुनावै।
माया के सुख दुख करिं जानै, संग न सुपन चलावै॥
निसि दिन सतसंगत में राचै, सबद में सुरत समावै।
कहै कबीर ता को भय नाही, निर्भय पद परसावै॥⁽⁸⁾

जग में गुरु समान नहिं दाता॥ टेक॥
बस्तु अगोचर दई सतगुरु ने, भली बताई बाटा।
काम क्रोध कैद करि राखे, लोभ को लीन्हो नाथा³॥
काल्ह करै सो हालहि करि ले, फिर न मिलै यह साथा।
चौरासी में जाइ पड़ोगे, भुगतो दिन और राता॥
सबद पुकार पुकार कहत है, करि ले संतन साथा।
सुमिर बंदगी कर साहिब की, काल नवावै माथा॥
कहै कबीर सुनो हो धर्मन⁴, मानो बचन हमारा।
परदा खोलि मिलो सतगुरु से, आवों लोक दयारा॥⁽⁹⁾

नाम का रंग

पहले पद में यह बताया गया है कि जब एक बार आत्मा पर नाम का रंग चढ़ जाता है तो वह कभी नहीं उतरता। फिर आत्मा पर संसार के मोह और विषय-विकारों का कच्चा रंग नहीं चढ़ता।

1. खीर नीर=दूध और पानी अर्थात् अच्छा और बुरा

2. त्याग देना 3. वश में कर लिया 4. धर्मदास (कबीर साहिब के शिष्य)

दूसरे पद में नाम के मद को एक ऐसा नशा बताया गया है जो कभी उतरता नहीं और कहा गया है कि नाम का आनंद उठानेवाला जीव भवसागर पार कर जाता है। यह आनंद बयान नहीं किया जा सकता।

रौम नाँम रँग लागौ, कुरंग न होई। हरि रंग सौ रंग और न कोई॥ टेक॥
और सबै रंग इहि रंग थैं छूटै, हरि रंग लागा कदे न खूटै।
कहै कबीर मेरे रंग रौम रौई, और पतंग¹ रंग उड़ि जाई॥⁽¹⁰⁾

नाम अमल उतरै न भाई॥ टेक॥
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै, नाम अमल दिन बढ़ै सवाई॥
देखत चढ़ै सुनत हिये लागै, सुरत किये तन देत घुमाई॥
पियत पियाला भये मतवाला, पायौ नाम मिटी दुचिताई॥
जो जन नाम अमल रस चाखा, तर गइ गनिका सदन कसाई॥
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया, बिन रसना क्या करै बड़ाई॥⁽¹¹⁾

नाम का जुलाहा

इस पद में कबीर अपने व्यवसाय से संबंधित शब्दावली का प्रयोग करते हुए नाम की महिमा करते हैं।

प्रभु को संबोधित करते हुए वह कहते हैं कि मैं तेरे नाम का बुनकर हूँ और तेरे नाम का कपड़ा बुनने का मुझे यह लाभ हुआ है कि मैंने तुझे (अपने प्रियतम को) पा लिया है। सूर्य तथा चंद्रमा के मंडलों को पार करके सहस्रदल कमल में पहुँचकर नाम का अभ्यास जारी रखने की ओर संकेत करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि मेरे एक हजार सूत का ताना बुनने के, चंद्रमा तथा सूर्य साक्षी हैं। हे प्रभु, तेरे (वर्णात्मक) नाम का बिना रुके सुमिरन करने की मुझे (अंतर में तेरे धुनात्मक नाम के जुड़ जाने की) जो मज़दूरी मिली, उसे मैंने सँभालकर हृदय में रख लिया।

1. उड़नेवाला

आत्मा की सुनने की शक्ति तथा देखने की शक्ति को मैंने अपने भक्ति के करघे की खूँटियाँ बना रखा है। बुनाई में नली भरने का काम मैं सच्चे ज्ञान अर्थात् आंतरिक अनुभव के सूत से ले रहा हूँ। इस तरह नाम का कपड़ा बुनते-बुनते मैंने आत्म-साक्षात्कार कर लिया। जब शब्द-धुन के अविनाशी धन के रूप में मुझे अपनी मजदूरी मिल गई तो मेरा मन पूरी तरह स्थिर हो गया। अन्य सब जिज्ञासु जंगलों में खोजते-खोजते निराश हो गए परंतु मुझे सतगुरु ने यह रहस्य बता दिया था कि प्रभु मेरे निकट ही है। मैंने सत्य-असत्य को अलग-अलग कर देनेवाला जो आंतरिक अनुभव प्राप्त किया, उससे मन को साफ़ करने का, उसके सब भ्रमों तथा विकारों को दूर करने का साधन बना लिया। आत्मा को सब गाँठ-गुत्थियों से छुटकारा मिल गया और मेरी तुझमें लौ लग गई। दुनियावी कामकाज का ताना-बाना बुनते रहने की मेरी बेगार का अंत हो गया है, मेरी दूषित वृत्तियों ने हार मान ली है और मैं सर्वथा भय से मुक्त परमधाम के अनंत प्रकाश में डूब गया हूँ। अंत में कबीर साहिब कहते हैं कि हे प्रभु, तेरे नाम का कपड़ा बुनते-बुनते तेरे इस दास ने परमपद प्राप्त कर लिया है और इसके सब दुःख और संशयों का अंत हो गया है।

तेरा हरि नाँमें जुलाहा, मेरे राँम रमण¹ को लाहा॥ टेक॥
 दस सै सूत्र की पुरिया पूरी, चंद सूर दोइ साखी।
 अनत नाँव गिनि लई मजूरी, हिरदा कवल मैं राखी॥
 सुरति निरति दोइ खूँटी कीन्हीं, आरँभ कीया बमेकी²।
 ग्यान तत की नली भराई, बुनित आतमाँ पेखी³॥
 अबिनासी धन लई मँजूरी, पूरी थापनि⁴ पाई।
 रन⁵ बन सोधि सोधि सब आये, निकटै दिया बताई॥
 मन सूधा कौ⁶ कूच⁷ कियौ है, ग्यान बिथरनीं⁸ पाई।

1. प्रिय 2. विवेक 3. देख ली 4. स्थिरता 5. सुनसान
6. सोधने भाव साफ़ करने के लिए 7. साफ़ करने का ब्रश
8. अलग-अलग करने के उपकरण

जीव की गाँठ गुढी¹ सब भागी, जहाँ की तहाँ ल्यौ लाई॥
 बेठि बेगारि² बुराई थाकी, अनभै पद परकासा।
 दास कबीर बुनत सच पाया, दुख संसा सब नासा॥⁽¹²⁾

गुणगान

अंतर में शब्द-धुन को सुनने को संतों ने प्रभु का गुणगान करना कहा है। इस पद में कबीर साहिब परमार्थी को संबोधित करके कहते हैं कि प्रभु का गुणगान कर लो; उसी के द्वारा जीव प्रभु के धाम में पहुँचकर परम आनंद का अथाह भंडार प्राप्त करता है। संसार ओंकार के मंडल से पैदा होता है और मन-माया के विकारों तथा भ्रमों के सहारे चलता है। तुम इस मायामय संसार से निकलो और अनाहत नाद की बाँसुरी बजाते हुए अंतर के आकाश में सबसे ऊँचे मंडल, प्रभु के धाम सतलोक में पहुँचकर उसे अपना निवास-स्थान बना लो। जिन जीवों ने सर्वव्यापक शब्द के रसायन का पान कर लिया, उनकी संसार के सुखों और पदार्थों की प्यास सदा के लिए बुझ गई। जीव प्रभु की भक्ति करता हुआ आधा क्षण भी जी ले तो अच्छा है, इसी में उसका जीवन सफल हो जाता है जबकि प्रभु से प्रेम किए बिना तो करोड़ों युगों का जीवन भी व्यर्थ है। तुम्हें चाहिए कि सुख और दुःख को, संपत्ति और विपत्ति को, स्वर्ग और नरक को एक समान समझो। प्रभु का किया ही सब कुछ होता है। उसके विधान के अधीन तुम्हारे प्रारब्ध के अनुसार जो होना था, वही हो रहा है। मन में किसी प्रकार की झूठी आशा न रखो। यदि प्रभु की भक्ति और उससे प्रेम करने की सही युक्ति वक्रत के सतगुरु से नहीं जानी तो जप, तप, संयम आदि के रूप में तरह-तरह की बाहरमुखी भक्ति व्यर्थ है। सूत्र मंडल में पहुँचो और परमज्योति प्रभु के प्रकाश की खोज करो। वहाँ कोई आकार नहीं है और फूलों के बिना ही आकाश खिला हुआ है, सुनहले प्रकाश में नहाया हुआ है। मेरा तो तुझसे यही कहना है कि मन को संतों की संगति में रखो और प्रभु का गुणगान करो। गुरु का दास बनकर प्रेम और लगन के साथ

1. गुत्थी 2. बिना मजदूरी का

जो उसकी सेवा करता है, उसकी बताई नामभक्ति करता है, प्रभु उसके अंग-संग रहता है, सदा उसका सहाई होता है।

गोब्यंदा गुँण गाईये रे ताथैं भाई पाईये परम निधौन॥ टेक॥
 ऊंकारे जग ऊपजै, बिकारे जग जाइ।
 अनहद बेन¹ बजाइ करि, रह्यो गगन मठ छाइ॥
 झूठै जग डहकाइया² रे, क्या जीवण की आस।
 रौम रसाँइण जिनि पीया, तिनकाँ बहुरि न लागी रे पियास॥
 अरध खिन जीवन भला, भगवंत भगति सहेत।
 कोटि कलप³ जीवन बिथा, नाँहिन हरि सूँ हेत॥
 संपति देखि न हरषिये, बिपति देखि न रोइ।
 ज्यूँ संपति त्यूँ विपति है, करता करै सु होइ॥
 सरग लोक न बाँछिये, डरिये न नरक निवास।
 हूँगाँ थाँ सो है रह्या, मनहु न कीजै झूठी आस॥
 क्या जप क्या तप संजमाँ, क्या तीरथ व्रत स्नान।
 जो पै जुगति न जाँनियै, भाव भगति भगवान॥
 सुनि मंडल मैं सोधि⁴ लै, परम जोति परकास।
 तहुँवा रूप न रेख है, बिन फूलनि फूल्यौ रे आकास॥
 कहै कबीर हरि गुँण गाइ लै, सत संगति रिदा मँझारि।
 जो सेवग सेवा करै, ता सौँगि रमैं रे मुरारि॥⁽¹³⁾

गुरु का दिया ज्ञान का दीपक

संतों ने इस संसार को अंधकूप कहा है। यह एक ऐसी दुःखों की घाटी है जिसमें आकर जीव न तो हक़ीक़त को जान सकता है और न ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। कबीर कहते हैं यदि मनुष्य गुरु का दिया शब्दरूपी दीया जला ले तो वह इस अंधकूप में देख सकता है।

परमात्मा शरीर के अंदर ही बसा है परंतु आश्चर्य की बात है कि वह अहंकाररूपी तिनके की ओट में छिपा है! भ्रम का जाल इतना घना है कि मनुष्य उसे भेदकर असलियत को नहीं देख पाता। सतगुरु की शरण लेकर और उनसे रूहानी ज्ञान की ज्योति प्राप्त करके ही जिज्ञासु प्रभु को प्राप्त कर सकता है:

गुरु दियना¹ बारु² रे, यह अंध कूप संसार॥ टेक॥
 माया के रँग रची सब दुनियाँ, नहिं सूझ परत करतार॥
 पुरुष पुरान बसै घट भीतर, तिनुका ओट पहार॥
 मृग के नाभि बसत कस्तूरी, सूँघत भ्रमत उजार³॥
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, छूटि जात भ्रम जार॥⁽¹⁴⁾

राम का मर्म न जाना

इस पद में कर्मकांड और शास्त्रों के पठन-पाठन का सहारा लेकर धर्मकथा करनेवाले पंडितों, पुरोहितों आदि की आलोचना करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि ऐसे लोग धर्मग्रंथों के आदेश के अनुसार अभ्यास नहीं करते बल्कि सुबह से शाम तक धर्मकथा ही सुनाते रहते हैं। ऐसे लोग झूठ के सहारे पनपते हैं और झूठ का ही प्रचार करते हैं:

धर्म कथा जो कहतै रहई, लबरी⁴ नित उठि प्रातहि कहई।
 लबरि बिहाने⁵ लबरी साँझ, एक लबरी बसै हृदया माँझ॥
 रामहु केर मर्म नहि जाना, लै मति ठानिन⁶ वेद पुराना।
 बेदहु⁷ केर कहल⁸ नहिं करई, जरते रहै सुस्त नहिं परई॥
 गुनातीत⁹ के गावते, आपुहि गए गँवाय।
 माटी तन माटी मिल्यो, पवनहिं पवन समाय॥⁽¹⁵⁾

1. बाँसुरी 2. बहकाया, ठग लिया 3. 4 अरब 32 करोड़ वर्ष 4. खोज

1. दीपक 2. जलाया 3. उजाड़ 4. झूठा 5. सुबह 6. दृढ़ता से
 7. वेद 8. कहना 9. त्रिगुणातीत परमात्मा

अब क्या सोवे

नीचे दिए जा रहे तीनों पदों में हमें मोह की मीठी नींद से जगाने की कोशिश की गई है।

युवावस्था में शरीर स्वस्थ, मन उत्साहपूर्ण तथा संकल्प-शक्ति दृढ़ होती है। इसलिए यह समय रूहानी अभ्यास के लिए उत्तम होता है। पहले पद में आत्मा को प्रेमपूर्वक संबोधित करके समझाया गया है कि युवावस्था ही तो तेरी प्रियतम प्रभु से मिलने की रात थी जो तूने सोने में गँवा दी। ख़ैर, अब बुढ़ापे में तो जाग, अब तो शब्द का अभ्यास करके प्रभु से मिलाप कर ले।

दूसरे पद में इस बात की ओर हमारा ध्यान दिलाया गया है कि मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ होता है और जीवन छोटा। सो हमें विषय-भोग में समय न गँवाते हुए गुरु की शरण लेकर प्रभुभक्ति करनी चाहिए जिससे हमें आनंदमय परमधाम मिल जाए।

तीसरे पद में हमें यह समझाया गया है कि बुढ़ापे के आ जाने पर बुद्धि, शरीर तथा इंद्रियाँ तो जवाब दे देते हैं पर तृष्णा से फिर भी पिंड नहीं छूटता। मन तथा इसकी चंचलता और माया का मोह न तो कमज़ोर होता है और न थकता है। कबीर साहिब कहते हैं कि हे प्राणी! जब तक शरीर में साँस है, प्रभु की भक्ति करता रह; शरीर के न रहने पर भी तेरे अंतर में जागा हुआ सच्चा प्रेम नहीं जाएगा। जिनके अंतर में शब्द बस जाता है, उनकी तृष्णा समाप्त हो जाती है। वे प्रभु के आदेश को समझने लग जाते हैं और उसी के अनुसार जीवन बिताते हैं, मन के कहे अनुसार नहीं।

जाग पियारी अब का सोवै, रैन गई दिन काहे को खोवै॥
जिन जागा तिन मानिक पाया, तैं बौरी सब सोइ गँवाया॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी, कबहुँ न पिय की सेज सँवारी॥
तैं बौरापन कीन्हो, भर जोबन पिय अपन न चीन्हो॥

जागु देखु पिय सेज न तेरे, तोहि छाँड़ि उठि गये सबेरे॥
कहै कबीर सोई धन¹ जागै, सबद बान उर अंतर लागे॥⁽¹⁶⁾

क्या सोवै गफलत के मारे, जागु जागु उठि जागु रे।
और तेरे कोइ काम न आवै, गुरु चरनन उठि लागु रे॥
उत्तम चोला बना अमोला, लगत दाग पर दाग रे।
दुइ दिन का गुजरान जगत में, जगत मोह की आग रे॥
तन सराय में जीव मुसाफिर, करता बहुत दिमाग रे।
रैन बसेरा करि ले डेरा, चलन सबेरा ताक रे॥
ये संसार विषय रस माते, देखो समुझि बिचार रे।
मन भँवरा तजि बिष के बन को, चलु बेगम² के बाग रे॥
केंचुलि³ करम लगाइ चित्त में, हुआ मनुष ते नाग रे।
पैठा नाहिं समुझ सुख सागर, बिना प्रेम बैराग रे॥
साहिब भजै सो हंस कहावै, कामी क्रोधी काग रे।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, प्रगटे पूरन भाग रे॥⁽¹⁷⁾

थाके नैन स्रवन सुन थाके थाकी सुंदर काइआ॥
जरा⁴ हाक⁵ दी सभ मत थाकी एक न थाकस माइआ॥
बावरे तै गिआन बीचार न पाइआ॥ बिरथा जनम गवाइआ॥
तब लग प्राणी तिसै सरेवहो⁶ जब लग घट मह सासा॥
जे घट जाए त भाउ न जासी हर के चरन निवासा॥
जिस कउ सबद बसावै अंतर चूकै तिसह पिआसा॥
हुकमै बूझै चउपड़ खेलै मन जिण⁷ ढाले⁸ पासा॥
जो जन जान भजह अबिगत⁹ कउ तिन का कछू न नासा॥
कहो कबीर ते जन कबहु न हारह ढाल जो जानह पासा॥⁽¹⁸⁾

1. भाव जीव 2. दुःख रहित 3. खोल 4. बुढ़ापा 5. ललकार
6. सराहना करो 7. नहीं 8. फेंकना 9. अविनाशी प्रभु

सहज का प्रकाश

प्रभु का साक्षात्कार होने के बाद साधक के आनंद की अवस्था का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि उसके जन्म-मरण का भय दूर हो जाता है और आंतरिक रूहानी ज्योति के प्रकाश में अज्ञान का अंधकार मिट जाता है। इस आनंद के सामने संसार के दुःख टिक नहीं पाते और फिर साधक का उज्ज्वल मन प्रभु के ध्यान में लीन रहता है। वह प्रभु को सब कुछ करनेवाला जानकर, हर बात को उसका भाणा अर्थात् उसकी मर्जी मानकर स्वीकार करता है। जो प्रभु की मौज में रहता है, वह सहज में समा जाता है, सदा के लिए सहज अवस्था प्राप्त कर लेता है।

मरन जीवन की संका नासी॥ आपन रंग सहज परगासी॥

प्रगटी जोत मिटिआ अंधिआरा॥ राम रतन पाइआ करत बीचारा॥

जह अनंद दुख दूर पड़िआना¹॥ मन मानक लिव तत² लुकाना³॥

जो किछ होआ सो तेरा भाणा॥ जो इव बूझै सो सहज समाणा॥

कहत कबीर किलबिख⁴ गए खीणा⁵॥ मन भइआ जगजीवन लीणा॥⁽¹⁹⁾

जीते-जी मुक्ति

अधिकांश धर्म, धर्मग्रंथ और साधु-संन्यासी मृत्यु के बाद मुक्ति का दिलासा देते हैं। परंतु संत अपने शिष्यों को ऐसी मुक्ति की आशा नहीं दिलाते। वे कहते हैं कि एक दुनियादार, माया से लिप्त व्यक्ति मौत के बाद महात्मा नहीं बन सकता, जैसे एक अनपढ़ मूर्ख मृत्यु के बाद विद्वान नहीं बन सकता। मनुष्य को चाहिए कि वह उसी चीज़ का भरोसा करे जिसे वह जीते-जी प्राप्त कर ले, उसे चाहिए कि वह जीते-जी उस उच्च रूहानी मंडल में पहुँच जाए जहाँ से उसे दोबारा इस जन्म-मरण के चक्र में न आना पड़े। जो रूहानी तरक्की जीव मनुष्य चोले में रहते हुए प्राप्त कर लेगा, वही मृत्यु के बाद उसके साथ रहेगी।

1. चला गया 2. परम सत्य 3. लीन होना 4. पाप 5. नष्ट

इन दो पदों में जीते-जी मुक्ति के महत्त्व को प्रकट करते हुए कबीर साहिब ऐसी मुक्ति को ही सच्ची मुक्ति कहते हैं।

साधो भाई जीवत ही करो आसा॥ टेक॥

जीवत समुझै जीवत बूझै, जीवत मुक्ति निवासा।

जियत करम की फाँसि न काटी, मुए मुक्ति की आसा॥

तन छूटे जिव मिलन कहतु है, सो सब झूठी आसा।

अबहुँ मिला सो तबहुँ मिलैगा, नहिं तो जमपुर बासा॥

दूर दूर दूँदै मन लोभी, मिटै न गर्भ तरासा¹।

साध संत की करै न बँदगी, कटै करम की फाँसा॥

सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्त नाम बिस्वासा।

कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा॥⁽²⁰⁾

जीवत मुक्त सोइ मुक्ता हो।

जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो॥ टेक॥

देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होई हो।

तीरथबासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी² सोई हो॥

जीवत भर्म की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो।

जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो॥

हैं अतीत³ बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो।

बिना अतीत सदा बंधन में, कितहुँ जानि न पाई हो॥

आवागवन से गये छूटि के, सुमिरि नाम अबिनासी हो।

कहै कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो॥⁽²¹⁾

यदि घोवे सौ बार

आम धारणा है कि पवित्र नदियों और सरोवरों में स्नान करने से मनुष्य के पापों की मैल उतर जाती है और मन निर्मल होकर प्रभु की भक्ति में

1. भय 2. धरती 3. निर्लिप्त, अनासक्त

लीन होने के योग्य हो जाता है। कबीर साहिब कहते हैं कि शरीर के धोने से मन की मैल नहीं उतरती। गंगा में रहनेवाला मेंढक मुक्ति तो नहीं पा लेता। पवित्र रहनी अपनाने तथा प्रभु के नाम का अभ्यास करने से ही जीव निर्मल होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है, मनुष्य परमधाम पाकर यह अनुभव प्राप्त कर सकता है कि आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है।

क्या हैं तेरे न्हाई धौई, आतम राँम न चीन्हाँ सोई॥ टेक॥
 क्या घट उपरि मंजन कीयै, भीतरि मैल अपारा॥
 राँम नाँम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा॥
 का नट भेष भगवाँ बस्तर, भसम लगावै लोई¹॥
 ज्यूँ दादुर² सुरसरी³ जल भीतरि हरि बिन मुक्ति न होई॥
 परिहरि⁴ काँम राँम कहि बौरै⁵ सुनि सिख बंधू मोरी॥
 हरि कौ नाँव अभैपद दाता, कहै कबीरा कोरी⁶॥⁽²²⁾

ऐसे घर हम बहुत बसाए

सृष्टि के आदि से आत्मा अनेक चर तथा अचर योनियों में भटक रही है। कबीर साहिब कहते हैं कि हे प्रभु, जिस दिन से आत्मा ने गर्भ में आना शुरू किया है, उसने पशु, पक्षी, कीट, पतंगे आदि अनेक योनियों में जन्म लिया है। मनुष्य योनि में भी कभी योगी और कभी यती, कभी तपस्वी और कभी ब्रह्मचारी, कभी राजा और कभी रंक, इस तरह कई रूप अपनाने के बाद भी उसे छुटकारा नहीं मिला। साकत अर्थात् विषय-भोग में मग्न मनमुख लोग, इस प्रकार बार-बार मरते और जन्म लेते हैं परंतु संत अथवा मालिक के सच्चे भक्त राम-नामरूपी अमृत का पान करके अमर हो जाते हैं। पद के अंत में कबीर साहिब कहते हैं कि हे प्रभु, जन्म-मरण के इस क्रम से हम हार गए हैं, अब तू ही कृपा कर, हमें इससे छुड़ाकर पूर्णता प्रदान कर।

1. लोग 2. मेंढक 3. गंगा 4. त्याग 5. बाँवले 6. जुलाहा

असथावर¹ जंगम² कीट पतंगा॥ अनिक जनम कीए बहु रंगा॥
 ऐसे घर हम बहुत बसाए॥ जब हम राम गरभ होए आए॥
 जोगी जती तपी ब्रह्मचारी॥ कबहू राजा छत्रपति कबहू भेखारी॥
 साकत³ मरह संत सभ जीवह॥ राम रसाइन रसना पीवह॥
 कहो कबीर प्रभ किरपा कीजै॥ हार परे अब पूरा दीजै॥⁽²³⁾

मत-मतांतरों के बंधन

मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करने की कोशिश तो करते हैं परंतु वे अपनी पहले से चली आ रही धारणाओं और ज्ञान तथा दर्शन के पक्ष-विपक्ष के झमेले में ही पड़े भटकते रहते हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि जैसे किसान दो गधों को एक दूसरे से बाँध देता है ताकि वे स्वतंत्रतापूर्वक विचर न सकें, वैसे ही लोग अपने आप को धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धांतों से बाँधकर प्रभुप्राप्ति के मार्ग से दूर रह जाते हैं। रूहानी मार्ग का संकेत करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि जो व्यक्ति आत्मिक दृष्टि प्राप्त कर लेता है अर्थात् अपनी अंतर की आँख खोल लेता है, वही उस एक परमात्मा को पहचान सकता है। शब्द के अंत में कबीर साहिब एक बहुत गहरे रूहानी रहस्य पर प्रकाश डालते हैं: पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै अर्थात् जो आत्मा अपने अंशी पूर्ण परमात्मा में समाकर पूर्णता प्राप्त कर लेती है, वह सर्वद्रष्टा हो जाती है, संपूर्ण ब्रह्मांड तथा तीनों काल उसके लिए एक खुला चित्रपट होते हैं जिस पर वह एक साथ दृष्टि डाल सकती है।

पखा पखी⁴ कै पेखणै, सब जगत भुलानाँ।
 निरपख होइ हरि भजै, सो साध सयाँनाँ॥ टेक॥
 ज्यूँ खर सूँ खर⁵ बाँधिया, यूँ बाँधे सब लोई॥

1. अचर जीव 2. चर जीव 3. मनमुख 4. पखा पखी=तर्क-वितर्क
 5. गधा भाव अज्ञानी

जाकै आत्मद्रिष्टि है, साचा जन सोई॥
 एक एक जिनि जाँणियाँ, तिनहीं सच पाया।
 प्रेम प्रीति ल्यौ लीन मन, ते बहुरि न आया॥
 पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै।
 कहै कबीर कछू समझि न परई, या कछू बात अलेखै॥⁽²⁴⁾

बिन नयनन जग देखे

कुछ परस्पर विरोधी लगती बातों के सहारे इस पद में कबीर साहिब बताते हैं कि संतों का मार्ग साधारण अभ्यासियों के मार्गों से भिन्न है। वह कहते हैं कि जो लोग बाहरमुखी भक्ति की नाव में बैठते हैं, जो मनचाहे मार्ग पर चलते हैं, वे अपने ध्येय पर पहुँचने में असफल होते हैं। जो लोग संसार में रहकर तीर्थस्नान, दान, मंदिरों में पूजा आदि करते हैं, वे और जो लोग संसार को त्यागकर जंगलों-पहाड़ों में जाकर जप, तप आदि करते हैं, वे भी मन और माया की रस्सी से बँधे रहते हैं। जिनका अंतर शब्द के बाण से बिँध जाता है, वे सदा का सुख प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत जो लोग शब्द से अछूते रह जाते हैं, वे दुःख भोगते रहते हैं। जो लोग अंदर की आँख नहीं खोलते और सांसारिक पदार्थों और आकर्षणों को ही देखते रहते हैं, वे आंतरिक रूहानी मंडलों के प्रति अंधे रहते हैं। परंतु जिनकी वृत्ति अंतर्मुख हो जाती है और जो अपनी आंतरिक आँख खोल लेते हैं, वे परमात्मा को संपूर्ण सृष्टि में देखते हैं।

अवधू¹ ऐसा ग्यान बिचार।
 भैंरें² चढ़े सु अधधर³ डूबे, निराधार भये पार॥ टेके॥
 ऊघट चले सु नगरि पहुँचे, बाट चले ते लूटे।
 एक जेवड़ी⁴ सब लपटाँने, के बांधे के छूटे॥

1. योगी 2. छोटी नाव 3. बीच में 4. रस्सी

मंदिर पैसि¹ चहूँ दिसि भींगे, बाहरि रहे ते सूका।
 सरि² मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूखा³॥
 बिन नैनन के सब जग देखै, लोचन अछते⁴ अंधा।
 कहे कबीर कछु समझि परी है, यहु जग देख्या धंधा॥⁽²⁵⁾

विरह की अग्नि

नीचे दिए गए दोहों में प्रभु के विरह में व्याकुल भक्त का चित्रण किया गया है। सामान्य से उलटी और इसलिए बेतुकी जान पड़ती लेकिन छिपे हुए गहरे आध्यात्मिक अर्थ से पूर्ण, बातों का सहारा लेकर यह बताया गया है कि भक्त का मन जब विरह में आतुर हो उठता है तो उसकी सब सांसारिक आशाएँ तथा तृष्णाएँ मिट जाती हैं। विषयासक्ति का अंत हो जाता है, मन की बाहरमुखी वृत्तियों के निष्क्रिय हो जाने से ध्यान आसानी से अंतर में टिक जाता है और भक्त पूरी लगन के साथ भक्ति करने लगता है जिससे उसकी बहुत आध्यात्मिक उन्नति होती है। यह विरह सतगुरु की दात होती है और भक्त का आध्यात्मिक विकास सतगुरु की दया-मेहर पर ही निर्भर करता है।

अग्नि जू लागि नीर मैं, कंदू⁵ जलिया झारि⁶।
 उतर दषिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि॥
 गुर दाधा⁷ चेला जलया, विरहा लागी आगि।
 तिणका बपुड़ा उबरया, गलि पूरे कै लागि॥
 आहेड़ी⁸ दौं⁹ लाइया, मृग पुकारे रोइ।
 जा बन में क्रीला करी, दाझत¹⁰ है बन सोइ॥
 दौं लागी साइर¹¹ जलया, पंखी बैठे आइ।

1. अंदर प्रवेश करके 2. बाण, तीर 3. दुःखी 4. होते हुए 5. कीचड़
 6. सब 7. जलाया 8. शिकारी 9. आग 10. जलना
 11. सागर अर्थात् गहरा मन

दाधी¹ देह न पालवै², सतगुर गया लगाइ॥
 पाणीं माँहै प्रजली³, भई अपरबल⁴ आगि॥
 बहती सलिता रहि गई, मंछ रहे जल त्यागि॥
 समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई॥
 देखि कबीरा जागि, मंछी रूखाँ⁵ चढ़ि गई॥⁽²⁶⁾

नाम की नौका

नाम अर्थात् शब्द ही वह साधन है जिसके द्वारा जीव मन और माया के मंडलों तथा जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पा सकता है। कबीर साहिब कहते हैं कि नाम निश्चित रूप से वह नाव है जो जीव को संसार के तूफानी सागर से पार ले जाकर प्रभु से मिलाती है। यह नाम ही प्रभु की एकमात्र पहचान है, इसी रूप में वह भक्तों को अंतर में दर्शन देता है। भक्तों को भवसागर के पार ले जानेवाली नामरूपी नौका को स्वयं उसी ने बनाया है और उसे संतों के सुपुर्द कर दिया है। जो मन को दृढ़ करके इस नाव में चढ़ जाते हैं, वे पार उतर जाते हैं परंतु जो डाँवाँडोल मन के साथ नाव को पकड़ने की कोशिश करते हैं, उनके हाथ कुछ नहीं लगता और वे अथाह समुद्र में गोते खाते रहते हैं। जो सतगुरु को पहचानकर उनकी शरण ले लेते हैं, वे निर्मल गति प्राप्त कर लेते हैं परंतु जो नहीं पहचानते, वे विकारों की अग्नि में पतंगे की तरह जलकर भस्म हो जाते हैं।

सिरजनहार नाँउ धूँ तेरा, भौसागर तिरिबे कूँ भेरा⁶॥
 जे यहु भेरा राँम न करता, तौ आपैं आप आवटि⁷ जग मरता॥
 राँम गुसाँई मिहर जु कीन्हाँ, भेरा साजि संत कौँ दीन्हाँ॥
 दुख खँडण⁸ मही⁹ मंडणौ¹⁰, भगति मुकुति बिश्राम॥

1. जली हुई 2. पनपती 3. तेज़ जली 4. ज़बरदस्त 5. वृक्षों पर
 6. बेड़ा, नौका 7. उबलकर 8. नाश होना 9. पृथ्वी
 10. शोभा पाना

बिधि¹ करि भेरा साजिया, धरया राँम का नाम॥
 जिनि यह भेरा दिढ़ करि गहिया², गये पार तिन्हौं सुख लहिया॥
 दुमनौं³ हैं जिनि चित्त डुलावा, करि छिटके थैं थाह न पावा॥
 इक डूबे अरु रहे उबारा, ते जगि जरे न राखणहारा॥
 राखन की कछु जुगति न कीन्हीं, राखणहार न पाया चीन्हीं⁴॥
 जिनि चीन्हाँ ते निरमल अंगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा⁵॥
 राँम नाँम ल्यौ लाइ करि, चित चेतन है जागि॥
 कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे राँम ल्यौ लागि॥⁽²⁷⁾

ज्यों बालू की भीत

संसार के क्षणभंगुर तथा दुःखपूर्ण होने का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि जीव को अपने मनुष्य जन्म का मोल याद रखना चाहिए। यह अत्यंत दुर्लभ है और उम्र कम होती जा रही है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि समय रहते सतगुरु से नाम लेकर उसका अभ्यास करे। वही उसे उसके असली निवास-स्थान पर पहुँचाएगा, इस संसार में तो वह एक परदेसी ही है।

मन करि ले साहिब से प्रीत।
 सरन आये सो सब ही उबरे, ऐसी उनकी रीत॥
 सुन्दर देह देखि मत भूलो, जैसे तृन⁶ पर सीत⁷।
 काँची देह गिरै आखिर को, ज्यों बारू की भीत॥
 ऐसो जन्म बहुर नहिं पैहौ, जात उमिरि सब बीत॥
 दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपर, देव नगारा जीत॥⁽²⁸⁾

रहना नहिं देस बिराना है॥ टेक॥
 यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है॥

1. क़ानून 2. पकड़ी 3. दुविधा में 4. पहचाना 5. पतंगे
 6. तिनका 7. तुषार, पाला

यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है॥
 यह संसार झाड़ औ झाँखर¹, आग लगे बरि जाना है॥
 कहत कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥⁽²⁹⁾

झूठे तन कौं कहा रखइये, मरिये तौ पल भरि रहण न पइये॥ टेक॥
 खीर खांड घृत प्यंड² सँवारा, प्राँन गये ले बाहरि जारा॥
 चोवा³ चंदन चरचत अंगा, सो तन जरै काठ के संग्गा॥
 दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा, इक दिन है है हाल हमारा॥⁽³⁰⁾

लोगन राम खिलौना जाना

लोग माथे पर तिलक, हाथ में माला और शरीर पर लाल, पीले, नीले, सफ़ेद आदि रंगों में से किसी एक रंग का चोला धारण कर लेते हैं। वे फूलों, पत्तियों आदि के द्वारा भाँति-भाँति की पूजा करते हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि इस तरह के तमाशे करनेवाले लोगों ने प्रभु को खिलौना समझ लिया है परंतु सच्ची भक्ति के बिना सब सेवा व्यर्थ है। मैं तो सतगुरु की पूजा करता हूँ और उन्हीं को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता हूँ। ऐसी सेवा से ही प्रभु की दरगाह में मान प्राप्त होता है। लोग कहते हैं कि कबीर पागल हो गया है परंतु कबीर की आंतरिक अवस्था का भेद केवल प्रभु ही जानता है।

माथे तिलक हथ माला बानां॥ लोगन राम खिलउना जानां॥
 जउ हउ बउरा⁴ तउ राम तोरा॥ लोग मरम कह जानै मोरा॥
 तोरउ न पाती पूजउ न देवा॥ राम भगति बिन निहफल सेवा॥
 सतगुर पूजउ सदा सदा मनावउ⁵॥ ऐसी सेव दरगह सुख पावउ॥
 लोग कहै कबीर बउराना॥ कबीर का मरम राम पहिचानां॥⁽³¹⁾

1. काँटेदार झाड़ियों का झुरमुट 2. शरीर 3. सुगंधित द्रव्य 4. बावला
 5. प्रसन्न करना

अकथ कहानी प्रेम की

प्रभु के प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता। यह अनुभव का विषय है, कहने-सुनने का नहीं। परंतु इस प्रेम का अनुभव तभी हो सकता है यदि मन स्थिर होकर अंतर की ओर मुड़े। कबीर कहते हैं कि प्रेम का वृक्ष बिना धरती और बिना बीज के उगता और फैलता है अर्थात् इस रूहानी प्रेम का आधार संसार (धरती) तथा आशा-तृष्णा (बीज) नहीं है। यह ऐसा वृक्ष है जिस पर दिव्य प्रकाश के अनगिनत फल लगते हैं। उनका स्वाद प्रेमी शिष्य गुरु की कृपा से लेता है। कबीर साहिब कहते हैं कि मैंने बैठकर, मन को स्थिर करके शब्द का अभ्यास किया तो मेरी प्रभु में लिव लग गई। तब मेरे समस्त भ्रम और झूठी धारणाएँ इस प्रकार दूर हो गईं जैसे वायु के झोंके से धान के खोखले छिलके उड़ जाते हैं। प्रेम की इस अवस्था को प्राप्त करना मेरी शक्ति में नहीं था; यह तो सतगुरु की कृपा और सहायता का फल था।

अकथ कहाँणी प्रेम की, कछु कही न जाई।
 गूँगे केरी सरकरा¹, बैठे मुसुकाई॥ टेक॥
 भोमि बिनाँ अरू बीज बिन, तरबर एक भाई।
 अनंत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई।
 मन थिर बैसि बिचारिया, राँमहि ल्यौ लाई।
 झूठी अनभै² बिस्तरी³, सब थोथी बाई॥
 कहै कबीर सकति कछु नाँही, गुरु भया सहाई॥
 आँवण जाँणी मिटि गई, मन मनहि समाई॥⁽³²⁾

ऐसा देस हमारा

पहले पद में कबीर अपने को परमधाम का वासी बताते हुए कहते हैं कि इस रहस्य को कोई भेदी परमार्थी ही जान सकता है जिसने सतगुरु से

1. शक्कर 2. अनुभव 3. बिखरना

दीक्षा ले रखी हो। वेद, कुरान आदि धर्मग्रंथ इस धाम का भेद नहीं पा सके और यह वर्णन से परे है। यहाँ परमार्थी के सामाजिक स्तर, कुलाचार, लोकाचार तथा बाहरमुखी भक्ति को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता।

चौथी से सातवीं पंक्ति तक आंतरिक जगत के तीसरे मंडल सुत्र का वर्णन है। बताया गया है कि वहाँ अमृत की बूँदे झर रही हैं जो मीठी या खारी नहीं हैं। वहाँ सुनाई देनेवाले आध्यात्मिक मंडल के सूचक शब्द का स्वर किंगरी, बीन तथा सितार जैसा है और प्रभु के उच्चारें हुए उस शब्द का संगीत हमारे संगीत के सात सुरों में बँधा हुआ नहीं है जिनका संबंध हमारे कंठ तथा श्वास से है। वहाँ चमकती बिजली तथा वहाँ के उज्ज्वल प्रकाश का स्रोत भौतिक जगत के बादल और सूरज नहीं हैं और वहाँ अनमोल मोती भी सीपों में पैदा नहीं होते।

पद की अंतिम दो पंक्तियों में यह बताया गया है कि ब्रह्म के मंडल यानी दूसरे आंतरिक मंडल त्रिकुटी के प्रकाश के सामने सारे ब्रह्मांड का प्रकाश फीका पड़ जाता है और प्रभु का अगम-अपार मंडल परमधाम वहाँ से बहुत आगे है। कबीर का निवास उस अगम-अपार मंडल में है।

दूसरे पद में कबीर साहिब आत्मा को शरीर के चौबारे में से निकलकर आंतरिक जगत में जाने की प्रेरणा देते हैं जहाँ उनके प्रियतम परमात्मा का वास है। आप कहते हैं कि आंतरिक जगत में एक उलटा कुआँ है जिसका मुँह बड़ा तंग है। उसमें से सतगुरु से नामदान प्राप्त कर चुकी आत्मा ही शब्दरूपी अलौकिक जल भर सकती है। आंतरिक जगत के अंतिम मंडल, प्रभु के धाम सतलोक का प्रकाश करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के बराबर है। वह परमधाम मुक्तिधाम है और वही वह स्थान है जहाँ से आत्मा नीचे इस मृत्युलोक में आई थी।

महरम¹ होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा॥ टेक॥

बेद कतेब² पार नहिं पावत, कहन सुनन से न्यारा।

1. भेद जाननेवाला 2. कुरान, ज़बूर, तौरत, और इंजील—ये चारों धर्मग्रंथ

जाति बरन कुल किरिया¹ नाही, संध्या नेम² अचारा॥
बिन जल बूँद परत जहाँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।
सुत्र महल में नौबत³ बाजै, किंगरी बीन सितारा॥
बिन बादर जहाँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा।
बिना सीप जहाँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा॥
जोति लजाय ब्रह्म जहाँ दरसै, आगे अगम अपारा।
कहैं कबीर वहाँ रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा॥⁽³³⁾

चलु हंसा वा देस, जहाँ तोर पिया बसै॥ टेक॥
वहि देसवा में अर्द्धमुख कुइयाँ, साँकर⁴ वाकै मोहड़⁵।
सुरत सोहागिनि है पनिहारिनि, भरै ठाढ़⁶ बिन डोर॥
वहि देसवाँ बादर ना उमड़ै, रिमझिम बरसै मेह।
चौबारे⁷ में बैठि रहो ना, जा भीजहु निर्देह⁸॥
वहि देसवाँ में नित पूर्निमा, कबहु न होइ अँधेर।
एक सुरज कै कौन बतावै, कोटिन सुरज उँजरे॥...
कहै कबीर सुनो भाई साधो, ई पद है निर्बानी।
जो ई पद कै अरथ लगावै, पहुँचै मूल ठिकानी॥⁽³⁴⁾

नामरूपी कल्पतरु

कबीर साहिब कहते हैं कि जो अभ्यासी एकमात्र नाम (शब्द) का अभ्यास करता है, दिन-रात नाम के प्रति सचेत रहता है, वह अपने ध्येय में सफल होता है। ऐसे अनेक अभ्यासी नाम में लिव लगाकर तर गए हैं। परंतु योगी, साधक, सिद्ध, मुनि आदि प्रभुप्राप्ति का प्रयास कर-करके हार गए क्योंकि उन्होंने उस नाम का अभ्यास नहीं किया। नाम ही वह कल्पतरु है जो मुक्तिरूपी पदार्थ प्रदान करता है। जो प्रभु से मिलकर

1. धार्मिक संस्कार 2. व्रत, उपवास आदि 3. मंगल-सूचक बाजे 4. तंग
5. मुँह 6. खड़े 7. शरीर 8. भाव सूक्ष्म शरीर

उससे एक हो गए और पुनः संसार में नहीं आए, वे ऐसे परमार्थी थे जो प्रभु के असली नाम से परिचित हो गए थे अर्थात् जिनके अंदर शब्द प्रकट हो गया था।

अहिनिस¹ एक नाम जो जागे॥ केतक सिध² भए लिव लागे॥
साधक सिध सगल मुनि हारे॥ एक नाम कलिप तर³ तारे॥
जो हर हरे सो होहे न आना⁴॥ कह कबीर राम नाम पछाना॥⁽³⁵⁾

गढ़े हुए देव

पहले पद में यह बताया गया है कि परमपिता परमात्मा सबका स्रोत है और सृष्टि के कण-कण में व्याप्त होते हुए भी पूर्ण और अखंडित है। संत कबीर कहते हैं कि लोग ऐसे प्रभु के भेद को न जानते हुए मनुष्य के हाथों से गढ़े देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। और तो और, दस अवतार भी उस परमात्मा का स्थान नहीं ले सकते क्योंकि वे भी अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगते हैं। जो साधक शब्द का अभ्यास करके अंतर में शब्द को प्रकट कर लेता है वह भवसागर से पार हो जाता है।

दूसरे पद में भी हमें प्रभुभक्ति की प्रेरणा देते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि जीव मायातीत शब्द के अभ्यास से शरीर में रहते हुए ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वह हमें समझाते हैं कि प्रभु मनन-चिंतन का विषय नहीं है पर उसके शब्दरूप में उसका ध्यान किया जा सकता है। वह शब्द के रूप में प्राणियों में व्याप्त है परंतु लोग उसे छोड़कर भ्रमवश देवी-देवताओं की पूजा में लगे हैं। स्वयं शिव भी कहते हैं कि मैं प्रभु का ध्यान करना नहीं जानता, इसलिए अपने असली ठिकाने पर नहीं पहुँच सकता: ईस कहै मैं ध्यान न जानूँ।

1. दिन-रात 2. सिद्धि-प्राप्त योगी 3. कलिप तर=कल्पवृक्ष
4. होहे न आना=अन्य के नहीं होते

फिर कबीर प्रभु को संबोधित करके कहते हैं कि तेरी थोड़ी-सी कृपा हुई तो मैंने यह जान लिया कि निजधाम पहुँचने के लिए मुझे तेरे नाम का (शब्द का) सहारा लेना चाहिए। लोग तो माया के देश के परे से आनेवाले तेरे शब्द का भेद जानते ही नहीं, इसी लिए भ्रम में पड़े हुए हैं।

आगे कबीर साहिब कहते हैं कि मरने पर यदि आवागमन के चक्र से मुक्ति प्राप्त नहीं होती तो शरीर से छुटकारा पाने का क्या लाभ हुआ? मुनिजन तो जीवित शरीर में ही मुक्ति अर्थात् जीवन्मुक्ति की चर्चा करते हैं और जिसने वह मुक्ति प्राप्त की होती है, वह मायातीत शब्द में समाकर शब्दस्वरूप हो गया होता है। प्रभु आँखों से दिखाई तो नहीं देता परंतु वह विश्वरूप है, अपनी सारी सृष्टि के रूप में हमारे सामने प्रकट है। मैंने नामभक्ति करके उस परमानंद को प्रसन्न कर लिया और अंतर में उसके दर्शन करके उसको सृष्टि के कण-कण में व्याप्त भी देख लिया। वह सर्वव्यापक मुझसे छिपा कैसे रह सकता था?

अनगढ़िया देवा, कौन करै तेरी सेवा॥ टेक॥
गढ़े देवा को सब कोइ पूजै, नित ही लावै सेवा।
पूरन ब्रह्मा अखंडित स्वामी, ता को न जानै भेवा¹॥
दस औतार निरंजन कहिये, सो अपनों ना होई।
यह तो अपनी करनी भोगें, करता औरहि कोई॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर कहिये, इन सिर लागी काई²।
इनहिं भरोसे मत कोइ रहियो, इन हूँ मुक्ति न पाई॥
जोगी जती तपी सन्यासी, आप आप में लड़िया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सबद लखै सोई तरिया॥⁽³⁶⁾

अच्यंत³ च्यंत⁴ ए माधौ, सो सब माँहिं समौनाँ।
ताहि छाड़ि जे आँन भजत हैं, ते सब भ्रमि भुलौनाँ॥ टेक॥

1. भेद 2. मैल 3. बुद्धि की पहुँच से परे 4. मनन-चिंतन करने योग्य

ईस¹ कहै मैं ध्यान न जानूँ, दुरलभ निज पद मोहीं।
 रंचक² करुणौ कारणि केसो, नाम धरण कौ तोहीं॥
 कहौ धौ³ सबद कहाँ थै आवै, अरु फिर कहाँ समाई।
 सबद अतीत का मरम न जानै, भ्रमि भूली दुनियाई॥
 प्यंड मुक्ति कहाँ ले कीजै, जौ पद मुक्ति⁴ न होई।
 प्यंडै मुक्ति कहत हैं मुनि जन, सबद अतीत था सोई॥
 प्रगट गुप्त गुप्त पुनि प्रगट, सो कत रहै लुकाई।
 कबीर परमानंद मनाये, अकथ कथ्यौ नहीं जाई॥⁽³⁷⁾

मन का शिकार – उसे वश में करना

एक ग्रामीण शिकारी के जीवन पर आधारित यह पद मन को वश में करने का सुझाव देता है। शिकार पर जाते हुए पति से शिकारी की पत्नी कहती है कि हे पतिदेव, किसी जीवित प्राणी की हत्या न करना परंतु मरा हुआ, रक्त तथा मांस से हीन शिकार लेकर भी घर न आना। भाव यह है कि मनुष्य का असली शिकार मन है जिसका कोई शरीर और रूप नहीं है परंतु वह फिर भी संसाररूपी वन में बेखटके दौड़ रहा है। मनुष्य अपने अंतर में स्थित अपने घर सतलोक में तभी वापस जा सकता है, जब वह इस बिना चोंच, खुर, सिर और शरीर के पशु का शिकार कर ले अर्थात् अपने मन को वश में कर ले। परंतु मन को वश में करने का अर्थ इसे केवल संसार के मोह से मुक्त करना है, संसार के कामकाज से छुट्टी दिला देना नहीं। परमार्थी को भी अपने सांसारिक कर्तव्य निभाने होते हैं और इसके लिए उसे अपने मन को संसार में सक्रिय तो रखना ही पड़ता है मगर यह काम वह मन को वश में रखते हुए भी उसे संसार में अनासक्त रखते हुए भी कर सकता है।

शिकारी की पत्नी अपने पति को दूसरी तरह के शिकारी (परमधाम को प्राप्त कर चुके परमार्थी) का उदाहरण देते हुए प्रेरित करती है कि देखो, उस शिकारी ने डोर रहित धनुष से ऐसे हिरन का शिकार किया

है जिसका सिर नहीं है और उसका वध करके भी उसे जीवित रखा है। यह गुरु के प्रदान किए हुए ज्ञान की महिमा है। तात्पर्य यह है कि हमें अपने मनरूपी हिरन को साधारण शिकारियों के समान बाण से नहीं बल्कि ध्यान के धनुष पर सुमिरन का बाण चढ़ाकर उसके द्वारा मारना है। इस प्रकार मारा हुआ मन दुनिया की ओर से मृत रहकर आंतरिक रूहानी मंडलों के प्रति जीवित हो जाता है। पद के अंत में कबीर साहिब कहते हैं कि हे प्रभु, तुझसे मिलने के लिए व्याकुल मैं ऐसी लता के समान हूँ जो वृक्ष से लिपटना चाहती है परंतु इस लता में सांसारिक कामना और वासना के पत्ते नहीं हैं।

जीवत जिनि¹ मारै मूवा मति ल्यावैं,

मास बिहूणौ² घरि मत आवै हो कंता॥ टेक॥

उर बिन खुर बिन चंच बिन, बपु³ बिहूना सोई।

सो स्यावज⁴ जिनि मारैं कंता, जाकै रगत⁵ मास न होई॥

पैली पार के पारधी⁶, ताकी धुनहीं पिनच⁷ नहीं रे।

ता बेली⁸ को दूँक्यो मृग लौ⁹, ता मृग कै सीस नहीं रे।

मारया मृग जीवता राख्या, यहु गुरु ग्याँन मही¹⁰ रे।

कहै कबीर स्वाँमी तुम्हारे मिलन कौं, बेलीहै पर पात नहीं रे॥⁽³⁸⁾

जो बोले घट माहीं

धर्मशास्त्र और विद्वान आत्मा के बारे में चर्चा तो खूब करते हैं परंतु जिज्ञासु को आत्म-साक्षात्कार नहीं करवाते। कबीर साहिब ने आत्मा का वर्णन एक ऐसे पक्षी के रूप में किया है जो शरीररूपी घोंसले में छिपा हुआ है। इसका कोई रंग, रूप या आकार नहीं है और यह नाम के रूप में सारी सृष्टि में व्याप्त प्रभु की छाया में बैठा है।

1. मत 2. रहित 3. शरीर 4. शिकार 5. खून

6. पैली...पारधी=परले किनारे के शिकारी 7. डोर 8. लता

9. मृग लौ=भाव मनरूपी मृग 10. महिमा

इसी रूपक को जारी रखते हुए कबीर संसार को एक बहुत बड़ा वृक्ष बताते हैं और कहते हैं कि यह पक्षी इस वृक्ष पर ही रहता है और इसी पर बैठा फल खाता है। यह एक डाल से उछलकर दूसरी डाल पर जाता है अर्थात् आत्मा इस संसार में एक योनि से दूसरी में जन्म लेती रहती है। आमतौर पर पक्षी साँझ पड़ने पर वृक्ष पर आ जाते हैं और सवेरा होते ही उड़ जाते हैं लेकिन इस पेड़ पर बसनेवाले पक्षियों की रीति असाधारण है क्योंकि ये रात्रि के आने पर उड़ जाते हैं और सुबह होने पर वापस आ जाते हैं। भाव यह है कि आत्मा रात्रि अर्थात् मृत्यु के आने पर संसार को छोड़ देती है और सुबह होने पर अर्थात् फिर जन्म होने पर वापस यहीं आ जाती है। आगे कबीर कहते हैं कि आम पक्षी दिन भर तरह-तरह के दाने, फल आदि खाते रहते हैं मगर आत्मारूपी पक्षी यहाँ केवल दो ही फल खाता है, अपने अच्छे कर्मों का मीठा और बुरे कर्मों का कड़वा फल। परंतु यदि आत्मा अपने असली घर अगम-अपार परमधाम में पहुँच जाए तो इसका फिर संसार में आना-जाना नहीं होता।

सो पंछी मोहिं कोइ न बतावै, जो बोलै घट माहीं रे।
अबरन¹ बरन रूप नहिं रेखा, बैठा नाम की छाहीं रे॥ टेक॥
या तरवर में एक पखेरू, रूँगत चुँगत वह डोलै रे।
वा की सन्ध² लखै नहिं कोई, कौन भाव से बोलै रे॥
दुर्म³ डारि तहँ अति घनि छाया, पंछी बसेरा लेई रे।
आवै साँझ उड़ि जाइ सवेरा, मरम न काहू दई रे॥
दुइ फल चाखि जाय रह्यो आगे, और नहीं दस बीसा रे।
अगम अपार निरन्तर बासा, आवत जात न दीसा रे॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह कह्यो अगम कहानी रे।
या पंछी को कौन ठौर है, बूजो पंडित ज्ञानी रे॥⁽³⁹⁾

ज्ञान की आँधी

कई बार गर्मी के मौसम या बरसात के आरंभ में आँधी आती है जिससे गरीब किसानों के छप्पर उड़ जाते हैं। आँधी के बाद साधारणतया बारिश आती है और उसके बाद बादलों के बिखर जाने पर स्वच्छ आकाश में सूर्य निकल आता है। कबीर साहिब ने इसी दृष्टांत के माध्यम से इस पद में आत्मिक ज्ञानरूपी आँधी के आने पर भ्रम के छप्पर का, जो माया की रस्सी से बँधा था, उड़ जाना बताकर यह कहा है कि आसा-मनसा के खंभे तथा मोह के बलिंडे टूट गए हैं और तृष्णा का छज्जा नीचे गिर गया है। कुबुद्धिरूपी मटका टूट गया है। शरीररूपी घर के अंदर से झूठ और कपट का कचरा उड़ गया है और जीव ने परमात्मा को पहचान लिया है। कबीर साहिब कहते हैं कि संत-सतगुरु ने बड़ी युक्ति से शब्दमार्ग की नई छत बना दी है जिससे निश्चित रूप से सांसारिक मोह का पानी नहीं चू सकता। इस ज्ञान की आँधी के बाद आनेवाली प्रभुप्रेम की वर्षा ने भक्त के हृदय को प्रेम से सराबोर कर दिया है। बादलों के हट जाने पर रूहानी अनुभव का सूर्य प्रकट हो गया है और भ्रम का अंधकार सदा के लिए दूर हो गया है।

संतौ भाई आई ग्याँन की आँधी रे।
भ्रम की टाटी¹ सबै उड़ाँणी, माया रहै न बाँधी॥ टेक॥
हिति चित की द्वै थूँनी² गिराँनी, मोह बलिंडा³ तूटा।
त्रिस्नाँ छाँनि⁴ परि घर ऊपरि, कुबधि का भाँडाँ फूटा॥
जोग जुगति करि संतौ बाँधी, निरचू⁵ चुवै न पाँणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी॥
आँधी पीछें जो जल बूठा⁶, प्रेम हरि जन भीनौं।
कहै कबीर भाँन⁷ के प्रगटे, उदित भया तम खीनौं⁸॥⁽⁴⁰⁾

निपुण कसाई

कबीर साहिब हर प्रकार की जीवहत्या के विरुद्ध हैं, चाहे जीव का वध बलि के रूप में हो या आहार के लिए। आप कहते हैं कि जो कठोर-हृदय और निर्दयी लोग मूक प्राणियों के वध का उपदेश देते हैं, उन्हें धर्मराज के न्यायालय में कष्ट भोगना पड़ेगा।

पहले पद में कबीर साहिब मुसलमानों को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि खुदा के नाम पर जानवरों का वध करके यह कहना कि इससे मालिक खुश होगा, बहुत बड़ी भूल है।

दूसरे पद में वह उन हिंदुओं को चेतावनी देते हैं जो जीवहत्या का समर्थन करते हैं। वह कहते हैं कि ऐसे हिंसक लोग यम के शिकार बनते हैं तथा नरकों और नीची योनियों में जाकर यातनाएँ पाते हैं। तीसरे पद में इसी भाव को लेकर कबीर साहिब हिंदू और मुसलमान दोनों को दया अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

दर की बात कहो दुरवेसा, बादसाह है कौने भेसा।

कहाँ कूच¹ कहाँ करहि मुकामा², मैं तोहि पूछों मूसलमाना॥

लाल जर्द³ का नाना बाना, कौन सुरत को करहु सलामा।

काजी काज करहु तुम कैसा, घर घर जबह करावहु भैसा॥

बकरी मुरगी किन्ह फुरमाया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।

दर्द न जानहु पीर कहावहु, बेता⁴ पढ़ि पढ़ि जग भरमावहु॥

कहहि कबीर यक सयर⁵ कहावे, आपु सरीखे⁶ जग कबुलावे⁷।

दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।

येहि खून वह बंदगी, क्योंकर खुसी खोदाय॥⁽⁴¹⁾

1. खाना होना 2. पड़ाव 3. पीला 4. उर्दू में एक प्रकार की कविता

5. शायर, कवि 6. समान, तुल्य 7. स्वीकार कराना

साधो पाँडे निपुन कसाई॥ टेक॥

बकरी मारि भेड़ि को धाये, दिल में दरद न आई॥

करि अस्नान तिलक दै बैठे, बिधि सों देबि पुजाई॥

आतम मारि पलक में बिनसे, रुधिर की नदी बहाई॥

अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये, सभा माहिं अधिकाई॥

इन से दिच्छा सब कोई माँगे, हँसी आवै मोहिं भाई॥

पाप कटन को कथा सुनावैं, करम करावैं नीचा॥

बूझत दोऊ परस्पर देखे, गहे बाँहि जम खींचा॥

गाय बधै सो तुरुक कहावै, यह क्या इन से छोटे॥

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, कलि में बाम्हन खोटे॥⁽⁴²⁾

संतो राह दुनो हम दीठा।

हिन्दू तुर्क हटा¹ नहिं मानै, स्वाद सबन को मीठा॥

हिन्दू ब्रत एकादसि साधै, दूध सिंघारा सेती²।

अन्न को त्यागै मन नहिं हटकै, पारन³ करै सगौती⁴॥

तुरुक रोजा निमाज़ गुजारै, बिस्मल बाँग पुकारै।

इन्हको भिस्त कहाँ ते होवे, जो साँझै मुर्गी मारै॥

हिन्दु की दया, मेहर तुर्कन की, दूनों घट से त्यागी।

ये हलाल वै झटका मारैं, आगि दुनों घर लागी॥

हिन्दु तुर्क की एक राह है, सतगुरु सोइ लखाई।

कहैं कबीर सुनो हो संतो, राम न कहूँ खोदाई॥⁽⁴³⁾

गौने का दिन

संसार के प्रायः सभी धर्म मृत्यु के बाद प्रभु की प्राप्ति का आश्वासन देते हैं। परंतु संत न तो ऐसे धर्म को महत्त्व देते हैं और न ही उनके वादों को, क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं कि ऐसे वादे पूरे होंगे। संत जीते-जी मुक्ति

1. मनाही 2. के साथ 3. उपवास के बाद भोजन 4. मांस

प्राप्त करने पर ज़ोर देते हैं और कहते हैं कि मनुष्य को शरीर में रहते हुए ही प्रभु का साक्षात्कार करना चाहिए। कबीर इस भाव को एक भारतीय पत्नी के उदाहरण द्वारा समझाते हैं जो अपने पीहर में पति के बुलावे का इंतज़ार कर रही है। पतिरूपी परमेश्वर द्वारा बुलाए जाने का दिन मृत्यु का दिन है और पत्नी समझती है कि पति ने मृत्युरूपी डोली उसे लेने के लिए भेजी है। परंतु शरीर के घर को छोड़ने पर आत्मारूपी वधू यह देखकर हैरान होती है कि जिस पति के देश का उसे धर्मग्रंथों ने सपना दिखाया था, कहार (यमदूत) उसे उस देश में नहीं बल्कि किसी अनजाने स्थान पर ले आए हैं। न वहाँ उसका पति है और न कोई परिचित। वह वापस आना चाहती है परंतु आ नहीं सकती। वह कहारों से विनती करती है कि कुछ क्षणों के लिए डोली रोक लें ताकि वह अपने परिजनों और संबंधियों से अंतिम बार विदा ले ले। परंतु उसकी विनती का उन पर कोई असर नहीं होता। भाव यह है कि जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत आदि क्रियाएँ जो मनुष्य संसार के प्रति मोह से छूटने का साधन समझकर करता है, वे सब मृत्यु के समय निरर्थक साबित होती हैं और अंदर दबा हुआ मोह अंतिम समय में उभर आता है तथा जीव को फिर से संसार की ओर खींचता है।

पद के अंत में कबीर साहिब कहते हैं कि यह संसार ही ऐसा स्थान है जहाँ जीव अपने कर्मों के लेन-देन का सौदा अदा करके तथा रूहानी अभ्यास द्वारा संचित कर्मों को नष्ट करके प्रभु से मिलाप कर सकता है।

आयौ दिन गौने कै हो, मन होत हुलास॥ टेक॥...

डोलिया उतारै बीचा बनवाँ हो, जहँ कोइ न हमार॥

पड़्यौ तोरी लागौं कहरवा हो, डोली धरु छिन बार¹।

मिलि लेवँ सखिया सहेलरि हो, मिलौं कुल परिवार॥

दास कबीर गावै निरगुन हो, साधो करि लो बिचार।

नरम गरम सौदा करि लो हो, आगे हाट न बजार॥⁽⁴⁴⁾

1. छिन बार=क्षण भर के लिए

अनमोल नाम

पहले पद में नाम यानी शब्द को एक अनमोल पदार्थ बताया गया है जो अविनाशी, रूप-रंग से रहित और अखंड है। इसकी कोई परख नहीं कर सकता क्योंकि यह मन तथा इंद्रियों की पहुँच से परे है। कबीर साहिब कहते हैं कि मैं नाम में लीन हूँ और यह मुझमें समाया हुआ है। शब्द और मैं, दोनों इस प्रकार एक हो गए हैं जैसे पानी से मिलकर पानी एक हो जाता है। जो शब्द को पहचान लेते हैं वे जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं, दूसरे बार-बार संसार में आकर मरते रहते हैं।

दूसरे पद में कबीर साहिब कहते हैं कि अंतर में इसका अनुभव किए बिना इसका भेद नहीं पाया जा सकता।

लाधा¹ है कछू लाधा है, ताकी पारिख² को न लहै।

अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै॥ टेक॥

तोल न मोल माप कछु नाही, गिणँती ग्यान न होई।

नाँ सो भारी नाँ सो हलका, ताकी पारिख लखै न कोई॥

जामैं³ हम सोई हम ही मैं, नीर मिले जल एक हूवा।

यौं जाँणैं तो कोई न मरिहैं, बिन जाँणैं थैं बहुत मूवा॥

दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊँ।

बिधनाँ⁴ बचन पिछाँड़त नाही, कहु क्या काढ़ि⁵ दिखाऊँ॥⁽⁴⁵⁾

है कोई राँम नाँम बतावै, बस्तु अगोचर मोहि लखावै॥ टेक॥

राँम नाँम सब कोई बखानै, राँम नाँम का मरम न जाँनै॥

ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावैं तौ सुख पावै॥

कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनाँ मरम को पावै॥⁽⁴⁶⁾

1. प्राप्त हुआ 2. परख 3. जिसमें 4. ब्रह्मा 5. भाव प्रमाण

विरहिणी आत्मा

भारतीय परिवार में जब कन्या का जन्म होता है तो माता-पिता प्यार के साथ उसका पालन-पोषण करते हैं, परंतु साथ ही याद रखते हैं कि वह पराई अमानत है और विवाह के बाद अपने पति के घर चली जाएगी। इसी भावना के आधार पर कबीर साहिब कहते हैं कि आत्मा ने मनुष्य चोले में इसी लिए जन्म लिया है कि वह अपने पति परमात्मा से मिलाप प्राप्त कर ले। आत्मारूपी कन्या का विवाह तो पहले ही हो चुका है क्योंकि वर और वधू अर्थात् परमात्मा और आत्मा, एक ही घर में यानी एक ही शरीर में निवास करते हैं। दुःख की बात यही है कि एक घर में रहते हुए भी आत्मा को अब तक परमेश्वररूपी पति के दर्शन नहीं हो सके। विरहिणी आत्मा की पुकार का चित्रण कबीर साहिब ने इस करुण विरह गीत में किया है।

वै दिन कब आबैंगे भाइ।

जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ॥ टेक॥

हौं जाँनूँ जे हिल मिलि खेलूँ, तन मन प्रॉन समाइ।

या काँमनाँ करौ परपूरन, समरथ हौं राँम राइ॥

माँहि उदासी माधौ चाहै, चितवत रैन बिहाइ।

सेज हमारी स्यंघ¹ भई है, जब सोऊँ तब खाइ॥

यहु अरदास दास की सुँनिये, तन की तपति बुझाइ।

कहै कबीर मिलै जे साँई, मिलि करि मंगल गाइ॥⁽⁴⁷⁾

कब प्रिय घर आवै

इन पदों में प्रभु-मिलाप के लिए व्याकुल प्रेमी भक्त की वेदना का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि सच्चा भक्त केवल प्रभु-मिलाप के लिए आतुर रहता है। उसके हृदय में किसी भी प्रकार की सांसारिक कामना नहीं रहती।

1. सिंह

सो मेरा रामँ कबैं घरि आवै, ता देखे मेरा जिय सुख पावै॥ टेक॥

बिरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूँ होइ सराई¹॥

निस बासुर² मन रहै उदासा, जैसैं चातिग नीर पियासा॥

कहै कबीर अति आतुरताई, हमकों बेगि³ मिलौ राँम राई॥⁽⁴⁸⁾

बालम आओ हमारे गेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे॥ टेक॥

सब कोइ कहै तुम्हारी नारी, मो को यह संदेह रे।

एकमेक हूँ सेज न सोवै, तब लग कैसो सनेह रे॥

अन्न न भावै नींद न आवै, गृह बन धरै न धीर रे।

ज्यों कामी को कामिनि प्यारी, ज्यों प्यासे को नीर रे॥

है कोइ ऐसा परउपकारी, पिय से कहै सुनाय रे।

अब तो बेहाल कबीर भये हैं, बिन देखे जिउ जाय रे॥⁽⁴⁹⁾

झूठे मार्गदर्शक

कबीर साहिब इस पद में पति से बिछुड़कर परदेस को गई हुई पत्नी का दृष्टांत देते हैं जो स्वदेश लौटकर पति से मिलना चाहती है। पत्नी ने ऐसे व्यक्ति को अपना मार्गदर्शक चुना है जो दावा करता है कि वह बीच में आनेवाले बीहड़ जंगलों में से उसके पति के देश का रास्ता जानता है। परंतु शाम हो गई है, गहरे बादल घिर आए हैं और घने जंगल में खुद मार्गदर्शक ही रास्ता भूल गया है। पत्नी जो चार तहों वाला कंबल सर्दी आदि से बचने के लिए अपने मार्गदर्शक के आदेश से साथ ले जा रही थी, वह वर्षा से भीगकर प्रतिक्षण भारी होने लगा है।

यहाँ पत्नी परमात्मारूपी पति से बिछुड़ी हुई आत्मा है। विद्वान, पुरोहित, धर्मगुरु आदि वे मार्गदर्शक हैं जो प्रभुप्राप्ति के मार्ग को भली प्रकार जानने का दावा करते हैं, परंतु ये सब ही वाद-विवाद, पठन-पाठन, कर्मकांड और अन्य बाहरमुखी साधनों के घने जंगल में भटक रहे हैं।

1. शीतल 2. दिन 3. शीघ्रता से

संदेह और शंका के बादल घिर आए हैं तथा यौवन की दोपहर, वृद्धावस्था और दुर्बलता की शाम में बदल रही है। तरह-तरह के साधनों वाली बाहरमुखी भक्ति का कंबल मार्ग में सहायता देने के बजाय कर्मों का बोझ बढ़ा रहा है अर्थात् इन क्रियाओं से प्रभु की प्राप्ति होने के बदले कर्मों का बंधन और दृढ़ होता जा रहा है। आत्मा, जो अपने मूल निर्मल स्वरूप में (कर्मों का) फूल जितना भार भी नहीं सह सकती थी, वह कर्मकांड आदि क्रियाओं के द्वारा कर्मों के बोझ को बढ़ाकर उनके भार से दबी जा रही है।

उनही¹ बदरिया परिगै² साँझा, अगुवा³ भूला बन खँड माँझा⁴।
पिय अंते⁵ धन⁶ अंते रहई, चौपरि कामरि⁷ माथे गहई॥
फुलवा भार न लै सकै, कहै सखिन सो रोए।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होए॥⁽⁵⁰⁾

घट भीतर पाया

परमात्मा का साक्षात्कार कर लेनेवाले साधक के आनंद का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि उसने प्रभु को अपने शरीर के अंदर ही प्राप्त किया है। जैसे सुनार सोने के खरेपन को कसौटी पर परखता है, उसी प्रकार अभ्यासी की आत्मा भजन-सुमिरन के द्वारा निर्मल होकर प्रभु की परख के योग्य हो गई है। अब उसे यह बोध हो गया है कि प्रभु की बाहर तलाश करने में उसने अनेक जन्म नष्ट कर दिए। अब रूहानी अभ्यास के द्वारा मन को वश में करके, मन-माया के देश को पार करके, निर्मल रूहानी मंडलों में पहुँचकर उसने प्रभु का परिचय प्राप्त कर लिया है।

अब घटि प्रगट भये राँम राई, साधि⁸ सरीर कनक⁹ की नाँई॥ टेक॥
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा, सोधि सरीर भयो तन सारा॥

1. घिर आई 2. पड़ गई 3. मार्गदर्शक 4. बीच में 5. दूसरी जगह

6. पत्नी 7. चौपरि कामरि=चार तह वाला कंबल 8. साधक का

9. सोना

उपजत उपजत बहुत उपाई, मन थिर भयो तबै तिथि¹ पाई॥
बाहरि खोजत जनम गँवाया, उनमनीं² ध्यान घट भीतरि पाया॥
बिन परचै तन काँच कथीरा, परचै³ कंचन भया कबीरा॥⁽⁵¹⁾

जहाँ जाऊँ तहाँ राम

लोग जिस परमात्मा को अगम, अपार और अगोचर कहते हैं, उसे गुरु के बताए अभ्यास के द्वारा साक्षात् देखा जा सकता है। लोग जिसको बाहर जगह-जगह ढूँढ़ते फिरते हैं, वह सारे संसार में व्याप्त है। परंतु नेत्रों के पीछे और थोड़ा ऊपर के वज्र-कपाट खोलने के बाद ही वह परमात्मा अंदर और बाहर प्रकट होता है। कबीर साहिब कहते हैं कि मैंने नाम के अभ्यास के द्वारा परमपद को प्राप्त कर लिया है और सब प्रकार के कष्ट और सब विकारों से छुटकारा पा लिया है।

दूसरे पद में कबीर साहिब बताते हैं कि जब एक बार अंतर में आत्मिक आनंद का रस प्राप्त हो जाता है तो मन स्वयं ही बाहर सांसारिक पदार्थों के पीछे भागना छोड़ देता है। अब मन पर अंकुश लगाने की आवश्यकता नहीं रहती, वह मित्र बन जाता है। कबीर साहिब कहते हैं कि वह एक है, लोग उसे भिन्न-भिन्न भावों से देखते हैं। वह जाति रहित अनेक जातियों में दीखता है। जब तक मन शरीर के मोह में रमा हुआ था, तब तक वह संसार में द्वैत में फँसा हुआ था। अंतर में उसका ज्ञान, उसका दर्शन हो जाने पर सर्वत्र वह एक परमात्मा ही रह गया है।

राँम राइ तूँ ऐसा अनभूत⁴ अनूपम, तेरी अनभै⁵ थैं निस्तरिये॥
जे तुम्ह कृपा करौ जगजीवन, तौँ कतहुँ भूलि न परिये॥ टेक॥
हरि पद दुरलभ अगम अगोचर, कथिया गुर गमि⁶ बिचारा।
जा काँरन हम ढूँढत फिरते, आधि⁷ भरयो संसारा॥

1. स्थिरता 2. अपने आप में मग्न 3. पहचान 4. असाधारण 5. अनुभव
6. पहुँच, भेद 7. है

प्रगटी जोति कपाट खोलि दिये, दगधे¹ जंम दुख द्वारा।
 प्रगटे बिस्वनाथ जगजीवन, मैं पाये करत बिचारा॥
 देख्यत एक अनेक भाव है, लेखत² जात³ अजाती⁴।
 बिहकौ देव तजि दूढैंत फिरते, मंडप पूजा पाती॥
 कहै कबीर कैरुणामय किया, देरी गलियाँ बहु विस्तारा⁵॥
 राँम कै नाँव परम पद पाया छूटै बिघन बिकारा॥⁽⁵²⁾

रे मन जाहि जहाँ तोहि भावै, अब न कोई तेरे अंकुस लावै॥ टेक॥
 जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ राँमा, हरि पद चीन्ह कियौ विश्रामा।
 तन रंजित⁶ तब देखियत दोई, प्रगट्यौ ग्याँन जहाँ तहाँ सोई॥
 लीन निरंतर बपु बिसराया, कहै कबीर सुख सागर पाया॥⁽⁵³⁾

मन की बान न जाई

नीचे लिखे चार पदों में प्रेम को प्रभुप्राप्ति का एकमात्र साधन बताया गया है।

पहले पद में कबीर साहिब कहते हैं कि बाहरमुखी पूजा-पाठ और भेष धारण करने का क्या लाभ है यदि मनुष्य प्रभु से मिलाप के मार्ग का भेद नहीं जानता। जिस प्रकार उद्दंड या शरारती पशु के गले में काठ का कुंदा लटकाने पर भी उसकी आदत नहीं जाती, इसी प्रकार नाना प्रकार के भेष धारण करने और कर्मकांड को अपनाने से मन की बुरी आदतें दूर नहीं होतीं। यदि हृदय में सच्ची भक्ति और प्रीति न हो तो बाहर आँसू बहाने का दिखावा व्यर्थ है और यदि भीतर मैल भरी हुई है तो बाहर के स्नान आदि से क्या लाभ?

दूसरे पद में भी कबीर साहिब बाहर के दिखावे के स्थान पर सच्चे प्रेम की महिमा करते हैं। आपका कहना है कि सच्चा प्रेमी अहं से

छुटकारा पा लेता है तथा अपने प्रेम तथा भक्ति के फलस्वरूप प्रभु से मिलकर उसी का रूप हो जाता है।

तीसरे पद में यह बताया गया है कि केवल पुस्तकों के ज्ञान से मनुष्य सच्चा आंतरिक अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता और बिना अनुभव के पुस्तकें अंधे के लिए दर्पण के समान हैं। कोरा किताबी ज्ञान रखनेवाले लोग उस करछी या चम्मच के समान हैं जो स्वादिष्ट भोजन परोसते हैं पर उसका स्वाद नहीं जानते। कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य बाहर चाहे आकाश-पाताल तक खोज ले, उसे वह प्रभु नहीं मिल सकता जो अहंकार के दूर होने पर ही मिलता है। प्रभु के प्रति प्रेम तो नाम के अभ्यास से अपने अंदर से उपजता है।

चौथे पद में भी कबीर साहिब बाहरी भक्ति या दिखावटी भक्ति करने के स्थान पर प्रभु के लिए सच्चा प्रेम जाग्रत करने का उपदेश देते हैं। भक्ति का ध्येय प्रभु को रिझाना है, दुनिया की वाहवाही लूटना नहीं। एक पत्नी का उदाहरण देते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि पत्नी चाहे कितना ही बनाव-शृंगार कर ले तथा अपने पड़ोसियों की प्रशंसा प्राप्त कर ले परंतु अगर उसका पति से प्रेम न हो और उसका तन, मन, जीवन उसके लिए समर्पित न हो तो वह पति को प्यारी नहीं हो सकती।

कहा भयौ तिलक गरैं जपमाला, मरम न जानैं मिलन गोपाला॥ टेक॥
 दिन प्रति पसू करै हरिहाई¹, गरैं² काठ बाकी बाँनि³ न जाई॥
 स्वांग⁴ सेत करणी मनि काली, कहा भयौ गलि माला घाली॥
 बिन ही प्रेम कहा भयौ रोये, भीतरि मैल बाहरि का धोये॥
 गल गल स्वाद भगति नहीं धीर, चीकन⁵ चँदवा⁶ कहै कबीर॥⁽⁵⁴⁾

ते हरि आवेहि किहि काँमाँ, जे नहीं चीन्है आतम राँमाँ॥ टेक॥
 थोरी भगति बहुत अलंकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा॥

1. जल गया 2. दिखाई देता है 3. जाति 4. जाति रहित
 5. बहु विस्तारा=भाव अनेक 6. रँगा हुआ

1. परेशान 2. गले में 3. आदत 4. रूप धारण करना
 5. एक सूती कपड़ा जिस पर कढ़ाई की गई हो। 6. चँदोवा

भाव न चीन्हें हरि गोपाला, जानि क अरहट¹ कै गलि माला॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगता भगवंत समानौ॥⁽⁵⁵⁾

अंध सो दर्पन बेद पुराना, दर्बी² कहा महारस जाना।
जस खर चंदन लादेउ भारा, परिमल³ बास न जान गवौरा॥
कहहिं कबीर खोजै असमाना, सो न मिला जो जाय अभिमाना॥⁽⁵⁶⁾

जौ पै पिय के मनि नाही भाये, तौ का परोसनि कै हुलराये⁴॥ टेक॥
का चूरा⁵ पाइल झमकायें, कहा भयो बिछुवा ठमकायें॥
का काजल स्यंदूर कै दीयें, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयें॥
अंजन⁶ मंजन⁷ करै ठगौरी⁸, का पचि मरै निगौड़ी⁹ बौरौ॥
जौ पै पतिव्रता ह्वै नारी, कैसे ही रहैं सो पियहिं पियारी।
तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥⁽⁵⁷⁾

मरन है मीठा

मृत्यु के समय आत्मा शरीर के नौ द्वारों से सिमटकर आँखों के पीछे आ जाती है तथा यहाँ से शरीर को निर्जीव छोड़कर निकल जाती है। जिन्हें संतों से शब्द का भेद मिल गया है, वे अपने रूहानी अभ्यास में मृत्यु की इसी घाटी में से गुज़रकर आंतरिक मंडलों में प्रवेश कर जाते हैं। इस रूहानी अभ्यास में आत्मा वापस स्थूल शरीर में आ जाती है। अभ्यास में ऐसी अवस्था प्राप्त करने को संतों ने 'जीते-जी मरना' कहा है।

पहले पद में कबीर साहिब कहते हैं कि जो गुरु की कृपा से जीते-जी मरने के अभ्यास में सफल हो जाते हैं, वे मृत्यु के भय से मुक्त हो जाते हैं। उनके लिए कर्ता तथा कार्य की भावना, माया, अहंकार, मान, अभिमान तथा सब प्रकार के भ्रम दूर हो जाते हैं। उनका कर्ता होने का

1. रहट 2. करछी 3. सुगंध 4. प्रशंसा करने से 5. चूड़ा 6. सुरमा
7. स्नान 8. मोहित करनेवाली 9. अभागिन

भाव धीरे-धीरे मिट जाता है; वे अपने आप को प्रभु के हाथों की कठपुतली-मात्र मानने लगते हैं, एक स्वतंत्र कर्ता मानना बंद कर देते हैं। उनकी कोई भी करनी, उनकी करनी न रहकर प्रभु की करनी बन जाती है क्योंकि वह प्रभु की इच्छा के अनुसार की गई होती है। ऐसे व्यक्ति मृत्यु पर विजय प्राप्त करके अमर हो जाते हैं।

दूसरे पद में कबीर साहिब कहते हैं कि मौत से सब डरते हैं पर मौत असल में क्या होती है, इस बात का ज्ञान मुझे गुरु के उपदेश से हुआ। मैं जान गया कि जो अभ्यासी सहजे मरे अर्थात् जीते-जी मरकर सहज अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, वे जन्म-मरण के चक्र से छूट जाते हैं।

जे को मरै मरन है मीठा, गुर प्रसादि जिनहीं मरि दीठा॥ टेक॥
मूवा करता¹ मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी॥
मूवा आपा मूवा माँन, परपंच लेइ मूवा अभिमाँन॥
रामें रमें रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हूवा॥⁽⁵⁸⁾

जिह मरनै सभ जगत तरासिआ²॥ सो मरना गुर सबद प्रगासिआ॥
अब कैसे मरउ मरन मन मानिआ॥ मर मर जाते जिन राम न जानिआ॥
मरनो मरन कहै सभ कोई॥ सहजे मरै अमर होए सोई॥
कहो कबीर मन भया अनंदा॥ गइआ भरम रहिआ परमानंदा॥⁽⁵⁹⁾

घर में झगड़ा

कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य शरीर एक घर के समान है जिसमें घर का मालिक सुख और चैन नहीं पाता क्योंकि घरवाले आपस में झगड़ते रहते हैं। घरवालों में हैं पाँच लड़के (पाँच इंद्रियाँ) और पत्नी के रूप में दुर्मति (मन की दूषित प्रवृत्तियाँ)। प्रत्येक इंद्रिय अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए जीव को अलग-अलग दिशा में खींचती है और दुर्मति उसे

1. कर्ता होने का भाव 2. डराया

संसार के पदार्थों की ओर ले जाती है। जो व्यक्ति पाँचों इंद्रियों तथा दुर्मति को वश में करके शरीररूपी घर में शांति स्थापित कर लेता है, वह सच्चे ज्ञान को प्राप्त करके अपना मनुष्य जन्म सफल कर लेता है।

संतो घर में झगरा भारी।

राति दिवस मिलि उठि उठि लागैं, पाँच ढोटा¹ एक नारी॥

न्यारो न्यारो भोजन चाहें, पाँचो अधिक सवादी।

कोउ काहु को हटा² न माने, आपुहि आप मुरादी³॥

दुर्मति केर दोहागिन⁴ भैटै, ढोटेहि चाप चपेरे⁵।

कहैं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि⁶ निबेरे⁷॥⁽⁶⁰⁾

सभी जीव समान

अन्य सब संतों के समान कबीर साहिब भी मांसाहार का निषेध करते हैं। कई लोगों की धारणा है कि किसी विशेष पशु का मांस खाना ही अनुचित है परंतु अन्य पशुओं का मांस खाने में कोई दोष नहीं। कबीर साहिब कहते हैं कि सभी प्राणियों का जीवन समान है और सब प्रभु के ही बनाए हुए हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सबका रक्त एक ही रंग का है और सभी को अपने प्राण प्यारे हैं। परंतु मनुष्य इतना पतित हो गया है कि प्रभु के सिरजे हुए सभी प्राणियों को अपना आहार बना लेता है जबकि मनुष्य के मांस को गीदड़ भी नहीं खाते। मनुष्य को याद रखना चाहिए कि अपनी ज़बान के स्वाद के लिए वह जो भी पाप करता है, उसके फलस्वरूप उसे बार-बार जन्म लेकर दुःख भोगना पड़ता है।

जस मासु पसु की तस मासु नर की, रुधिर रुधिर यक सारा जी।

पसु की मास भच्छे सब कोई, नरहि न भच्छे सियारा जी॥

ब्रह्म कुलाल मेदिनी¹ भइया, उपजि बिनसि कित गइया जी।

मासु मछरिया तैं पै खइया, जो खेतन में बोइया जी॥

माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जिव देइया जी।

जो तोहरी है साँचा देवी, खेत चरत क्यों न लेइया जी॥

कहैं कबीर सुनो हो संतो, राम नाम नित लेइया जी।

जो कछु कियेउ जिभ्या के स्वारथ, बदल पराया देइया जी॥⁽⁶¹⁾

मुक्ति नहीं बिन नाम

विभिन्न प्रकार की बाहरमुखी भक्ति का ज़िक्र करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि इससे उस नाम की प्राप्ति नहीं हो सकती जो मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। प्रभु-मिलाप के इच्छुक को चाहिए कि सतगुरु से नाम प्राप्त करे जो सच्चे ज्ञान का मूल आधार और जन्म-मरण से छुटकारे का साधन है।

ऐसे देखि चरित मन मोह्यौ² मोर,

ताथैं निस बासुरि गुन रमौं तेर॥ टेक॥

इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमें उदास, इक नगन निरंतर रहै निवास॥

इक जोग जुगुति तन हूँहिं खीन³, ऐसे राँम नाँम सौंगि रहै न लीन॥

इक हूँहिं दीन एक देहि दाँन, इक करें कलापी⁴ सुरा पाँन॥

इक तंत मंत ओषध बाँन⁵, इक सकल सिध राखैं अपाँन⁶॥

इक तीर्थ ब्रत करि काया जीति, ऐसैं राँम नाँम सूँ करें न प्रीति॥

इक धोम⁷ धोटि तन हूँहिं स्यान⁸, यूँ मुक्ति नहीं बिन राँम नाँम॥

सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यौ अनभै बिसतार॥

जुरा मरण थै भये धीर, राँम कृपा भई कहि कबीर॥⁽⁶²⁾

1. बालक, बच्चे 2. मना करना 3. इच्छावाले 4. अभागिन 5. चंचल
6. झगड़ा 7. मिटाए

1. धरती, मिट्टी 2. मोहित 3. दुर्बल 4. मोर मुकुट वाले साधु
5. बाण 6. साँस की सिद्धि 7. धुआँ 8. काला

बिन परिचय मर्म न पावै

लोग प्रभु के नाम की चर्चा करते रहते हैं परंतु यह नहीं जानते कि वास्तव में नाम क्या है। कबीर साहिब कहते हैं कि नाम की ऊपरी तौर पर की गई चर्चा मुझे नहीं सुहाती क्योंकि केवल बातों से नाम का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। नाम तो अंतर में देखने, सुनने और अनुभव करने की वस्तु है। वह न बोला जा सकता है और न बाहरी आँखों से देखा जा सकता है। नाम को समझने के लिए अंतर में उसका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

है कोई राँम नाँम बतावै, बस्तु अगोचर मोहि लखावै॥ टेक॥
राँम नाँम सब कोई बखानै, राँम नाँम का मरम न जानै॥
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावैं तौ सुख पावै॥
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनाँ मरम को पावै॥⁽⁶³⁾

सार शब्द

मनुष्य को शब्द के अभ्यास की प्रेरणा देते हुए कबीर साहिब बताते हैं कि शब्द से संतों का क्या अभिप्राय है। वेद-पुराण, ऋषि-मुनि शब्द की चर्चा तो करते हैं परंतु संतों के सार शब्द का भेद नहीं जानते। गुरु से उस शब्द का भेद पाकर और उस शब्द को सुनकर ही मनुष्य सच्चे अर्थों में शिष्य बनता है। अंदर जाने पर शिष्य को ज्ञान हो जाता है कि गुरु और शिष्य दोनों का वास्तविक रूप शब्द ही है। संतों के सार शब्द और साधारण शब्द में बहुत भेद है। वेद और पुराण भी सार शब्द की चर्चा करते हैं और वही उन सबके महत्त्व का आधार है। कबीर साहिब कहते हैं कि उस सार शब्द ने ही सारे संसार की रचना की है और शास्त्र आदि उस स्थान के बारे में अनजान हैं जहाँ से वह शब्द आ रहा है।

साधो सब्द साधना कीजै।
जेहिं सब्द तें प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै॥ टेक॥
सब्दहिं गुरू सब्द सुनि सिष भे, सब्द सो बिरला बूझै।

सोई सिष्य सोई गुरू महातम¹, जेहिं अंतर गति सूझै॥
सब्दै बेद पुरान कहत है, सब्दै सब ठहरावै।
सब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै।
सब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैं, सब्द कहै अनुरागी।
षट दरसन सब सब्द कहत है, सब्द कहै बैरागी॥
सब्दै माया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा।
कहैं कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा॥⁽⁶⁴⁾

सच्चा गुरु

इस पद में कबीर साहिब संतों की शिक्षा की कुछ मूल बातें समझाते हैं। परमात्मा शरीररूपी घर के अंदर है और अंदर ही मिलता है। लोग उसे बाहर जंगलों-पहाड़ों में ढूँढ़ते हैं परंतु वहाँ भी मन की चंचलता और कल्पनाएँ पीछा नहीं छोड़तीं। सतगुरु शिष्य के मन पर से भ्रम का परदा हटाकर उसे अपने घर यानी शरीर के अंदर ही परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय बताते हैं। वह अनहद शब्द के अभ्यास की युक्ति सिखाते हैं जिसके द्वारा मन शरीर के नौ द्वारों में से निकलकर तीसरे तिल पर ध्यानमग्न हुआ अंत में त्रिकुटी में पहुँचकर अपने स्रोत ब्रह्म में समा जाता है। फिर मन से मुक्त हुई अभ्यासी की आत्मा सहज अवस्था अर्थात् अपनी मूल अवस्था प्राप्त कर लेती है यानी प्रभु को पा लेती है। कबीर साहिब कहते हैं कि जो महात्मा मनुष्य को घर के अंदर ले जाकर उस अलख प्रभु से मिला दे, वही सच्चा गुरु है।

अबधू² भूले को घर लावै, सो जन हम को भावै॥ टेक॥
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै।
बन के गये कलपना उपजै, तब धौ³ कहाँ समावै॥
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।

सहज सुत्र में रहै समाना, सहज समाधि लगावै॥
 उनमुनि¹ रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै।
 सुरत निरत सों मेला करिके, अनहद नाद बजावै॥
 घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही बस्तु मिलावै।
 कहैं कबीर सुनो हो अबधू, ज्यों का त्यों ठहरावै॥⁽⁶⁵⁾

कौन भले कौन मंदे

परमात्मा एक है, उसने सब प्राणियों को उत्पन्न किया है और वह सारी सृष्टि में व्याप्त है। सब जीव एक ही मिट्टी से बने हुए भाँति-भाँति के घड़े हैं और सबमें उसी प्रभु का नूर मौजूद है। संत कबीर कहते हैं कि जब सब प्राणी एक ही नूर से पैदा हुए हैं तो उनमें से कौन अच्छा है और कौन बुरा? मिट्टी के इन बर्तनों में कोई गुण या दोष नहीं है, वे तो वैसे ही हैं जैसा बनानेवाले कुम्हार ने उन्हें बनाया है। संसार में सब कुछ उस प्रभु के हुक्म से हो रहा है। जो उसके हुक्म के भेद को समझ लेता है, वह उस एक को जान लेता है, वही उसका सच्चा बंदा, सच्चा भक्त है। अंत में कबीर साहिब कहते हैं कि गुरु ने मुझे वह मधुर रस दिया है जिसे पीकर मेरे सब संदेह नष्ट हो गए हैं और मुझे सब जीवों में परमात्मा दिखाई देने लगा है।

अवल² अलह नूर उपाइआ कुदरत के सभ बंदे॥
 एक नूर ते सभ जग उपजिआ कउन भले को मंदे॥
 लोगा भरम न भूलहो भाई॥
 खालिक³ खलक⁴ खलक मह खालिक पूर रहिओ सब ठाई॥
 माटी एक अनेक भांत कर साजी साजनहारै॥
 ना कछु पोच⁵ माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै॥

1. अपने आप में मन 2. अव्वल, सबसे पहले 3. सृष्टि को रचनेवाला
 4. सृष्टि 5. दोष

सभ मह सचा एको सोई तिस का कीआ सभ कछु होई॥
 हुकम पछानै सो एको जानै बंदा कहीऐ सोई॥
 अलह अलख न जाई लखिआ गुर गुड़ दीना मीठा॥
 कह कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजन डीठा॥⁽⁶⁶⁾

प्रभु का भय

संसार में मनुष्य कई प्रकार के भय से परेशान रहता है—भविष्य का भय, बीमारी और दुर्घटनाओं का भय, धन और प्रतिष्ठा खो देने का भय और इन सबसे बढ़कर मृत्यु का भय। मनुष्य जन्म-जन्मांतरों से भय से घिरा चला आ रहा है। सभी प्रकार के भय का मूल कारण हौमैं, अहं अर्थात् मैं-मेरी, मेरी-तेरी, की भावना है। संत कहते हैं कि हृदय में प्रभु का सच्चा भय उत्पन्न होने पर हौमैं और सांसारिक भय दूर हो जाते हैं। जब तक यह भावना बनी रहती है, जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। जब इस भावना का स्थान 'सब कुछ प्रभु का है' यह भावना ले लेती है, तब हर कोई प्रभु का ही रूप दिखाई देता है और आवागमन का भय समाप्त हो जाता है।

संतों के अनुसार भय, भाव का आवश्यक अंग है और प्रभु-मिलाप के मार्ग पर दोनों साथ-साथ चलते हैं। प्रभु का भय साधारण प्रकार के भय से अलग होता है। वास्तव में प्रेमी भक्त को यह चिंता होती है कि प्रियतम उसके तन, मन और वचन के द्वारा जान-बूझकर या अनजाने में किए गए किसी भी कार्य से अप्रसन्न न हो जाए। उसके लिए प्रियतम की प्रसन्नता ही सब कुछ होती है और वह प्रियतम की ज़रा-सी नाराज़गी की कल्पना-मात्र से भयभीत हो जाता है। ऐसे निर्मल भय के आगे दुनिया के सब डर दूर हो जाते हैं।

रूहानी प्रेम अपने आप को परमात्मा पर न्योछावर करने का नाम है। दुनियावी प्रेमी से विपरीत प्रभु का प्रेमी अपने प्रियतम से कोई कामना नहीं करता, उसका ध्यान पूरी तरह उसमें लगा रहता है और उसका ध्येय सिर्फ प्रियतम की खुशी प्राप्त करना होता है। उसे हमेशा खयाल रहता है कि

उसकी किसी भूल-चूक से प्रियतम अप्रसन्न न हो जाए। संसार के तरह-तरह के भय से मुक्त होते हुए भी सच्चे भक्त के हृदय में अपने प्रभु का डर बना रहता है। यह डर इस बात का नहीं होता कि उसे अपनी गलती के लिए सज़ा दी जाएगी बल्कि डर यही है कि कोई बात प्रियतम को बुरी न लग जाए। ऐसा भय सच्चे प्रेम का ही अंग है और प्रेम को तथा भक्ति-भावना को दृढ़ बनाने में सहायक होता है। कबीर साहिब अपने एक अन्य पद में भी कहते हैं, भै बिच भाउ भाए कोऊ बूझह हर रस पावै भाई॥⁽⁶⁷⁾ अर्थात् भय में ही प्रेम है और जो ऐसे (भयमिश्रित) प्रेम का अनुभव कर लेता है, वह हरि से मिलाप का आनंद प्राप्त करता है।

नीचे दिए जा रहे पदों में कबीर साहिब ने यही विचार व्यक्त किए हैं।

अब का डरौं डर डरहि समौनाँ, जब थैं मोर तोर पहिचौनाँ॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हा॥ टेक॥
अगम निगम¹ एक करि जाँनाँ, ते मनवाँ मन मौहिं समाना॥
जब लग ऊँच नीच करि जाँनाँ, ते पसुवा भूले भ्रम नाँनाँ॥
कहि कबीर मैं मेरी खोई, तबहि राँम अवर नहीं कोई॥⁽⁶⁸⁾

साच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय॥⁽⁶⁹⁾

भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस² रीति॥
भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय॥
डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार॥⁽⁷⁰⁾

विविध शब्द

मोको कहाँ दूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में॥ टेक॥
ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकान्त निवास में।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काशी कैलाश में॥
ना मैं जप में ना मैं तप में, ना मैं बरत उपास में।
ना मैं क्रिया कर्म में रहता, नहीं योग संन्यास में॥
नहीं प्राण में नहीं पिंड में, न ब्रह्माण्ड अकाश में।
ना मैं भृकुटि भँवर गुफा में, नहिं तम नहिं परकाश में॥
खोजी होय तुरत मिल जाऊँ, एक पल की हि तलाश में।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥⁽¹⁾

एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक, दूहूँ नहीं नेरा¹॥ टेक॥
राखूँ ब्रत न माह रमजाँनाँ, तिसही सुमिरूँ जो रहै निदाँनाँ²।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै नमसकारूँ॥
नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाँण्या तौ का दूजा॥
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा॥⁽²⁾

भाई कोई सतगुरु संत कहावै। नैनन अलख लखावै॥ टेक॥
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेस दृढ़ावै।
प्राण-पूज्य किरिया³ तें न्यारा, सहज समाधि सिखावै॥...
करम करै निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा बिलास⁴ त्रास नहिं मन में, भोग में जोग जगावै॥

धरती त्यागि अकासहुँ¹ त्यागै, अधर² मड़इया³ छावै।
सुन्न सिखर⁴ के सार सिला पर, आसन अचल जमावै॥
भीतर रहा सो बाहर देखै, दूजा दृष्टि न आवै।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागवन मिटावै॥⁽³⁾

नाम सुमिरि पछितायगा॥ टेक॥
पापी जियरा लोभ करतु है, आज काल उठि जायगा॥
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायगा।
धन जोबन का गर्ब न कीजै, कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आय केस गहि पटकै, ता दिन कछु ना बसायगा⁵।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्ही, तो मुख चोटा खायगा॥
धर्मराय जब लेखा माँगै, क्या मुख लेके जायगा।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, साध संग तरि जायगा॥⁽⁴⁾

गुरु से लगन कठिन है भाई।
लगन लगे बिन काज न सरिहै, जीव प्रलय होइ जाई॥ टेक॥
जैसे पपिहा प्यासा बुँद का, पिया पिया रटि लाई।
प्यासे प्राण तलफ दिन राती, और नीर ना भाई॥
जैसे मिरगा सब्द सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै औ प्राण दान दे, तनिको नाहिं डेराई॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, पिय की राह मन भाई।
पावक देख डरे वह नाहीं, हँसत बैठ सरा⁶ माई।
दो दल सनमुख आन जुड़े हैं, सूर⁷ लेत लड़ाई।
टूक टूक होइ गिरे धरनि पर, खेत छोड़ि नहिं जाई॥
छोड़ो तन अपने की आसा, निर्भय हैं गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, नाहिं तो जनम नसाई॥⁽⁵⁾

1. भाव त्रिकुटी का आकाश 2. बीच में 3. झोपड़ी 4. सुन्न सिखर=आध्यात्मिक जगत का सबसे ऊँचा आकाश 5. वश में होगा 6. चिता 7. वीर

ना जानें तेरा साहेब कैसा है॥ टेक॥
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर¹ बाजै, सो भी साहेब सुनता है॥
पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी², सो भी साहेब लखता है॥
ऊँचा नीचा महल बनाया, गहिरी नेंव जमाता है।
चलने का मनसूबा³ नाहीं, रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, गाड़ि जमीं में धरता है।
जिस लहना है सो लै जैहें, पापी बहि बहि मरता है॥...
हीरा पाय परख नहिं जानै, कौड़ी परखन करता है।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, हरि जैसे को तैसा है॥⁽⁶⁾

तह पावस⁴ सिंधु धूप नही छहीआ तह उतपत परलउ नाही॥
जीवन मिरत न दुख सुख बिआपै सुन समाध दोऊ तह नाही॥
सहज की अकथ कथा है निरारी॥
तुल⁵ नही चढ़ै जाए न मुकाती⁶ हलुकी लगै न भारी॥
अरध उरध दोऊ तह नाही रात दिनस तह नाही॥
जल नही पवन पावक⁷ फुन⁸ नाही सतगुर तहा समाही॥
अगम अगोचर रहै निरंतर गुर किरपा ते लहीऐ॥
कहो कबीर बल जाउ गुर अपुने सतसंगत मिल रहीऐ॥⁽⁷⁾

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले॥ टेक॥
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार बार वा को क्यों खोले॥
हलकी थी जब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले॥
सुरत कलारी⁹ भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले॥

1. नूपुर, घुँघरू 2. कैंची 3. इरादा 4. वर्षा ऋतु 5. तराजू 6. अंत होना 7. आग 8. पुनः 9. मदिरा पीनेवाली

हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले॥
तेरा साहेब है घट माहीं, बाहर नैना क्यों खोले॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले¹॥⁽⁸⁾

गुरू ने मोहिं दीन्ही अजब जड़ी॥ टेक॥
सो जड़ी मोहिं प्यारी लगतु है, अमृत रसन भरी॥
काया नगर अजब इक बैंगला, ता में गुप्त धरी॥
पाँचों नाग पचीसों नागिन, सूँघत तुरत मरी॥
या कारे² ने सब जग खायो, सतगुर देख डरी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, ले परिवार तरी॥⁽⁹⁾

ऋतु फागुन नियरानी, कोइ पिया से मिलावे॥ टेक॥
सोइ तो सुँदर जाके पिय को ध्यान है, सोइ पिया के मन मानी।
खेलत फाग अंग नहिं मोड़े, सतगुर से लिपटानी॥
इक इक सखियाँ खेल घर पहुँचीं, इक इक कुल अरुझानी³।
इक इक नाम बिना बहकानी, हो रही ऐँचा तानी⁴॥
पिया को रूप कहाँ लग बरनों, रूपहि माहिं समानी॥
जो रँग रँग सकल छबि छाके, तन मन सभी भुलानी॥
यों मत जाने यहि रे फाग है, यह कछु अकथ कहानी॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह गति बिरले जानी॥⁽¹⁰⁾

हमन⁵ हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहें आज्ञाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इतिजारी क्या॥
खलक⁶ सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है।

1. ओट में 2. काल 3. उलझना 4. ऐँचा तानी=खींचा-तानी 5. हमारा
6. आम लोग

हमन गुर नाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या॥
न पल बिछुड़ें पिया हम से, न हम बिछुड़ें पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या॥
कबीरा इश्क का माता¹, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या॥⁽¹¹⁾

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥ टेक॥
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में॥
भला बुरा सब को सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी² में॥
हाथ में कूँड़ी बगल में सोंटा, चारों दिसा जगीरी में।
आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिलै सबूरी में॥⁽¹²⁾

साधो सहज समाधि भली।
गुर प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली॥
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा॥
कहौं सो नाम सुनौं सो सुभिरन, खावैं पियौं सो पूजा॥
गिरह³ उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा॥
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हौंस हौंस, सुन्दर रूप निहारौं॥
सब्द निरन्तर से मन लागा, मलिन बासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी⁴ लागी॥
कहैं कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गई।
दुख सुख से जोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई॥⁽¹³⁾

1. मस्त हुआ 2. संतोष 3. गृह 4. ध्यान

सुनता नहीं धुन की खबर अनहद का बाजा बाजता।
 रसमंद मंदिर बाजता बाहर सुने तो क्या हुआ॥
 गाँजा अफीम और पोसता भाँग और सराबें पीवता।
 इक प्रेम रस चाखा नहीं अमली हुआ तो क्या हुआ॥
 कासी गया और द्वारिका तीरथ सकल भरमत फिरै।
 गाँठी न खोली कपट की तीरथ गया तो क्या हुआ॥
 पोथी किताबें बाँचता औरों को नित समुझावता।
 त्रिकुटी महल खोजै नहीं बक बक मरा तो क्या हुआ॥
 काजी किताबें खोजता करता नसीहत और को।
 महरम नहीं उस हाल से काजी हुआ तो क्या हुआ॥
 सतरंज चौपड़ गंजिफा¹ इक नर्द² है बदरंग की।
 बाजी न लाई प्रेम की खेला जुआ तो क्या हुआ॥
 जोगी दिगम्बर सेवड़ा कपड़ा रँगें रँग लाल से।
 वाकिफ नहीं उस रँग से कपड़ा रँगें से क्या हुआ॥
 मंदिर झरोखे रावटी³ गुल चमन में रहते सदा।
 कहते कबीरा हैं सही घट घट में साहेब रम रहा॥⁽¹⁴⁾

अवधू अच्छरहूँ⁴ सों न्यारा॥ टेक॥
 जो तुम पवना गगन चढ़ावो, करो गुफा में बासा।
 गगना पवना दोनों बिनसैं, कहँ गयो जोग तुम्हारा॥
 गगना मद्धे जोती झलकै, पानी मद्धे तारा।
 घटि गे नीर बिनसि गे तारा, निकर गयो केहि द्वारा॥
 मेरुदंड पर डारि दुलैची⁵, जोगिन तारी लाया।
 सोइ सुमेर पर खाक उड़ानी, कच्चा जोग कमाया॥
 इंगला बिनसै पिंगला बिनसै, बिनसै सुखमनि नाड़ी।
 जब उनमुनि की तारी टूटै, तब कहँ रही तुम्हारी॥
 अद्वैत बैराग कठिन है भाई, अटके मुनिवर जोगी।

अच्छर लौं की गम्म बतावै, सो है मुक्ति बिरोगी¹॥
 कह अरु अकह दोऊ तें न्यारा, सत्त असत्त के पारा।
 कहैं कबीर ताहि लखि जोगी, उतरि जाव भव पारा॥⁽¹⁵⁾

साधो देखो जग बौराना²।
 साँचि कहौ तौ मारन धावै, झूठे जग पतियाना॥ टेक॥
 हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
 आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना॥
 बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी, प्रात करैं असनाना।
 आतम³ छोड़ि पषानै पूजैं, तिन का थोथा ज्ञाना॥
 आसन मारि डिंभ⁴ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
 पीतर⁵ पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त भुलाना॥
 माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
 साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना॥
 घर घर मंत्र जो देत फिरत हैं, माया के अभिमाना।
 गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना॥
 बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ैं किताब कुराना।
 करैं मुरीद कबर बतलावैं, उनहूँ खुदा न जाना॥
 हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
 वह करैं जिबह वो झटका मारैं, आग दोऊ घर लागी॥
 या बिधि हँसत चलत हैं हमको, आप कहावैं स्याना।
 कहै कबीर सुनो भाइ साधो, इन में कौन दिवाना॥⁽¹⁶⁾

क्या माँगों कछु थिर न रहाई, देखत नैन चल्थो जग जाई॥
 इक लख पूत सवालख नाती, जा रावन घर दिया न बाती॥
 लंका सा कोट समुद्र सी खाई, जा रावन की खबर न पाई॥
 सोने के महल रूपे के छाजा, छोड़ि चले नगरी के राजा॥

कोइ करै महल कोई करै टाटी, उड़ि जाय हंस पड़ी रहै माटी॥
आवत संग न जात सँगाती¹, कहा भये दल बाँधे हाथी॥
कहैं कबीर अंत की बारी, हाथ झारि ज्यों चला जुवारी॥⁽¹⁷⁾

जिह सिमरन होए मुकति दुआर॥ जाहे बैकुंठ नही संसार॥
निरभउ कै घर बजावह तूर॥ अनहद बजह सदा भरपूर॥
ऐसा सिमरन कर मन माहे॥ बिन सिमरन मुकति कत नाहे॥
जिह सिमरन नाही ननकार²॥ मुकति करै उतरै बहु भार॥
नमसकार कर हिरदै माहे॥ फिर फिर तेरा आवन नाहे॥
जिह सिमरन करह तू केल³॥ दीपक बांध धरिओ बिन तेल॥
सो दीपक अमरक संसार॥ काम क्रोध बिख काढीले मार॥
जिह सिमरन तेरी गति होए॥ सो सिमरन रख कंठ परोए॥
सो सिमरन कर नही राख उतार॥ गुर परसादी उतरह पार॥
जिह सिमरन नाही तुहि कान⁴॥ मंदर सोवह पटंबर⁵ तान॥
सेज सुखाली बिगसै⁶ जीउ॥ सो सिमरन तू अनदिन पीउ॥
जिह सिमरन तेरी जाए बलाए⁷॥ जिह सिमरन तुझ पोहै न माए⁸॥
सिमर सिमर हर हर मन गाईए॥ इह सिमरन सतगुर ते पाईए॥
सदा सदा सिमर दिन रात॥ ऊठत बैठत सास गिरास॥
जाग सोए सिमरन रस भोग॥ हर सिमरन पाईए संजोग॥
जिह सिमरन नाही तुझ भार॥ सो सिमरन राम नाम अधार॥
कह कबीर जा का नहीं अंत॥ तिस के आगे तंत⁹ न मंत¹⁰॥⁽¹⁸⁾

हरि को नाँम न लेइ गँवारा, का सौचै बारंबारा॥ टेक॥
पंच चोर गढ़ मंझा, गढ़ लूटै दिवस रे संझा॥
जौ गढ़पति¹¹ मुहकम¹² होई, तौ लूटि न सकै कोई॥

1. साथी 2. नकारना 3. खेल 4. मोहताजी, कमी 5. रेशमी वस्त्र
6. प्रसन्न होना 7. कष्ट 8. पोहै...माए=माया स्पर्श नहीं कर सकती
9. तंत्र 10. मंत्र 11. स्वामी 12. दृढ़

औंधियारै दीपक चाहिये, तब बस्त अगोचर लहिये॥
जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रह्या समाई॥
जौ दरसन देख्या चाहिये, तौ दरपन मंजत¹ रहिये॥
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई॥
का पढ़िये का गुनिये, का बेद पुराना सुनिये॥
पढ़े गुनै मति होई, मैं सहजें पाया सोई॥
कहै कबीर मैं जानौं, मैं जानौं मन पतियानौं²॥
पतियानौं जौ न पतीजै, तौ अंधै कूँ का कीजै॥⁽¹⁹⁾

मन रे जब तैं राम कह्यौ, पीछे कहिबे कौ कछु न रह्यो॥ टेक॥
का जोग जगि तप दौनाँ, जौ तै राम नाम नहीं जाँना॥
काँम क्रोध दोऊ भारे, ताथैं गुरु प्रसादि सब जारे॥
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा राम मिले अबिनासी॥⁽²⁰⁾

इब न रहूँ माटी के घर मैं, इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं॥ टेक॥
छिनहर³ घर अरु झिरहर⁴ टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती॥
दसवैं द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी॥
चहूँ दिसि बैठे चारि पहरिया⁵, जागत मुसि गये मोर नगरिया॥
कहै कबीर सुनहु रे लोई⁶, भौनड़⁷ घड़ण सँवारण सोई॥⁽²¹⁾

राँम राइ भई बिकल मति मोरी, कै यहु दुनी दिवानी तेरी॥ टेक॥
जे पूजा हरि नाही भावै, सो पूजनहार चढ़ावै॥
जिहि पूजा हरि भल मानै, सो पूजनहार न जाँनै॥
भाव प्रेम कीं पूजा, ताथैं भयौ देव थैं दूजा॥
का कीजै बहुत पसारा, पूजी जे पूजनहारा॥
कहै कबीर मैं गावा, मैं गावा आप लखावा॥
जो इहि पद माँहि समाना, सो पूजनहार सयौना॥⁽²²⁾

1. साफ़ करना 2. विश्वास 3. दूटा-फूटा 4. जर्जर
5. भाव मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार 6. लोग 7. नाश

राम राइ भई बिगूचनि¹ भारी, भले इन ग्याँनियन थैं संसारी॥ टेक॥
 इक तप तीरथ औगाहैं², इक मानि महातम चौहैं॥
 इक मैं मेरी मैं बीझैं³, इक अहंमेव मैं रीझैं॥
 इक कथि कथि भरम लगावैं, सँमिता⁴ सी बस्त न पावैं॥
 कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन⁵ दीजै॥⁽²³⁾

पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा, आपु अपनपौ जानु न भेदा।
 संध्या सुमिरन और षट कर्मा, ई बहु रूप करै अस धर्मा॥
 गायत्री युग चारि पढ़ाई, पूछहु जाय मुक्ति किन पाई।
 और के छुये लेत हौ छींचा⁶, तुमसे कहहु कौन है नींचा॥
 ईगुन गर्व करो अधिकाई, अतिकै गर्व न होय भलाई।
 जासु नाम है गर्व प्रहारी⁷, सो कस गर्वहि सकै सहारी॥
 कुल मर्यादा खोय के, खोजिन पद निरबान।
 अंकुर बीज नसाय⁸ के, (नर) भये विदेही थान⁹॥⁽²⁴⁾

पंडित बाद बदै¹⁰ सो झूठा।
 राम के कहे जगत गति पावै, खाँड़ कहे मुख मीठा॥
 पावक कहे पाँव जो डाहै¹¹, जल कहे तृखा बुझाई।
 भोजन कहे भूख जो भाजै, तो दुनिया तरजाई॥
 नर के संग सुवा¹² हरि बोलै, हरि प्रताप नहिं जानै।
 जो कबहीं उड़ि जाय जंगल को, तौ हरि सुरति न आनै॥
 बिनु देखे बिनु दरस परस बिनु, नाम लिये का होई।
 धन के कहे धनिक जो होवै, निर्धन रहै न कोई॥
 साँची प्रीति बिषय माया सो, हरि भक्तन को हाँसी।
 कहैं कबीर एक राम भजे बिन, बाँधे जमपुर जासी॥⁽²⁵⁾

1. उलझन, परेशानी 2. नहाते हैं 3. उलझे हुए 4. समभाव
 5. काजल 6. धोना 7. नाश करनेवाला 8. नष्ट करके
 9. स्थान 10. बहस करना 11. जला दे 12. तोता

खसम¹ बिनु तेली को बैल भयो।
 बैठत नहीं साधु की संगत, नाधे² जन्म गयो॥
 बहि बहि³ मरहु पचहु निज स्वारथ, जम के दंड सह्यो।
 धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो॥
 खसमहि छाड़ि बिषय रंग राते, पाप के बीज बयो।
 झूठ मुक्ति नर आस जिवन की, प्रेत को जूठन खायो॥
 लख चौरासी जीव जंतु में, सायर⁴ जात बह्यो।
 कहैं कबीर सुनो हो संतो, स्वान की पूँछ गह्यो॥⁽²⁶⁾

कीओ सिंगार मिलन के ताई॥ हर न मिले जगजीवन गुसाई॥
 हर मेरो पिर हउ हर की बहुरीआ⁵॥ राम बडे मैं तनक लहुरीआ⁶॥
 धन पिर एकै संग बसेरा॥ सेज एक पै मिलन दुहेरा⁷॥
 धन सुहागन जो पीअ भावै॥ कह कबीर फिर जनम न आवै॥⁽²⁷⁾

तन खोजौ नर करौ बड़ाई, जुगति बिना भगति किनि पाई॥ टेक॥
 एक कहावत मुलौं काजी, राम बिना सब फोकटबाजी॥
 नव ग्रिह बाँभण⁸ भणता⁹ रासी, तिनहूँ न काटी जम कौ पासी¹⁰॥
 कहै कबीर यहु तन काचा॥ सबद निरंजन राँम नाँम साचा॥⁽²⁸⁾

कौन मरै कहु पंडित जनाँ, सो समझाइ कहौ हम सनाँ॥ टेक॥
 माटी माटी रही समाइ, पवनै पवन लिया संग लाइ।
 कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनी॥⁽²⁹⁾

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हँम कूँ मिल्या जियावनहारा॥ टेक॥
 अब न मरौं मरनै मन माँना, ते मुए जिनि राँम न जाँना।

1. भाव परमात्मा 2. बैल की तरह जुते हुए 3. कुमार्गी होकर 4. भवसागर में
 5. बहू 6. छोटी 7. कठिन 8. ब्राह्मण 9. कहता है
 10. पाश, फंदा

साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसौंइन पीवै॥
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हँम काहे कूँ मरिहैं।
कहैं कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा॥⁽³⁰⁾

मुलौं कहाँ¹ पुकारै दूरि, राँम रहीम रह्या भरपूरि॥ टेक॥
यहु तौ अलह गूँगा नाही, देखै खलक दुनीं दिल माँहीं॥
हरि गुँन गाइ बंग² मैं दीन्हाँ, काम क्रोध दोऊ बिसमल कीन्हाँ॥
कहै कबीर यह मुलना झूठा, राम रहीम सबनि मैं दीठा॥⁽³¹⁾

मुलौं करि ल्यौ न्याव³ खुदाई, इहि बिधि जीव का भरम न जाई॥ टेक॥
सरजी⁴ आँनैं देह बिनासै, माटी बिसमल कीता⁵।
जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता॥
बेद कतेब कहौ क्यूँ झूठा, झूठा जो न बिचारै।
सब घटि एक एक करि जाँनैं, भीं दूजा⁶ करि मारै॥
कुकड़ी मारै बकरी मारै, हक हक हक करि बोलै।
सबै जीव साँई के प्यारे, उबरहुगे⁷ किस बोलै॥
दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हाँ, उसदा खोज न जाँनाँ।
कहै कबीर भिसति⁸ छिटकाई⁹, दोजग¹⁰ ही मन माँनाँ॥⁽³²⁾

इब तूँ हसि प्रभु मैं कुछ नाँहीं, पंडित पढ़ि अभिमान नसाँहीं¹¹॥ टेक॥
मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हा, तब लग मैं करता नही चीन्हाँ।
कहै कबीर सुनहु नरनाहा¹², नाँ हम जीवत न मूँवाले¹³ माहाँ॥⁽³³⁾

1. क्या 2. बाँग 3. निर्णय 4. प्रभु की रची हुई
5. बिसमल कीता=वध कर दिया 6. खुद से भिन्न 7. छूटोगे
8. बहिस्त 9. छोड़ दिया 10. नरक 11. नष्ट 12. हे प्रभु!
13. मृतक

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूँ सब।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई¹ हो,
कोई कहौ कबीर कहौ राँम राई हो॥ टेक॥
नाँ हम बार² बूढ़ नाही हम, ना हमरै चिलकाई³ हो।
पठए⁴ न जाऊँ अरवा⁵ नहीं आऊँ, सहजि रहूँ हरिआई हो॥
चोढन हमरे एक पछेवरा⁶, लोक बोलै इकताई⁷ हो।
जुलहे तनि बुनि पाँनि⁸ न पावल, फार⁹ बुनी दस ठाँई हो॥
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल, तब हमारौ नाउँ राँम राई हो।
जग मैं देखौं, जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो॥⁽³⁴⁾

माया का रस खाण न पावा, तब लग जम बिलवा है धावा॥ टेक॥
अनेक जतन करि गाड़ि दुराई¹⁰, काहू साँची¹¹ काहू खाई॥
तिल तिल करि यह माया जोरी, चलति बेर तिणौं¹² ज्यूँ तोरी॥
कहै कबीर हूँ ताका दास, माया माँहै रहै उदास॥⁽³⁵⁾

मन रे कागद कीर¹³ पराया।
कहा भयौ ब्यौपार तुम्हारै, कलतर¹⁴ बढै सवाया॥ टेक॥
बड़ै बौहरे¹⁵ साँठो¹⁶ दीन्हाँ, कलतर काढ़यौ खोटै।
चार लाख अरु असी ठीक दे, जनम लिख्यो सब चोटै¹⁷॥
अबकी बेर न कागद कीरयौ, तौ धर्म राई सूँ तूटै।
पूँजी बितड़ि¹⁸ बंदि ले दैहै, तब कहै कौन के छूटै॥
गुरदेव ग्याँनी भयौ लगनियौ, सुमिरन दीन्हाँ हीरा।
बड़ी निसरना¹⁹ नाँव राँम कौ, चढ़ि गयौ कीर²⁰ कबीरा॥⁽³⁶⁾

1. अलग 2. बालक 3. चमकीलापन 4. भेजना 5. बुलाना 6. चादर
7. एकांत-प्रियता 8. मान 9. फटे हुए 10. छिपा दी
11. इकट्ठी की 12. तिनका 13. फाड़ दी 14. रुपया
15. महाजन प्रभु ने 16. पूँजी 17. दंड के रूप में 18. बाँटी गई
19. सीढ़ी 20. कीड़ा

पंडित होइ सु पदहि बिचारै, मूरखि नाँहिन बूझै।
 बिन हाथनि पाँइन, बिन काँननि, बिन लोचन जग सूझै॥ टेक॥
 बिन मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुण गावै।
 आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिरि आवै॥
 बिनहीं तालाँ ताल बजावै, बिन मंदल खट ताला।
 बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है गोपाला॥
 बिनाँ चोलनैं बिनाँ कंचुकी, बिनहीं संग संग होई।
 दास कबीर औसर भल देख्या, जाँनैगा जस कोई॥⁽³⁷⁾

नर देही बहुरि न पाइये, ताथैं हरषि हरषि गुण गाइये॥ टेक॥
 जब मन नहीं तजै बिकारा, तौ क्यों तरिये भौ पारा॥
 जे मन छाड़ै कुटिलाई, तब आइ मिलै राँम राई॥
 ज्युँ जीमण त्युँ मरणाँ, पछितावा कछू न करणाँ॥
 जाँणि मरै जे कोई, तौ बहुरि न मरणाँ होई॥
 गुर बचनाँ मंझि समावै, तब राँम नाँम ल्यौ लावै॥
 जब राँम नाँम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा॥
 ससिहर¹ सूर मिलावा, तब अनहद बेन² बजावा॥
 जब अनहद बाजा बाजै, तब साँई संगि बिराजै॥
 होत संत जनन के संगी, मन राचि रह्यो हरि रंगी॥
 धरो चरन कवल बिसवासा, ज्युँ होइ निरभे पदबासा॥
 यहु काचा खेल न होई, जन खरतर³ खेलै कोई॥
 जब खरतर खेल मचावा, तव गगन मंडल मठ⁴ छावा॥
 चित चंचल निहचल कीजै, तव राँम रसाँइन पीजै॥
 जब राँम रसाँइन पीया, तब काल मिट्या जन जीया॥
 यूँ दास कबीरा गावै, ताथैं मन कौँ मन समझावै॥
 मन ही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचु पाया॥⁽³⁸⁾

काहू दीन्है पाट पटंबर¹ काहू पलघ² निवारा॥
 काहू गरी गोदरी³ नाही काहू खान⁴ परारा⁵॥
 अहिरख⁶ वाद न कीजै रे मन॥
 सुक्रित कर कर लीजै रे मन॥
 कुम्हारै एक जो माटी गूंधी बहु बिधि बानी⁷ लाई॥
 काहू मह मोती मुकताहल काहू बिआध⁸ लगाई॥
 सूमह⁹ धन राखन कउ दीआ मुगध कहै धन मेरा॥
 जम का डंड मूंड मह लागै खिन मह करै निबेरा॥
 हर जन ऊतम भगत सदावै आगिआ मन सुख पाई॥
 जो तिस भावै सत कर मानै भाणा मन वसाई॥
 कहै कबीर सुनहो रे संतहो मेरी मेरी झूठी॥
 चिरगट¹⁰ फार चटारा¹¹ लै गइओ तरी¹² तागरी¹³ छूटी॥⁽³⁹⁾

गुर सेवा ते भगति कमाई॥ तब इह मानस देही पाई॥
 इस देही कउ सिमरह देव॥ सो देही भज हर की सेव॥
 भजहो गोबिंद भूल मत जाहो॥ मानस जनम का एही लाहो॥
 जब लग जरा रोग नही आइआ॥ जब लग काल ग्रसी नही काइआ॥
 जब लग बिकल भई नही बानी॥ भज लेह रे मन सारिगपानी॥
 अब न भजस भजस कब भाई॥ आवै अंत न भजिआ जाई॥
 जो किछ करह सोई अब सार॥ फिर पछुताहो न पावहो पार॥
 सो सेवक जो लाइआ सेव॥ तिन ही पाए निरंजन देव॥
 गुर मिल ता के खुल्हे कपाट॥ बहुर न आवै जोनी बाट॥
 इही तेरा अउसर इह तेरी बार॥ घट भीतर तू देख बिचार॥
 कहत कबीर जीत कै हार॥ बहु बिधि कहिओ पुकार पुकार॥⁽⁴⁰⁾

अंतर मैल जे तीरथ नावै तिस बैकुंठ न जानां॥
 लोक पतीणे¹ कछू न होवै नाही राम अयाना²॥
 पूजहो राम एक ही देवा॥ साचा नावण गुर की सेवा॥
 जल कै मजन जे गति होवै नित नित मेंडुक नावह॥
 जैसे मेंडक तैसे ओए नर फिर फिर जोनी आवह॥
 मनहो कठोर मरै बानारस नरक न बाँचिआ जाई॥
 हर का संत मरै हाड़ुंबै³ त सगली⁴ सैन⁵ तराई॥
 दिनस न रैन बेद नही सासत्र तहा बसै निरंकारा॥
 कह कबीर नर तिसह धिआवहो बावरिआ संसारा॥⁽⁴¹⁾

इह धन मेरे हर को नाउ॥ गांठ न बाधउ बेच न खाउ॥
 नाउ मेरे खेती नाउ मेरे बारी॥ भगति करउ जन सरन तुम्हारी॥
 नाउ मेरे माइआ नाउ मेरे पूंजी॥ तुमह छोड जानउ नही दूजी॥
 नाउ मेरे बंधिप नाउ मेरे भाई॥ नाउ मेरे संग अंत होए सखाई॥
 माइआ मह जिस रखै उदास॥ कह कबीर हउ ता को दास॥⁽⁴²⁾

सुरग बास न बाछीए डरीए न नरक निवास॥
 होना है सो होई है मनह न कीजै आस॥
 रमईआ गुन गाईए॥ जा ते पाईए परम निधान॥
 किआ जप किआ तप संजमो किआ बरत किआ इसनान॥
 जब लग जुगत न जानीए भाउ भगति भगवान॥
 संपै⁶ देख न हरखीए बिपत देख न रोए॥
 जिउ संपै तिउ बिपत है बिध ने रचिआ सो होए॥
 कह कबीर अब जानिआ संतन रिदै मझार॥
 सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरार॥⁽⁴³⁾

पंथ निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा¹॥
 उर न भीजै पग न खिसै हर दरसन की आसा॥
 उडहो न कागा कारे॥ बेग मिलीजै अपुने राम पिआरे॥
 कह कबीर जीवन पद कारन हर की भगति करीजै॥
 एक आधार नाम नाराइन रसना राम रवीजै॥⁽⁴⁴⁾

सुन² संधिआ³ तेरी देव देवाकर⁴ अधपति⁵ आद समाई॥
 सिध समाध अंत नही पाइआ लाग रहे सरनाई॥
 लेहो आरती हो पुरख निरंजन सतगुर पूजहो भाई॥
 ठाढा⁶ ब्रहमा निगम⁷ बीचारै अलख न लखिआ जाई॥
 तत⁸ तेल नाम कीआ बाती दीपक देह उज्यारा॥
 जोत जाए जगदीस जगाइआ बूझै बूझनहारा॥
 पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी⁹॥
 कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी॥⁽⁴⁵⁾

बिदिआ न परउ बाद¹⁰ नही जानउ॥ हर गुन कथत सुनत बउरानो॥
 मेरे बाबा मै बउरा सभ खलक¹¹ सैआनी मै बउरा॥
 मै बिगरिओ बिगरै मत अउरा॥
 आप न बउरा राम कीओ बउरा॥ सतगुर जार गइओ भ्रम मोरा॥
 मै बिगरे अपनी मत खोई॥ मेरे भ्रम भूलउ मत कोई॥
 सो बउरा जो आप न पछानै॥ आप पछानै त एकै जानै॥
 अबह न माता¹² सो कबहु न माता॥ कह कबीर रामै रंग राता॥⁽⁴⁶⁾

रे जम नाँहि नवै व्यापारी, जे भरैं जगाति¹³ तुम्हारी॥ टेक॥
 बसुधा छाड़ि बनजि हम कीन्हों, लाधो हरि को नाँऊँ॥

1. लंबी साँस, आह 2. स्थिर एकाग्र 3. ध्यान करना 4. प्रकाश-स्वरूप
 5. स्वामी 6. खड़ा हुआ 7. वेद 8. सार वस्तु 9. प्रभु
 10. तर्क-वितर्क 11. लोग 12. मगन 13. टैक्स

रौम नाँम की गूँनि¹ भराऊँ, हरि कै टाँडै² जाँऊँ॥
जिनकै तुम्ह अगिवानी³ कहियत, सो पूँजी हँम पासा।
अबै तुम्हारौ कछु बल नाँहीं, कहैं कबीरा दासा॥⁽⁴⁷⁾

कब देखूँ मेरे राम सनेही, जा बिन दुख पावै मेरी देही॥ टेक॥
हूँ तेरा पंथ निहारुँ स्वाँमी, कब रे मिलहुगे अंतरजाँमी।
जैसे जल बिन मीन तलपै, ऐसे हरि बिन मेरा जीयरा कलपै।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै, दरस पियासी रौम क्यूँ सचु पावै।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै, अपनों जाँनि मोहि दरसन दीजै॥⁽⁴⁸⁾

झीनी झीनी बीनी चदरिया⁴॥ टेक॥
काहे कै ताना⁵ काहे कै भरनी⁶, कौने तार से बीनी चदरिया॥
इँगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत गुन तीनी चदरिया॥
साँई को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि कै मैली कीन्ही चदरिया॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया॥⁽⁴⁹⁾

रस गगन गुफा में अजर⁷ झरै॥ टेक॥
बिन बाजा इनकार उठै जहाँ, समुझि परै जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जहाँ कँवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केल करै॥
बिन चंदा उँजियारी दरसै, जहाँ तहाँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे ताड़ी लागी, अलख पुरुष जा को ध्यान धरै॥
काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै॥

1. दोमुहाँ बोरा 2. टोली, समूह 3. अगुआ 4. चादर भाव शरीर
5. करघे में लंबाई के बल फैलाया गया सूत
6. जुलाहों का एक औज़ार जिससे बाने का सूत फेंका जाता है।
7. लगातार

जुगन जुगन की तृषा बुझानी, कर्म भर्म अघ¹ ब्याधि टरै॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अमर होय कबहूँ न मरै॥⁽⁵⁰⁾

मुरसिद² नैनों बीच नबी³ है।
स्याह सफेद तिलों बिच तारा⁴, अविगत अलख रबी है॥ टेक॥
आँखी मद्धे पाँखी⁵ चमकै, पाँखी मद्धें द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन⁶ लगावै, उतरै भौजल पारा॥
सुन्न सहर में बास हमारी, तहाँ सरबंगी⁷ जावै।
साहेब कबीर सदा के संगी, सब्द महल ले आवै॥⁽⁵¹⁾

साधो ऐसा धुँध आँधियारा॥ टेक॥
या घट अन्तर बाग बगीचे, याही में सिरजनहारा॥
या घट अन्तर सात समुन्दर, याही में नौ लख तारा॥
या घट अन्तर हीरा मोती, याही में परखनहारा॥
या घट अन्तर अनहद गरजै, याही में उठत फुहारारा॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, याही में गुरू हमारा॥⁽⁵²⁾

बाबा अगम अगोचर कैसा, तातें कहि समझाओं ऐसा॥ टेक॥
जो दीसै सो तो है नाहीं, है सो कहा न जाई।
सैना बैना⁸ कहि समझाओं, गूँगे का गुड़ भाई॥
दृष्टि न दीसै मुष्टि⁹ न आवै, बिनसै¹⁰ नाहिं नियारा।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पंडित करौ बिचारा॥
बिन देखे परतीति न आवै, कहे न कोउ पतियाना¹¹।
समुझा होय सो सब्दै चीन्है, अचरज होय अयाना॥
कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै आकारा॥

1. पाप 2. मुर्शिद, सतगुरु 3. प्रभु का दूत 4. आँख की पुतली
5. पंख भाव परदा 6. दूर देखनेवाली आँख 7. सर्वज्ञ
8. संकेतात्मक वचन 9. मूठ, पकड़ में 10. नष्ट होना 11. विश्वास

वह तो इन दोऊ तें न्यारा, जानै जाननहारा॥
 काजी कथै कतेब कुराना, पंडित बेद पुराना।
 वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना॥
 नादी¹ बादी² पढ़ना गुनना, बहु चतुराई भीना³।
 कहै कबीर सो पढ़ै न परलय, नाम भक्ति जिन चीन्हा॥⁽⁵³⁾

सूर परकास तहँ रैन कहँ पाइये, रैन परकास नहिँ सूर भासै।
 ज्ञान परकास अज्ञान कहँ पाइये, होइ अज्ञान तहँ ज्ञान नासै॥
 काम बलवान तहँ नाम कहँ पाइये, नाम जहँ होय तहँ काम नाहीं।
 कहँ कबीर यह सत बीचार है, समुझ बिचार करि देख माहीं॥⁽⁵⁴⁾

साधो सो जन उतरे पारा, जिन मन तें आपा⁴ डारा॥ टेक॥
 कोई कहै मैं ज्ञानी रे भाई, कोई कहै मैं त्यागी।
 कोई कहै मैं इन्द्री जीती, अहं सबन को लागी॥
 कोई कहै मैं जोगी रे भाई, कोई कहै मैं भोगी।
 मैं तें आपा दूर न डारा, कैसे जीवै रोगी॥
 कोई कहै मैं दाता रे भाई, कोई कहै मैं तपसी।
 निज तत नाम निश्चय नहिँ जाना, सब माया में खपसी॥
 कोई कहै जुगती सब जानौं, कोई कहै मैं रहनी।
 आतम देव से परिचय नाहीं, यह सब झूठी कहनी॥
 कोई कहै धर्म सब साधे, और बरत सब कीन्हा।
 आपा की आँटी⁵ नहिँ निकसी, करज बहुत सिर लीन्हा॥
 गरब गुमान सब दूर निवारे, करनी को बल नाहीं।
 कहँ कबीर साहेब का बंदा, पहुँचा निज पद माहीं॥⁽⁵⁵⁾

जो कोइ या बिधि मन को लगावै। मन के लगाये गुरु पावै॥
 जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै।
 अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस¹ पर लावै॥
 जैसे भुवंगम² चरत बनी³ में, ओस चाटने आवै।
 कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तज प्रान गँवावै॥
 जैसे कामनि भरत कूप जल, कर छोड़े बतरावै⁴।
 अपना रँग सखियन सँग राचै, सुरति डोर पर लावै॥
 जैसे सती⁵ चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै।
 मातु पिता सब कुटुंब तियागै, सुरत पिया पर लावै॥
 धूप दीप नैवेद⁶ अरगजा⁷, ज्ञान की आरत लावै।
 कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, फेर जनम नहिँ पावै॥⁽⁵⁶⁾

प्रीति उसी से कीजिये, जो ओर⁸ निभावै।
 बिना प्रीति के मानवा, कहिँ ठोर न पावै॥
 नाम सनेही जब मिलै, तब ही सच पावै।
 अजर अमर घर ले चलै, भवजल नहिँ आवै॥
 ज्यों पानी दरियाव का, दूजा न कहावै।
 हिलि मिलि ऐकौ है रहै, सतगुरु समझावै॥
 दास कबीर बिचारि के, कहि कहि जतलावै।
 आपा मिटि साहिब मिलै, तब वह घर पावै॥⁽⁵⁷⁾

घर घर दीपक बरै, लखै नहिँ अंध है।
 लखत लखत⁹ लखि परै, कटै जम फंद है॥

1. बाँसरूपी आधार 2. साँप 3. वन 4. बातें करना
 5. कबीर साहिब ने केवल उदाहरण के रूप में सती प्रथा का उल्लेख किया है जो उस समय में प्रचलित थी। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वह इस प्रथा के समर्थक थे। 6. देवता को अर्पित की जानेवाली भोजन-सामग्री
 7. एक सुगंधित पदार्थ 8. अंत तक 9. देखते रहना

कहन सुनन कछु नाहिं, नहीं कछु करन है।
 जीते ही मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है॥
 जोगी पड़े बिजोग, कहैं घर दूर है।
 पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है॥
 बाम्हन दिच्छा देत, सो घर घर घालिहै।
 मूर सजीवन¹ पास, सो पाहन² पालि है॥
 ऐसन दास कबीर, सलोना आप है।
 नहीं जोग नहिं जाप, पुत्र नहिं पाप है॥⁽⁵⁸⁾

साचे सतगुरु की बलिहारी, जिन यह कुंजी कुफल³ उधारी॥
 नख सिख साहिब है भरपूर, सो साहिब क्यों कहिये दूर॥
 सतगुरु दया अमीरस भीजै, तन मन धन सब अर्पन कीजै॥
 कहै कबीर संत सुखदाई, सुख सागर इस्थिर घर पाई॥⁽⁵⁹⁾

सतगुरु सोई दया करि दीन्हा, तातें अनचिन्हार⁴ मैं चीन्हा॥
 बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिन चूंच का चुगना॥
 बिना नैन का देखन पेखन, बिन सरवन का सुनना॥
 चंद न सूर दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लाई॥
 बिना अन्न अमृत रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई॥
 जहाँ हरष तहाँ पूरन सुख है, यह सुख का से कहना॥
 कहै कबीर बल बल सतगुरु की, धन्य सिष्य का लहना⁵॥⁽⁶⁰⁾

मेरे सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो मैं बहि जाता॥ टेक॥
 करम काटि कोइला किया, ब्रह्म अगिनि परिजार⁶॥
 लोभ मोह भ्रम जारिया, सतगुरु बड़े दयार॥

1. मूर सजीवन=संजीवनी बूटी 2. पत्थर 3. ताला 4. अपरिचित
 5. भाग्य 6. जलाना

कागा से हंसा किया, जाति बरन कुल खोय।
 दया दृष्टि से सहज सब, पातक डारे धोय॥
 अज्ञानी भटकत फिरै, जाति बरन अभिमान।
 सतगुरु सबद सुनाइया, भनक पड़ी मेरे कान॥
 माया ममता तजि दई, बिषया नाहिं समाय।
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, हद तजि बेहद जाय॥⁽⁶¹⁾

मेरी नजर में मोती आया है॥ टेक॥
 कोइ कहे हलका कोइ कहे भारी, दूनों भूल भुलाया है॥
 ब्रह्मा बिस्नु महेसुर थाके, तिनहूँ खोज न पाया है॥
 संकर सेस औ सारद¹ हारे, पढ़ि रटि गुन बहु गाया है॥
 है तिल के तिल के तिल भीतर, बिरले साधू पाया है॥
 चहुँ दल कैवल तिकुटी साजे, ओंकार दरसाया है॥
 रंकार पर सेत सुन्न मध, षटदल कैवल बताया है॥
 पारब्रह्म महासुन्न मँझारा, सोइ निःअछर रहाया है॥
 भँवर गुफा में सोहं राजै, मुरली अधिक बजाया है॥
 सत्तलोक सत पुरुष बिराजै, अलख अगम दोउ भाया है॥
 पुरुष अनामी सब पर स्वामी, ब्रह्मंड पार जो गाया है॥
 यह सब बातें देही माहीं, प्रतिबिंब अंड जो पाया है॥
 प्रतिबिंब पिंड ब्रह्मंड है नकली, असली पार बताया है॥
 कहै कबीर सतलोक सार है, यहाँ पुरुष नियारा पाया है॥⁽⁶²⁾

प्रीत लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं।
 नजर करो अब मेहर की, मोहिं मिलो गुसाई॥
 बिरह सतावै मोहिं को, जिव तड़पै मेरा॥

तुम देखन की चाव है, प्रभु मिलो सवेरा¹॥
 नैना तरसै दरस को, पल पलक न लागै॥
 दर्दवंत दीदार का, निसि बासर जागै॥
 जो अब के प्रीतम मिलें, करूँ निमिष² न न्यारा॥
 अब कबीर गुरु पाइआ, मिला प्रान पियारा॥⁽⁶³⁾

जो तू पिय की लाइली, अपना करिले री॥
 कलह कल्पना मेट के, चरनन चित दे री॥
 पिय कौ मारग कठिन है, खांडे की धारा॥
 डिगमिगै तौ गिरि पड़े, नहिं उतरै पारा॥
 पिय कौ मारग सुगम है, तेरो चाल अनेड़ा³॥
 नाचि न जानै बावरी, कहै आँगन टेढ़ा॥
 जो तू नाचन नीकसी, तो घूँघट कैसा॥
 घूँघट का पट खोलि दे, मत करै अँदैसा॥
 चंचल मन इत उत फिरै, पतिवर्त जनावै॥
 सेवा लागी आन की, पिय कै पावै॥
 पिय खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा॥
 कहै कबीर बिचारि के, कर सतगुरु सेवा॥⁽⁶⁴⁾

सबद की चोट लगी है तन में, घर नहिं चैन चैन नहिं बन में॥
 दूँढ़त फिरों पीव नहिं पावों, औषधि मूर खाइ गुजरावों⁴॥
 तुम से बैद न हम से रोगी, बिन दिदार क्यों जिये बियोगी॥
 एकै रंग रँगि सब नारी⁵, ना जानों को पिय की प्यारी॥
 कहै कबीर कोइ गुरुमुख पावै, बिन नैनन दीदार दिखावै॥⁽⁶⁵⁾

अबिनासी दुलहा कब मिलिहौ, भक्तन के रछपाल¹॥ टेक॥
 जल उपजी जल ही से नेहा, रटत पियास पियास॥
 मैं बिरहिनि ठाढ़ी मग² जोऊँ³, प्रीतम तुम्हरी आस॥
 छोड़्यो गेह नेह लगि तुम से, भई चरन लौलीन॥
 तालाबेलि⁴ होत घट भीतर, जैसे जल बिन मीन॥
 दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा, घर आँगना न सुहाय॥
 सेजरिया बैरिनि भइ हमको, जागत रैन बिहाय॥
 हम तो तुम्हरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार॥
 दीनदयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार॥
 कै⁵ हम प्रान तजतु हैं प्यारे, कै अपनी करि लेव॥
 दास कबीर बिरह अति बाढ़यो, अब तो दरसन देव॥⁽⁶⁶⁾

दरमाँदा⁶ ठाढ़ो तुम दरबार॥ टेक॥
 तुम बिन सुरत करै को मेरी, दरसन दीजै खोल किवार॥
 तुम सम धनी उदार न कोऊ, सर्वन सुनियत सुजस तुम्हार॥
 माँगों कौन रंक सब देखों, तुम ही तें मेरो निस्तार॥
 कहत कबीर तुम समरथ दाता, पूरन पद को देत न बार⁷॥⁽⁶⁷⁾

तलफै बिन बालम मोरा जिया॥ टेक॥
 दिन नहिं चैन रैन नहिं निंदिया, तलफ तलफ के भोर किया॥
 तन मन मोर रहट अस डोलै, सूनी सेज पर जनम छिया⁸॥
 नैन थकित भये पंथ न सूझै, साईं बेदरदी सुधि न लिया॥
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुख जोर किया॥⁽⁶⁸⁾

प्रेम सखी तुम करो बिचार, बहुरि न आना यहि संसार॥
 जो तोहि प्रेम खिलनवा चाव, सीस उतारि महल में आव॥

प्रेम खिलनवा यही सुभाव, तू चलि आव कि मोहिं बुलाव॥
 प्रेम खिलनवा यही बिसेख¹, मैं तोहि देखूँ तू मोहिं देख॥
 खेलत प्रेम बहुत पचि हारी², जो खेलिहै सो जग से न्यारी॥
 दीपक जरै बुझै चहे बाति, उतरन न दे प्रेम रस माति॥
 कहत कबीरा प्रेम समान, प्रेम समान और नहिं आन॥⁽⁶⁹⁾

साचा साहिब एक तू, बंदा आसिक तेरा॥ टेक॥
 निसदिन जप तुझ नाम का, पल बिसरै नाहीं।
 हर दम राख हजूर में, तू साचा साई॥
 गफलत मेरी मेटि के, मोहिं कर हुसियारा।
 भगति भाव बिस्वास में, देखौं दरस तुम्हारा॥
 सिफत तुम्हारी क्या करौं, तुम गहिर गँधीरा।
 सूरत में मूरत बसै, सोइ निरख कबीरा॥⁽⁷⁰⁾

घूँघट का पट खोल रें, तो को पीव मिलेंगे॥ टेक॥
 घट घट में वहि साई रमता। कटुक बचन मत बोल रें, (तो को पीव)॥
 धन जोबन का गरब न कीजै। झूठा पचरँग चोल³ रें, (तो को पीव)॥
 सुन्न महल में दियना बारि ले। आसन से मत डोल रें, (तो को पीव)॥
 जोग जुगत से रंग महल में। पिय पाये अनमोल रें, (तो को पीव)॥
 कहै कबीर अनंद भयो है। बाजत अनहद ढोल रें, (तो को पीव)॥⁽⁷¹⁾

पायौ सतनाम गरे⁴ कै हरवा⁵॥ टेक॥
 साँकर खटोलना⁶ रहनि हमारी, दुबरें दुबरें⁷ पाँच कहरवा⁸॥
 ताला कुंजी हमें गुरु दीन्हीं, जब चाहौं तब खोलौं किवरवा॥

1. विशेषता 2. पचि हारी=थककर हार मानना 3. पचरँग चोल=पाँच तत्व का बना शरीर 4. गले 5. हार 6. खाट 7. कमज़ोर 8. कहार भाव तत्त्व

प्रेम प्रीति कै चुनरी हमरी, जब चाहौं तब नाचौं सहरवा¹॥
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, बहुरि न ऐबै² एहि नगरवा॥⁽⁷²⁾

मानुष तन पायो बड़े भाग, अब बिचारि खेलो फाग॥ टेक॥
 बिन जिभ्या गावै गुन रसाल, बिन चरनन चालै अधर चाल॥
 बिन कर बाजा बजै बैन³, निरखि देखि जहँ बिना नैन॥
 बिन ही मारे मृतक होइ, बिन जारे है खाक सोइ॥
 बिन माँगे बिन जाँचे देइ, सो सालिम⁴ बाजी जीति लेइ॥
 बिन दीपक बरै अखण्ड जोति, पाप पुन नहिं लागे छोति⁵॥
 चन्द सूर नहिं आदि अंत, तहँ कबीर खेलै बसंत॥⁽⁷³⁾

अस कोइ मन हि लोह सम तावै॥ टेक॥
 करम जारि के कोइला करि दे, ब्रह्म अग्नि परचावै⁶।
 ताय तूय⁷ के निर्मल करि लै, सीख⁸ के नीर बुझावै॥
 इतनो जोरि जुगत करि लावै, लगन लुहार कहावै।
 ज्ञान बिबेक जतन से करि लै, जा बिधि अजर⁹ झरावै॥
 सुरत निरत की सँइसी¹⁰ करि लै, जुगत निहाई¹¹ जमावै॥
 नाम हथौड़ा दृढ़ करि मारै, करम की रेख मिटावै॥
 पाँच आत्मा दृढ़ करि राखै, यों करि मन समुझावै।
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, भूला अर्थ लगावै॥⁽⁷⁴⁾

काया मंजसि¹² कौन गुनाँ, घट भीतरि है मलनाँ¹³॥ टेक॥
 जौ तूँ हिरदै सुध मन ग्यानीं, तौ कहा बिरोलै पाँनी।
 तूँबी अठसठि तीरथ न्हाई, कड़वापन तरु न जाई॥
 कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी॥⁽⁷⁵⁾

1. भाव आंतरिक रूहानी मंडल 2. आऊंगा 3. बाँसुरी 4. पूरी 5. छूत 6. जलाए 7. ताय तूय=अच्छी तरह तपाकर 8. शिक्षा 9. अमृत 10. लुहारों का दो छड़ों वाला एक औज़ार 11. अहरन जिस पर रखकर लोहे को पीटा जाता है 12. साफ़ करना 13. मैल

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा,

उपजि बिनाँ कछू समझि न परई, बाँझ न जानै पीरा॥ टेक॥

या बड़ बिथा¹ सोई भल जाँनै, राँम बिरह सर² मारी।

कैसो जाँने जिनि यहु लाई, कैँ जिनि चोट सहारी॥

सँग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच करै अरु काहै।

जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै राँम कूँ चाहै॥

दीन भई बूझै सखियन काँ, कोई मोही राम मिलावै।

दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै, मिलै भलैँ सचु पावै॥⁽⁷⁶⁾

तुम्ह बिन राँम कवन सौँ कहिये, लागी चोट बहुत दुख सहिये॥ टेक॥

बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालैँ³॥

को जाँनै मेरे तन की पीरा, सतगुरु सबद बहि गयौ सरीरा॥

तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसैं जीवैं वियोगी॥

निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले राँम राई॥

कहत कबीर हमकाँ दुख भारी, बिन दरसन क्यूँ जीवहि मुरारी॥⁽⁷⁷⁾

लागा मोरे बान कठिन करका⁴॥ टेक॥

ज्ञान बान धरि सतगुरु मारा, हिरदे माहिँ समाना।

बीच करेजा पीर होत है, धीरज ना धरना॥

करिया⁵ काटे जिये रे भाई, गुरु काटे मरि जाई।

जिनके लागे सब्द के डंडा, त्यागि चले पाच्छाई⁶॥

यह दुनिया सब भई दिवानी, रोवत है धन काँ।

दौलत दुनिया छोड़ि दिया है, भागि चलो बन काँ॥

चार दिनाँ की है ज़िंदगानी, मरना है सब काँ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, गाफिल है कब काँ॥⁽⁷⁸⁾

1. पीड़ा 2. तीर 3. चुभता है 4. कठिन करका=ओले जैसा कठोर
5. काला नाग 6. बादशाही

जो कोई येहि बिधि प्रीति लगावै॥ टेक॥

गुरु का नाम ध्यान ना छूटै, परगट ना गोहरावै¹॥

कुरम² सुतन³ को धरतु है ऊँचे, आप उद्र⁴ को धावै।

निसु दिन सुरत रहै अंडन पर, पल भर ना बिसरावै॥

जैसे चात्रिक रटै स्वाँति को, सलिता निकट न आवै।

दीनदयाल लगन हितकारी, स्वाँति जल पहुँचावै॥

फूटि सुगंध कंज⁵ की जैसे, मधुकर के मन भावै।

हैं गइ साँझि बाँधि गे संपुट⁶, ऐसी भक्ति कहावै॥

जैसे चकोर ससी तन निरखे, तन की सुधि बिसरावै।

ससि तन रहत एक टक लागो, तब सीतल रस पावै॥

ऐसी जुगत करै जो कोई, तब सो भगत कहावै।

कहै कबीर सतगुरु की मूरति, तेहि प्रभु दरस दिखावै॥⁽⁷⁹⁾

अमी रस भँवरा चाखि लिया॥ टेक॥

जा के घट में प्रेम प्रगासा, सो बिरहिन काहे बारै⁷ दिया॥

अंते⁸ न जाय अपन घट खोजै, सो बिरहिन निज पावै पिया॥

पाव पलक में तसकर⁹ मारूँ, गुरु अपने को साखि¹⁰ दिया।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, जियतै यह तन जीति लिया॥⁽⁸⁰⁾

सबद को खोजि ले सबद को बूझि ले, सबद ही सबद तूँ चलो भाई।

सबद आकास है सबद पाताल है, सबद तें पिंड ब्रह्मंड छाई॥

सबद बयन¹¹ बसै सबद सरवन¹² बसै, सबद के ख्याल मूरति बनाई।

सबद ही बेद है सबद ही नाद है, सबद ही सास्त्र बहु भाँति गाई॥

सबद ही जंत्र है सबद ही मंत्र है, सबद ही गुरु सिष को सुनाई।

सबद ही तत्व है सबद निःतत्व है, सबद आकार निराकार भाई॥

1. पुकारना 2. कछुआ 3. बच्चे 4. खाने के लिए 5. कमल
6. पुष्पकोष 7. जलाना 8. और कहीं 9. चोर 10. साक्षी
11. वाणी 12. कान

सबद ही पुरुष है सबद ही नारि है, सबद ही तीन देवा थपाई¹।
सबद ही दृष्ट अदृष्ट ओंकार है, सबद ही सकल ब्रह्मंड जाई॥
कहै कबीर तैं सबद को परखि ले, सबद ही आप करतार भाई॥⁽⁸¹⁾

कहर² की जहर दिल बीच तें दूर कर,
खोज दिल बीच जहँ बसत हक्का।

खूब महबूब है खूब वह यार है, करन कारन जहाँ सबद पक्का॥
खड़े दर्दवंद³ दरवेस दरगाह में, खैर औ मेहर मौजूद मक्का।
जिकिर कर जिकिर कर फिकिर को दूर कर,
कहै कबीर यह सखुन⁴ पक्का॥⁽⁸²⁾

काठ के बीच में अगिनि जैसे, जैसे तिल में तेल निवास है जी।
दूध के बीच में घीव जैसे, ऐसे फूल के बीच में बास है जी॥
कबीर कहै घट को जो मथै, तब पावै सबद प्रकास है जी।
मिहनत बिना सब ढूँढ़ फिरे, यह बात से लोग निरास है जी॥⁽⁸³⁾

अनप्राप्त⁵ बस्तु को कहा तजे, प्राप्त तजै सो त्यागी है।
असील⁶ तुरंग⁷ को कहा फेंरै, अफतर⁸ फेंरै सो तो बागी⁹ है॥
जग भव का गावना क्या गावै, अनुभव गावै सो रागी है।
बन गेह की बासना¹⁰ नास करै, कबीर सोई बैरागी है॥⁽⁸⁴⁾

राँम गति पार न पावै कोई।
च्यंतामणि प्रभु निकटि छाड़ि करि, भ्रँमि मति बुधि खोई॥ टेक॥
तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भाँति हरि सोधै।

1. उत्पन्न किए 2. गुस्सा 3. दर्द महसूस करनेवाला 4. वादा
5. न प्राप्त हुई 6. शरीफ 7. घोड़ा 8. अड़ियल
9. घोड़े को नियंत्रित करनेवाला 10. सांसारिक इच्छाएँ

सकति¹ सुहाग कहौ क्यों पावै, अछता कंत बिरोधै॥
नारी पुरिष बसैं इक संग, दिन दिन जाइ अबोलै।
तजि अभिमान मिलै नहीं पीव कूँ, ढूँढ़त बन बन जोलै॥
कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जानै।
प्रेम प्रीति बेधी अंतर गति, कहूँ काहि कौ मानै॥⁽⁸⁵⁾

चलन चलन सब को कहत है, नाँ जाँनों बैकुंठ कहाँ है॥ टेक॥
जोजन² एक प्रमिति³ नहिं जाँनै, बातन ही बैकुंठ बखानै।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहीं हरि चरन निवासा॥
कहें सुनें कैसें पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहीं जइये।
कहै कबीर बहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि॥⁽⁸⁶⁾

भलै नीदौ⁴ भलै नीदौ भलै नीदौ लोग,
तन मन राँम पियारे जोग⁵॥ टेक॥
मैं बौरी मेरे राँम भरतार⁶, ता काँरनि रचि करौं स्यँगार॥
जैसे धुबिया रज मल धोवै, हरत परत सब निंदक खोवै।
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप॥
न्यंदक मेरे प्रान आधार, बिन बेगारि चलावै भार।
कहै कबीर न्यंदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी॥⁽⁸⁷⁾

निंदउ निंदउ मो कउ लोग निंदउ॥
निंदा जन कउ खरी पिआरी॥ निंदा बाप निंदा महतारी॥
निंदा होए त बैकुंठ जाईऐ॥ नाम पदारथ मनह बसाईऐ॥
रिदै सुध जउ निंदा होए॥ हमरे कपरे निंदक धोए॥
निंदा करै सो हमरा मीत॥ निंदक माहे हमारा चीत॥

1. ज़बरदस्ती 2. चार कोस 3. सीमा, नाप 4. निंदा करनेवाला 5. योग्य
6. पति

निंदक सो जो निंदा होरै¹ ॥ हमरा जीवन निंदक लोरै² ॥
निंदा हमरी प्रेम पिआर ॥ निंदा हमरा करै उधार ॥
जन कबीर को निंदा सार ॥ निंदक डूबा हम उतरे पार ॥⁽⁸⁸⁾

ऐसैं मन लाई लै राँम रसनौ, कपट भगति कीजै कौन गुणौ ॥ टेक ॥
ज्यूँ मृग नादै³ बेध्यौ जाइ, प्यंड परे वाकौ ध्यान न जाइ।
ज्यूँ जल मीन हेत⁴ करि जाँनि, प्राँन तजै बिसरै नहीं बाँनि⁵ ॥
भ्रिंगी कीट रहै ल्यौ लाइ, है लौलीन भ्रिंग है जाइ।
राँम नाँम निज अमृत सार, सुमिरि सुमिरि जन उतरे पार ॥
कहैं कबीर दासनि को दास, अब नहीं छाड़ौं हरि के चरन निवास ॥⁽⁸⁹⁾

लोका मति के भोरा⁶ रे।
जो कासी तन तजै कबीर, तौ राँमहि कहा निहोरा⁷ रे ॥ टेक ॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूँ जल मैं जल पैसि⁸ न निकसै, यूँ दुरि⁹ मिलै जुलाहा ॥
राँम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो, भ्रमि परे जिनि कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर¹⁰, हिरदै राम सति होई ॥⁽⁹⁰⁾

वै क्यूँ कासी तजैं मुरारी, तेरी सेवा चोर भये बनवारी ॥ टेक ॥
जोगी जती तपी संन्यासी, मठ देवल बसि परसै कासी¹¹ ॥
तीन बार जे नित प्रति न्हावै, काया भीतरि खबरि न पावै ॥
देवल¹² देवल फेरी देहीं, नाँव निरंजन कबहुँ न लेहीं ॥
चरन बिरद¹³ कासी कौं न दैहूँ, कहै कबीर भल नरकहि जैहूँ ॥⁽⁹¹⁾

1. होड़ 2. आवश्यकता 3. बाजे 4. प्रेम 5. स्वभाव 6. भोले

7. अहसान, कृतज्ञता 8. प्रवेश करके 9. बहकर 10. बंजर

11. परसै कासी=काशी में आ बसना 12. मंदिर 13. यश

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै, तेज पुंज तहाँ प्राँन उतारै ॥ टेक ॥
पाती¹ पंच पहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा।
तनमन सीस समरपन कीन्हौ, प्रगट जोति तहाँ आतम लीनौ ॥
दीपक ग्यान सबद धुनि घंटा, परं पुरिख तहाँ देव अनंता।
परम प्रकास सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ॥⁽⁹²⁾

अब मैं पाइबौ रे पाइबौ ब्रह्म गियान,
सहज समाधें सुख में रहिबौ, कोटि कलप विश्राम ॥ टेक ॥
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हौ, हिरदै कैवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सुझ्या, परम जोति प्रकासा ॥
मृतक उठया धनक² कर लीयै, काल अहेड़ी³ भागा।
उदय सूर निस किया पयानौ⁴, सोवत थें जब जागा ॥
अविगत अकल⁵ अनूपम देख्या, कहताँ कहा न जाई।
सैन⁶ करै मन ही मन रहसै, गूंगे जाँनि मिठाई ॥
पहुप बिनाँ एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ॥
देखत काँच भया तन कंचन, बिन बानी मन माँनौ।
उड़या बिहंगम खोज न पाया, ज्यूँ जल जलहि समानौ ॥
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौं, न्हाये उदिक⁷ न नाँउं।
भागा भ्रम ये कही कहताँ, आये बहुरि न आँउं ॥
आपै मैं तब आया निरख्या⁸, अपन पै आपा सूझ्या।
आपै कहत सुनत पुनि अपनौं, अपन पै आपा बूझ्या ॥
अपनै परचे लागी तारी, अपन मैं आप समानौं।
कहै कबीर जे आप बिचारे, मिटि गया आवन जानौं ॥⁽⁹³⁾

1. पत्तियाँ 2. धनुष 3. शिकारी 4. रवानगी, प्रस्थान 5. अखंड
6. संकेत 7. जल 8. देखा

अब हम सकल कुसल करि माँनाँ,
 स्वाँति भई तब गोब्यंद जाँनाँ॥ टेक॥
 तन मैं होती कोटि उपाधि¹, भई सुख सहज समाधि॥
 जम थैं उलटि भये है राँम, दुख सुख किया विश्राम॥
 बैरी उलटि भये हैं मीता, साषत² उलटि सजन भये चीता॥
 आपा जानि उलटि ले आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यूँ ताप³॥
 अब मन उलटि सनातन⁴ हूवा, तब हम जाँनाँ जीवत मूवा॥
 कहै कबीर सुख सहज समाऊँ। आप न डरौं न और डराऊँ॥⁽⁹⁴⁾

भाई रे बिरले दोसत कबीरा के, यहु तत बार बार कासों कहिए।
 भानण⁵ घड़ण सँवारण सप्रथ, ज्यूँ राखै त्यूँ रहिए॥ टेक॥
 आलम दुनों सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानाँ⁶।
 छह दरसन छयानवै पाखंड, आकुल⁷ किनहूँ न जानाँ॥
 जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग⁸ जग बौरानाँ॥
 कागद लिखि लिखि जगत भुलानाँ, मनहीं मन न समानाँ॥
 कहै कबीर जोगी अरु जंगम, ए सब झूठी आसा।
 गुर प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूँ, निहचै⁹ भगति निवासा॥⁽⁹⁵⁾

वेद कहे सरगुन के आगे, निरगुन का बिसराम।
 सरगुन-निरगुन तजहु सोहागिन, देख सबहि निज धाम।
 सुख-दुख वहाँ कछु नहिं व्यापै, दरसन आठों जाम।
 नूरै ओढ़न नूरै डासन¹⁰, नूरै का सिरहान।
 कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नूर तमाम॥⁽⁹⁶⁾

1. उथल-पुथल 2. साकत, दुष्ट 3. तीन्यूँ ताप-आधिभौतिक, आधिदैविक तथा
 आध्यात्मिक, तीनों प्रकार के कष्ट 4. स्थिर 5. तोड़ना 6. अज्ञानी
 7. हर जगह समाया हुआ 8. ज्योतिष 9. निश्चयपूर्वक 10. बिछौना

खालिक¹ खूबै खूब ही, मोहि मिलन दुहेला²।
 महरम कोई ना मिलै, बन फिरूँ अकेला॥
 बिरह दिवाना मैं फिरूँ, दिल में लौ लागी।
 मरम न पाया दास ने, तन तपन न भागी॥
 मैं तरसत तोहि दरस को, तुम दरस न दीन्हा।
 नैन चहैं दीदार को, भये बहुत अधीना॥
 सुरत निरत करि निरखिया, तन मन भए धीरा।
 नूर देखि दिलदार का, गुन गावै कबीरा॥⁽⁹⁷⁾

सतगुरु है रंगरेज, चुनर मेरी रंगि डारी॥ टेक॥
 स्याही रंग छुड़ाइ के रे, दियो मजीठा रंग।
 धोये से छूटै नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग॥
 भाव³ के कुंड नेह के जल में, प्रेम रंग दइ बोर।
 चसकी चास⁴ लगाइ के रे, खूब रंगी झकझोर॥
 सतगुरु ने चुनरी रंगी रे, सतगुरु चतुर सुजान।
 सब कुछ उन पर वार दूँ रे, तन मन धन औ प्राण॥
 कहै कबीर रंगरेज गुरु रे, मुझ पर हुए दयाल।
 सीतल चुनरी ओढ़ि के रे, भइ हौं मगन निहाल॥⁽⁹⁸⁾

अब हरि हूँ अपनौं करि लीनौं, प्रेम भगति मेरोँ मन भीनौं॥ टेक॥
 जरै सरीर अंग नहिं मोरोँ, प्राण जाइ तौ नेह न तोरोँ॥
 च्यंतामणि क्यूँ पाइये ठोली⁵, मन दे राँम लियौ निरमोली⁶॥
 ब्रहमा खोजत जनम गवायौ, सोइ राम घट भीतरि पायौ॥
 कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा॥⁽⁹⁹⁾

1. सृष्टिकर्ता 2. दुष्कर, कठिन 3. भक्ति भाव 4. चसका
 5. हँसी-मज़ाक से 6. अनमोल

आज मेरे भाग जागे, सतगुरु आये पाहुना¹ ॥
 प्रेम की फुहार छूटै, घर आँगन लगे सुहाउना ॥
 रहस² रहस मैं अँगना बुहारौं, मोतिन चौक पुरावौं³ ॥
 पाँच सखी मिलि मंगल गावैं, सबद सुरत लौ लावौं ॥
 करूँ आरती प्रेम निछावर, पल पल बलि बलि जाऊँ ॥
 कहै कबीर दया सतगुरु की, परम पुरुष वर पाऊँ ॥⁽¹⁰⁰⁾

भाग बड़े जो संत पधारे, करि सुमिरन भवसागर तारे ॥
 एही संत हैं परउपकारी, सरन आय वाको लेत उबारी ॥
 साहेब को घर संतन माहीं, साहेब संत कछु अंतर नाहीं ॥
 कहै कबीर संत भले पधारे, जनम जनम के कारज सारे ॥⁽¹⁰¹⁾

दुलहिनी तोहि पिय के घर जाना ॥ टेक ॥
 काहे रोवो काहे गावो, काहे करत बहाना ॥
 काहे पहिरौ हरि हरि चुरियाँ, पहिरौ नाम कै बाना ॥
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, बिन पिया नाहि ठिकाना ॥⁽¹⁰²⁾

अब तोहि जाँन न देहूँ राम पियारे, ज्यूँ भावै त्यूँ होह हमारे ॥ टेक ॥
 बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये ॥
 चरननि लागि करौं बरियायी⁴, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई⁵ ॥
 इत मन मंदिर रहौ नित चोखै⁶, कहे कबीर परहु मति धौखै⁷ ॥⁽¹⁰³⁾

बहुत दिनन थें मैं प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये ॥ टेक ॥
 मंगलचार माँहि मन राखौं, राम रसौंइण रसना चाखौं ॥
 मंदिर माँहि भया उजियारा, ले सूती⁸ अपनाँ पीव पियारा ॥
 मैं रनि राती⁹ जे निधि पाई, हमहिं कहाँ यह तुमहिं बड़ाई ॥
 कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा, सखी सुहाग राँम मोहिं दीन्हाँ ॥⁽¹⁰⁴⁾

1. अतिथि 2. आनंदमग्न 3. चौक पुरावौं=जमीन पर आटे से बनी चित्रकारी
 4. हठ करना 5. उलझाना 6. भले, अच्छे 7. धोखे 8. लीन होना
 9. रँगना

साखियाँ

बिनती

बिनवत हों कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
 साध सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥

जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखौं रोय।
 चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥

मेरे सतगुरु मिलैंगे, पूछैंगे कुसलात।
 आदि अंत की सब कहौं, उर अंतर की बात ॥

सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
 आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
 तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥

सतगुरु तोहि बिसारि के, का के सरनै जायँ।
 सिव बिरंचि¹ मुनि नारदा, हिरदे नाहिं समायँ ॥

मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
 तुम दाता दुख-भजना, मेरी करो सम्हार ॥

अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब निवाज।
 जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥

औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार॥

जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त।
साहिब गरुआ¹ लोड़िये², नफर³ बिगाडै नित्त॥

साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजौ आपना, सब औगुन मुझ माहिं॥

साहिब तुम जनि⁴ बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं॥

औसर बीता अल्प तन, पीव रहा परदेस।
कलँक उतारौ साइयाँ, भानौ⁵ भरम अँदेस॥

कर जोरे बिनती करौं, भवसागर आपार।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार॥

अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार।
जो तुम छोड़ौ हाथ तें, कौन उतारै पार॥

भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह।
तुम दयाल दाया करो, तब पाओं कछु थाह॥

साहिब तुमहिं दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर॥

साईं तेरा कछु नहीं, मेरा होय अकाज।
बिरद तुम्हारे नाम की, सरन परे की लाज॥

1. महान 2. आवश्यकता होती है 3. सेवक 4. मत
5. नष्ट कर दो

मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग¹।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग²॥

जिन को साईं रँग दिया, कबहुँ न होहिं कुरंग।
दिन दिन बानी³ आगरी⁴, चढ़ै सवाया रंग॥

मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तुझ।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मुझ॥

औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरु, ताहि लगावैं ठौर॥

तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकरो बाहिं।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माहिं॥

कबीर करत है बीनती, सुनो संत चित लाय।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहिं बताय॥

सतगुरु बड़े दयाल हैं, संतन के आधार।
भवसागरहि अथाह से, खेइ उतारैं पार॥

भक्ति दान मोहिं दीजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये, निसु दिन तेरी सेव॥⁽¹⁾

गुरुदेव

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जानै भृङ्ग को, वह कर ले आप समान॥

1. आचार-व्यवहार 2. आनंद 3. कांति 4. अधिक श्रेष्ठ

जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय।
जिन गुरु आँख न देखिया, सो गुरु दिया लखाय॥

सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात¹।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात²॥

सतगुरु की महिमा अनैत, अनैत किया उपकार।
लोचन अनैत उधारिया, अनैत दिखावनहार॥

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव॥

कबीर गुरु गुरुआ मिला, रल³ गया आटे लोन।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरैगा कौन॥

ज्ञान-प्रकासी गुरु मिला, सो जन बिसरि न जाय।
जब साहिब किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय॥

गुरु साहिब करि जानिये, रहिये सबद समाय।
मिले तो दँडवत बंदगी, पल पल ध्यान लगाय॥

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं॥

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय॥

बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार॥

लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजै सुरत पठाय।
सबद तुरी¹ असवार² हूँ, पल पल आवै जाय॥

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय॥

पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस॥

सत्त नाम के पटतरें³, देवे को कछु नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं॥

मन दीया तिन सब दिया, मन की लार⁴ सरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कह दास कबीर॥

तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार।
कबहुँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार॥

तन मन ता को दीजिये, जा के बिषया नाहिं।
आपा सबही डारि कै, राखै साहिब माहिं॥

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय॥

तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहै कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग॥

निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और॥

गुरु सिकलीगर¹ कीजिये, मनहिं मस्कला देइ।
मन का मैल छुड़ाइ कै, चित दरपन करि लेइ॥

सिष खाँडा² गुरु मस्कला³, चढ़ै नाम खरसान।
सबद सहै सन्मुख रहै, तो निपजै सिष्य सुजान॥

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार॥

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै⁴ चोट॥

गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटे गुरु भजे, तब पावै करतार॥

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु चरन निवास॥

गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध॥

गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि।
ते नर नरकै जाईंगे, जन्म जन्म है स्वान॥

कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥

गुरु हैं बड़ गोबिन्द तें, मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार॥

1. चमकाने वाला 2. तलवार 3. चमकाने वाला औज़ार
4. लगाता है

गुरु सीढ़ी तें ऊतरै, सबद बिहूना होय।
ता को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय॥

अहं अग्नि निसि दिन जरै, गुरु से चाहै मान।
ता को जम न्योता दियो, होउ हमार मिहमान॥

गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हा दान॥

जम गरजे बल बाघ के, कहै कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार॥

गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास॥

अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरु दया तें पावई, सुरत निरत करि देख॥

पंडित पढ़ि गुनि पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त सबद परमान¹॥

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव॥

तीन लोक नौ खंड में, गुरु तें बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होइ॥

कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय॥

1. ज्ञान का साधन

थापन¹ पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
 कबीर हीरा बनिजिया², मानसरोवर तीर॥

कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि।
 सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान॥

कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय।
 अंतर भीजी आत्मा, हरो भयो बनराय॥

साचे गुरु की पच्छ³ में, मन को दे ठहराय।
 चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय॥

भली भई जों गुरु मिले, नातर⁴ होती हान।
 दीपक जोति पतंग ज्यों, परता आय निदान⁵॥

भली भई जों गुरु मिले, जा तें पाया ज्ञान।
 घटही माहिं चबूतरा, घटही माहिं दिवान॥

गुरु मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
 हर्ष सोक ब्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप॥

गुरु हमारा गगन में चेला है घट माहिं।
 सुरत सबद मेला भया, बिछुड़त कबहुँ नाहिं॥

बस्तु कहीं दूँदैं कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
 कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥

भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही बस्तु लखाय।
 कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥

1. स्थिरता 2. खरीदा 3. संग 4. नहीं तो
 5. आखिरकार

यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
 सीस दिये जो गुरु मिलें, तौ भी सस्ता जान॥

चेतन चौकी बैठ करि, सतगुरु दीन्ही धीर।
 निरभय है निःसंक भजु, केवल नाम कबीर॥

बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
 पैंडे¹ में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ॥

दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
 पूरा किया बिसाहना², बहुरि न आवै हट्ट³॥

चौपड़ मांडी⁴ चौहटे⁵, सारी⁶ किया सरीर।
 सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर॥

सतगुरु हम से रीझि कै, एक कहा परसंग⁷।
 बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग॥

सतगुरु के उपदेश का, सुनियो एक बिचार।
 जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार॥

जम द्वारे पर दूत सब, करते खींचा तान।
 तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खानि॥

चार खानि में भरमता, कबहुँ न लहता पार।
 सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार॥

जरा मीच⁸ ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय।
 चलु कबीर वा देस में, जहाँ बैदा सतगुरु होय॥

1. रास्ते 2. खरीदारी 3. बाज़ार 4. बिछाना 5. चौराहे पर
 6. गोटी या पासा 7. बात 8. मृत्यु

काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस।
साहिब अंक पसारिया, लै चला अपने देस॥

सतगुरु साचा सूरमा, सबद जो बाहा एक।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक॥

सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर॥

सतगुरु सबद कमान करि, बाहन¹ लागा तीर।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और॥

कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिं।
भीतर बिंधे सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिं॥

जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि।
लगी चोट जो सबद की, गई कलेजे छानि॥

सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान॥

कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान²।
केते जोधा पचि³ गये, खींचें संत सुजान॥

लागी गाँसी⁴ सुख भया, मरै न जीवै कोय।
कहै कबीर सो अमर भे, जीवत मितक होय॥

हँसे न बोलै उनमुनी¹, चंचल मेला मार।
कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हथियार॥

गूँगा हुआ बावरा, बहिरा हुआ कान।
पाँयन से पँगुला² हुआ, सतगुरु मारा बान॥

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब³।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी⁴ कहूँ कितेब॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
अलख नाम में रमि रहा, चित्त न आवै और॥

मान बड़ाई ऊरमी, ये जग का व्यवहार।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार॥

दिल ही में दीदार है, बाद बहै संसार।
सतगुरु सबद का मस्कला मोहिं दिखावनहार॥

दीसे है सो बिनसि है, नाम धरे सो जाय।
कबीर सोई तत्त⁵ गहु, जा सतगुरु दियो बताय॥

सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते⁶ लोह लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत सार॥

सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस।
जाय समाना सबद में, सत्त नाम विस्वास॥

कुमति कीच⁷ चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।
जनम जनम का मोरचा⁸, पल में डारै धोय॥

1. चलाना, फेंकना 2. खेल के मैदान में 3. थककर हार जाना
4. बाण की नोक

1. अंतर में मन 2. लँगड़ा 3. साज-सामान 4. माला 5. सारभूत
6. तपाना 7. कीचड़ 8. जंग, मैल

चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर।
सो धोखा बिच क्यों रहै, जेहि सतगुरु मिलै कबीर॥

चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गम्भीर।
सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर॥

कोटिन चंदा ऊगवें, सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहरे¹, दीसत घोर अँधार॥

सतगुरु मोहिं निवाजिया, दीन्हा अम्मर बोल।
सतगुरु छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल॥

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस॥

सतगुरु पारस के सिला², देखो सोच बिचार।
आई परोसिन लै चली, दीयो दिया सँवार॥

जीव अधम औ कुटिल है, कबहुँ नहिं पतियाय।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय॥

पहिले बुरा कमाइ के, बाँधी बिष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट॥

सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखें खरा अरु खोट।
भवसागर तें निकारि कै, राखें अपनी ओट॥

भवसागर जल बिंष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबद सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर॥

सतगुरु सबद जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद।
समुँद बुन्द एकै भया, किस का करूँ निषेध॥

सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठे आय।
पार उतारें और को, अपनो पारस लाय॥

बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिं।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकरें बाँहिं॥

केतिक¹ पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय॥

बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदी-छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भवजल मिटै॥

सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करें।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै॥

जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजै सेव।
वार पार² की गम³ नहीं, नमो नमो गुरु देव॥⁽²⁾

झूठा गुरु

जानंता⁴ बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन⁵।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन॥

कबीर पूरे गुरु बिना, पूरा सिष्य न होय।
गुरु लोभी सिष लालची, दूनी दाज्ञन⁶ होय॥

पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग जती¹ का पहिरि के, घर घर माँगै भीख॥

गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव।
सोइ गुरु नित बंदिये, (जो) सबद बतावै दाव॥

कनफूका² गुरु हृद का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर॥

जा गुरु तें भ्रम ना मिटै, भ्रांति न जिव की जाय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देवै सबद लखाय॥

बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय॥

झूटे गुरु के पच्छ³ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सबद का, भटकै बारंबार॥

कबीर गुरु को गम नहीं, पाहन⁴ दिया बताय।
सिष सोधे बिन सेइया⁵, पार न पहुँचै जाय॥

गुरुआ तो सस्ता भया, पैसा केर पचास।
राम नाम को बेचि के, करै सिष्य की आस॥

जा का गुरु ग्रेही अहै, चेला ग्रेही होय।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय॥

गुरु पूरा सिष सूर, बाग मोरि रन पैठ।
सत सुकृत⁶ को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ॥

1. संन्यासी 2. कान में फूँक मारकर दीक्षा देनेवाला 3. संगति 4. पत्थर
5. आराधना 6. सत्कर्म

जा के हिरदे गुरु नहीं, सिष साखा¹ की भूख।
ते नर ऐसा सूखसो, ज्यों बन दाज्ञा रूख॥⁽³⁾

गुरुमुख

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग।
कहै कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग²॥

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह³ दिवान⁴।
और कबीर नहिं देखता, है वाही को ध्यान॥

गुरुमुख गुरु आज्ञा चलै, छोड़ि देइ सब काम।
कहै कबीर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम॥

उलटे सुलटे बचन कै, सिष्य न मानै दुख।
कहै कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुख॥⁽⁴⁾

मनमुख

सेवक-मुखी⁵ कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहै कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं॥

फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम॥

सतगुरु सबद उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहाँ काल है, कह कबीर समुझाय॥

गुरु बिचारा क्या करै, जो सिष्य माहीं चूक।
भावै ज्यों परमोधिये⁶, बाँस बजाई फूँकि॥⁽⁵⁾

1. पंथ, संप्रदाय 2. लक्षण 3. राजा 4. मंत्री 5. सेवकों का मुखिया
6. समझाइए

निगुरा

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निस्फल गया, बूझौ बेद पुरान॥

पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव।
निगुरा तो ऊभट¹ चलै, जब तब कुरै कुदाव²॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, नारि कूकरी³ होय।
गली गली भूँसत⁴ फिरै, टूक न डारै कोय॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा गरदभ⁵ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय॥

चौंसठ दीवा जोड़ के, चौदह चंदा माहिं।
तेहि घर किस का चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहिं॥

निसि औंधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय हैं, तहू सुदृष्टिहि⁶ मंद॥

गगन मँडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैगा गुरु पूर॥⁽⁶⁾

गुरु शिष्य खोज

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस॥

ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय।
पाँचो लरिका पटक के, रहै नाम लौ लाय॥

हम घर जारा आपना, लूका¹ लीन्हा हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ, जो चलै हमारे साथ॥

ऐसा कोई ना मिला, समुझै सैन² सुजान।
ढोल बाजता ना सुनै, सुरति-बिहूना कान॥

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे पहिचान।
अपना करि किरपा करै, ले उतार मैदान॥

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं।
ऐसा कोई ना मिला, पकरि छुड़ावै बाहिं॥

जैसा दूँढ़त में फिरौं, तैसा मिला न कोय।
ततबेता³ तिरगुन रहित, निरगुन से रत होय॥

सारा सूरु बहु मिले, घायल मिला न कोय।
घायल को घायल मिलै, गुरु भक्ति दूढ़ होय॥

प्रेमी दूँढ़त में फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, बिष से अमृत होय॥

सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछु न लेय॥

सर्पहिं दूध पियाइये, सोई बिष है जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही बिष खाय॥

नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोई तखत तरे का ना मिला, जा से पूछौं भेद॥

1. ऊबड़-खाबड़ 2. गलत चाल 3. कुतिया 4. भौंकना 5. गधा
6. ज्ञानदृष्टि

1. जलती लकड़ी 2. संकेत 3. तत्त्व जाननेवाला

तख्त¹ तरे की सो कहै, तख्त तरे का होय।
 मंझ महल की को कहै, बाँका परदा सोय॥

मंझ महल की गुरु कहै, देखा सब घर बार।
 कूँची² दीन्ही हाथ में, परदा दिया उघार॥

पहुपन केरी बास ज्यों, ब्यापि रहा सब ठाहिं।
 बाहर कबहुँ न पाइये, पावै संतों माहिं॥

जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
 मैं बपुरा बूझन³ डरा, रहा किनारे बैठि॥

हेरत हेरत⁴ हेरिया⁵, रहा कबीर हिराय⁶।
 बुंद समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय॥

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
 समुँद समाना बुंद में, सो कित हेरा जाय॥⁽⁷⁾

सेवक और दास

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
 कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय॥

सेवक सेवा में रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
 दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय॥

सेवक स्वामी एक मति, जो मति में मति मिलि जाय।
 चतुराई रीझें नहीं, रीझें मन के भाय⁷॥

1. धुरधाम का सिंहासन 2. कुंजी 3. डूबना 4. हेरत हेरत=खोजते-खोजते
 5. खोज लिया 6. खो गया 7. प्रेम

द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी¹ का खाय।
 कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय॥

कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
 जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होय॥

सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिन रात।
 कहै कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात॥

निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबंध होय।
 करम करै करता नहीं², दास कहावै सोय॥

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहि दास।
 ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छाड़ै पास॥

दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल।
 पलक एक में प्रगट ह्वै, छिन में करै निहाल॥

दात धनी याचै नहीं, सेव करै दिन रात।
 कहै कबीर ता सेवकहिं, काल करै नहिं घात॥

सेवक कुत्ता गुरू का, मोतिया वा का नाँव।
 डोरी लागी प्रेम की, जित खँचै तित जाव॥

दुर दुर करैं तो बाहिरे, तू तू करैं तो जाय।
 ज्यों गुरु राखैं त्यों रहै, जो देवें सो खाय॥

दासातन³ हिरदे नहीं, नाम धरावै दास।
 पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास॥

1. स्वामी 2. करता नहीं=कर्ता न समझना 3. दासता

भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दै मोहिं।
 और कोई याचौं नहीं, निसु दिन याचौं तोहिं॥

यह मन ता को दीजिये, जो साचा सेवक होय।
 सिर ऊपर आरा सहै, तहू न दूजा जोय¹॥

काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
 बलिहारी वा दास की, पैठि के² निकसनहार॥

काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट³।
 बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट॥

कबिरा पाँचो बलधिया⁴, ऊजर ऊजर जाहिं।
 बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै वाहिं॥

कबीर गुरु के भावते, दूरहि तें दीसंत।
 तन छीना मन अनमना, जग तें रूठि फिरंत॥

अनराते⁵ सुख सोवना, राते नींद न आय।
 ज्यों जल छूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय॥

जा घट में साईं बसै, सो क्यों छाना⁶ होय।
 जतन जतन करि दाबिये, तौ उँजियारा सोय॥

कबीर खालिक⁷ जागिया, और न जागै कोय।
 कै⁸ जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय॥

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
 बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय॥⁽⁸⁾

1. देखे 2. पैठि के=प्रवेश करके 3. किला 4. बैल
 5. प्रेम में रँग न होने पर 6. छिपा हुआ 7. सृष्टिकर्ता 8. या

सूरमा

सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
 पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाड़ै खेत॥

सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह।
 जूझै सब बँद¹ खोलि कै, छाड़ै तन का मोह॥

खेत न छाड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिं।
 आसा जीवन मरन की, मन में आनै नाहिं॥

अब तो जूझै ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर।
 सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजै सूर॥

घायल की गति² और है, औरन की गति और।
 प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर॥

सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
 आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास॥

कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार।
 ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार॥

चित चेतन ताजी³ करै, लव की करै लगाम।
 सबद गुरु का ताजना⁴, पहुँचै संत सुठाम⁵॥

कबीर तुरी पलानिये⁶, चाबुक लीजे हाथ।
 दिवस थके साईं मिलै, पीछे पड़सी रात॥

1. बंधन 2. दशा 3. घोड़ा 4. चाबुक 5. उत्तम स्थान अर्थात् परमधाम
 6. तुरी पलानिये=धावा बोलने के लिए अपने आप को तैयार करें।

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय॥

धड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यों डेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल॥

कायर बहुत पमावही¹, बड़क² न बोलै सूर।
सारी खलक यों जानही, केहि के मोहड़े³ नूर॥

सूरा⁴ थोड़ा ही भला, सत करि रोपै⁵ पग।
घना मिला केहि काम का, सावन का सा बगग॥

रनहिं धसा जो ऊबरा, आगे गिरह⁶ निवास।
घरै बधावा बाजिया, और न दूजी आस॥

साईं सेति⁷ न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय॥

अप्प⁸ स्वारथी मेदिना, भक्ति स्वारथी दास।
कबीर नाम स्वारथी, छाड़ी तन की आस॥

ज्यों ज्यों गुरु गुन साँभलै, त्यों त्यों लागै तीर।
लागे से भागै नहीं, सोई साध सुधीर॥

चौपड़ माँड़ी चौहटे, अरध⁹ उरध¹⁰ बाजार।
सतगुरु सेती खेलता, कबहुँ न आवै हार॥

जो हारों तौ सेव गुरु, जो जीतों तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता, जो सिर जाव तो जाव॥

1. डींग मारता है 2. बड़-चढ़कर 3. मुख पर 4. वीर पुरुष 5. जमाना
6. गृह 7. मुफ्त में 8. पानी 9. नीचे 10. ऊपर

खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहिब जोग॥

अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार॥

नेह निभाये ही बनै, सोचे बनै न आन¹।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान॥

मेरे संसय कछु नहीं, लागा गुरु से हेत।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े² माँड़ा खेत³॥

कायर भया न छूटि हौ, कछु सूरता समाय।
भरम भालका⁴ दूर करि, सुमिरन सील मँझाय⁵॥

बाँका गढ़⁶ बाँका मता⁷, बाँकी गढ़ की पौल⁸।
काछि⁹ कबीरा नीकला, जम सिर घाली रौल¹⁰॥

बाँकी तेग¹¹ कबीर की, अनी¹² पड़ै दुइ टूक।
मारा मीर¹³ महाबली, ऐसी मूठ अचूक॥

कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचो स्वान¹⁴।
ज्ञान कुहाड़ा कर्म बन, काटि किया मैदान॥

कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम¹⁵।
सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम¹⁶॥

1. सम्मान 2. खुला मैदान 3. माँड़ा खेत=भाव युद्ध ठान लिया
4. गाँसी या नोक 5. लगकर 6. शरीररूपी किला 7. सलाह
8. मुख्य द्वार 9. पहनकर 10. घाली रौल=घूँसा मारना 11. तलवार
12. नोक अर्थात् धार 13. स्वामी 14. कुत्ते 15. दुश्मन
16. लड़ाई

कबीर पाँचो मारिये, जा मारे सुख होय।
 भला भली सब कोइ कहै, बुरा न कहसी कोय॥

ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय।
 कह कबीर सोइ ऊबरे, धड़ पर सीस न होय॥

तीर तुपक¹ से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
 माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय॥

कबीर रन में पैठि के, पीछे रहै न सूर।
 साईं से सनमुख भया, रहसी सदा हजूर²॥

बिना पाँव का पंथ है, मंझि सहर³ अस्थान।
 बिकट⁴ बाट⁵ औघट घना, कोइ पहुँचै संत सुजान॥

पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।
 दिल सौँपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर॥

धुजा फरक्कै सुन्न में, बाजै अनहद तूर।
 तकिया है मैदान में, पहुँचैगा कोइ सूर॥

नाम रसायन प्रेम रस, पीवत बहुत रसाल⁶।
 कबीर पीवन कठिन है, माँगै सीस कलाल⁷॥

कायर सेरी⁸ ताकवै, सूर माँड़ै⁹ पाँव।
 सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव॥⁽⁹⁾

1. बंदूक 2. सामने 3. मस्तकरूपी शहर 4. भीषण 5. रास्ता
 6. मीठा 7. मदिरा बेचनेवाला 8. भागने का रास्ता 9. जमाए

पतिव्रता

पतिव्रता को सुख घना, जा के पति है एक।
 मन मैली बिभिचारिनी¹, ता के खसम अनेक॥

पतिव्रता मैली भली, काली कुचिल² कुरूप।
 पतिव्रता के रूप पर, वारों कोटि सरूप॥

पतिव्रता पति को भजै, और न आन सुहाय।
 सिंह बचा जो लंघना³, तौ भी घास ना खाय॥

नैनों अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेवै।
 ना में देखौं और को, ना तोहि देखन देवै॥

कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
 और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस॥

पपिहा का पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
 मरते दम जल में पड़ा, तऊ ना बोरी चंच॥

में सेवक समरत्थ का, कबहुँ ना होय अकाज⁴।
 पतिव्रता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज॥

पतिव्रता के एक तू, और न दूजा कोय।
 आठ पहर निरखत रहै, सोई सुहागिन होय॥

इक चित होय न पिय मिलै, पतिव्रत ना आवै।
 चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कैसे पावै॥

1. बदचलन 2. मैले वस्त्रों वाली 3. भूखा 4. हानि

सुंदर तो साईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि ना कबहुँ परिहरै¹, पलक ना छाड़ै पास॥

चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ से खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल॥

सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ माहिं॥

पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत²।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससि की जोत॥

पतिबरता पति को भजै, पति पर धरि बिस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस॥

सुरत समानी नाम में, नाम किया परकास।
पतिबरता पति को मिली, पलक ना छाड़ै पास॥

जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय॥

जो यह एकै जानिया, तो जानौ सब जान।
जो यह एक न जानिया, तो सबही जान अजान॥

सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल॥

प्रीति अड़ी है तुज्झ से, बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलौं और से, नील रँगाओं दंत॥

1. छोड़ना 2. काँच की पोत=काँच का छोटा दाना

कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय॥

आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद को ठौर न होय॥

भोरै¹ भूली खसम को, कबहुँ न किया बिचार।
सतगुरु आन बताइया, पूरबला² भरतार॥

मैं अबला पिउ पिउ करौं, निरगुन³ मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरु बिनु, और न देखौं जीव॥⁽¹⁰⁾

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुत ज मिंत⁴।
जिन दिल बाँध्यो एक सौं, ते सुखु सोवै नचिंत॥

दोजग⁵ तो हम अंगिया⁶, यहु डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मोहि चाहिए, बाझ पियारे तुझ॥⁽¹¹⁾

व्यभिचारिणी

नवसत⁷ साजे सुन्दरी, तन मन रही सँजोय।
पिय के मन मानै नहीं, (तो) बिडँब⁸ किये क्या होय॥

मुख से नाम रटा करै, निसु दिन साधन संग।
कहु धौं कौन कुफेर⁹ से, नाहिन लागत रंग॥

मन दीया कहि और ही, तन साधन के संग।
कह कबीर कोरी गजी¹⁰, कैसे लागै रंग॥

1. भ्रम में 2. अनादि काल से चला आ रहा 3. तीन गुणों से रहित 4. मित्र
5. नरक 6. स्वीकार किया 7. नौ और सात भाव सोलह शृंगार
8. बाहरी सजावट 9. कुचक्र 10. मोटा सस्ता कपड़ा

कबीर जो कोई सुन्दरी, जानि करै बिभिचार।
ताहि न कबहुँ आदरै, परम पुरुष भरतार॥

कबीर या जग आइ कै, कीया बहुतक मित।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सौवे निःचिंत॥⁽¹²⁾

भक्ति

कबीर गुरु की भक्ति करु, तजि बिषया रस चौज¹।
बार बार नहिं पाइ है, मानुष जन्म की मौज॥

भक्ति बीज बिनसै नहीं, आइ पड़ै जो चोल²।
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल॥

गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्यौहार॥

भक्ति दुहेली³ गुरु की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथ से, सो लेसी सतनाम॥

भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार।
जो डोलै तो कटि परै, निःचल उतरै पार॥

कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास॥

भक्ति निसेनी⁴ मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय॥

भक्ति बिना नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय।
सबद सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय॥

1. आनंद 2. दोबारा जन्म 3. कठिन 4. सीढ़ी

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ हरि को भजै, भक्त कहावै सोय॥

भक्ति भेष¹ बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस॥

जहाँ भक्ति तहँ भेष नहिं, बर्नासिम तहँ नाहिं।
नाम भक्ति जो प्रेम से, सो दुर्लभ जग माहिं॥

भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय।
भक्ति नियारी भेष तें, यह जानै सब कोय॥

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु होय सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय॥

सब से कहाँ पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख²।
भक्ति ठानि सबदै गहै, बहुरि न काछै³ भेख॥

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाड़सी, ज्यों केंचुली भुवंग॥

ज्ञान सँपूरन ना भिदा⁴, हिरदा नाहिं जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय॥

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ⁵ बिचार⁶।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार॥

खेत बिगारयो खरतुआ⁷, सभा बिगारी कूर⁸।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर॥

1. स्वाँग 2. शेख, इस्लाम के उपदेशक 3. पहने 4. भेद लिया
5. पाखंड 6. भावना 7. निकम्मा घास 8. दुष्ट

तिमिर गया रबि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुमति गई इक लोभ तें, भक्ति गई अभिमान॥

भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय॥

कामी क्रोधी लालची, इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार।
धूआँ का सा धौलहर¹, जात न लागै बार॥

भक्ति सोई जो भाव से, इकसम चित को राखि।
साच सील से खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि²॥

सत्त नाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय॥

जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम॥

कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय॥

जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव॥

भक्ति पियारी नाम की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन³ जरि गया, बहुरि ले आवै माँगि॥

भक्ति बीज पलटे नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत का संत॥

जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलैं, आवागवन नसाय॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय॥⁽¹³⁾

लव

लव¹ लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहाँहिं समाय॥

काया कर्मंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषा-वंत कबीर॥

गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट॥

जेहि बन सिंह न सँचरै, पंछी उड़ि नहीं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहाँ कबीर लव लाय॥

लै पावौ तौ लै रहौ, लैन कहूँ नहिं जाँव।
लै बूड़ै² सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव॥

लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि³ देह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह॥

जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर⁴।
अपनी देह की को गिनै, तारै पुरुष करोर॥

लागी लागी¹ क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार² होइ जाय॥

लागी लागी क्या करै, लागी नहीं एक।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक॥

लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह॥

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय॥

चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कह कबीर छाड़ै नहीं, ऐसी बस्तु लगार³॥

और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहौं, मन राता गुरु रंग॥

सोवौं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोयन⁴ राता⁵ सुधि⁶ हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहूँ अनत न जाय॥⁽¹⁴⁾

सत्संग

संगति से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख जोय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय॥

1. लगन लग गई 2. वार पार=आर-पार 3. लगाव, प्रेम 4. आँखें
5. रँगा हुआ, अनुरक्त हुआ 6. याद

संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन॥

कबीर संगत साध की, हरै और की ब्याधि¹।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि²॥

कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकत³ संग न जाय॥

कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी⁴ का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास⁵ सुबास⁶॥

ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसु दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय॥

कबीर संगत साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना⁷, नीम न कहसी कोय॥

कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय॥

मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ।
साध संगति हरि भजन बिनु, कछू न आवै हाथ॥

साधुन के सतसंग तें, थरहर काँपै देह।
कबहूँ भाव कुभाव तें, मत मिटि जाय सनेह॥

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय॥

1. रोग 2. कपट 3. मनमुख, माया का पुजारी 4. इत्र बेचनेवाला
5. गंध 6. सुगंध 7. सुगंधित

बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय॥

जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि॥

ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत॥

जो घर गुरु की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान¹॥

कबीर ता से संग करु, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम॥

कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय॥

कबीर चंदन के ढिंगे², बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास॥

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध॥

घड़िहू की आधी घड़ी, भाव³ भक्ति में जाय।
सतसंगति पल ही भली, जम का धका न खाय॥⁽¹⁵⁾

कुसंग

जानि बूझि साची तजै, करै झूठ से नेह।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहु मत देह॥

1. कब्रिस्तान, श्मशान 2. पास 3. प्रेमपूर्ण

चंदन जैसा साध है, सर्पहिं सम संसार।
वा के अंग लपटा रहै, भाजै¹ नाहिं बिकार॥

तोहि पीर जो प्रेम की, पाका² सेती खेल।
काँची सरसों पेरि कै, खली भया ना तेल॥

लहसुन से चंदन डरै, मत रे बिगारै बास।
निगुरा से सगुरा डरै, यों डरपै जग से दास॥

संसारी साकट भला, कन्या क्वारी भाय।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय॥

कबीर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
कदली सीप भुवंग मुख, एक बूँद तिराय॥

उज्जल बूँद अकास की, परि गई भूमि बिकार³।
मूल बिना ठामा⁴ नहीं, बिन संगति भो छार⁵॥

हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेत।
ते नर कधी न नीपजै⁶, ज्यों कालर⁷ का खेत॥

गिरिये पर्वत सिखर तें, परिये धरनि मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूझौ⁸ काली धार॥

मारी मरै कुसंग की, ज्यों केला ढिंग⁹ बेरि।
वह हालै वह जोरई¹⁰, साकट संग निबेरि¹¹॥

केला तबहिं न चेतिया, जब ढिंग जागी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटों लीन्हा घेरि॥

1. भागता 2. पका हुआ 3. अवगुण 4. ठिकाना 5. खाक, भस्म
6. उत्पन्न होना, उन्नति करना 7. बंजर 8. डूबना 9. निकट
10. फटता है 11. छुटकारा पा लो

कबीर कहते क्यों बनै, अनबनता¹ के संग।
दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग॥

ऊँचे कुल कहा जनमिया, जो करनी ऊँचि न होय।
कनक² कलस मद से भरा, साधन निंदा सोय॥⁽¹⁶⁾

सूक्ष्म मार्ग

उत तें कोई न बाहुरा³, जा से बूझूँ धाय।
इत तें सब ही जात हैं, भार लदाय लदाय⁴॥

उत तें सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेड़ लगावै तीर॥

गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा⁵, जहाँ बुलावै यार॥

कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय॥

बास⁶ सुरति लै आवई, सबद सुरति लै जाय।
परिचय सुति⁷ है इस्थिरे, सो गुरु दर्ई बताय॥

जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माहिं॥

हम चाले अमरावती⁸, टारे दूरे टाट।
आवन होय तो आइयो, सूली ऊपर बाट॥

सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार॥

यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन¹ मैली पिठ ऊजला, लागि न सक्कों पाँय॥

नाँव न जानै गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलते चलते जुग भया, पाव कोस पर गाँव॥

सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥

अगम पंथ मन थिर रहै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन धन सब छाड़ि कै, तब पहुँचै वा देस॥

सब को पूछत मैं फिरा, रहत कहै नहिं कोय।
प्रीति न जोरै गुरु से, रहन कहाँ से होय॥

चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदँसा और।
साहिब से परिचय नहीं, पहुँचैगे केहि ठौर॥

कबीर मारग कठिन है, कोई सकै न जाय।
गया जो सो बहुरै नहीं, कुसल कहै को आय॥

कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल²।
पाँव न टिकै पपीलि³ का, पंडित लादै बैल॥

जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई न ठहराय।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, तहई पहुँचै जाय॥

1. झगड़ालू 2. सोना 3. लौटा, वापस आया 4. लादे हुए 5. बिस्तर
6. वासना 7. नाद 8. प्रभु का धाम

1. वधू 2. सिलहिली गैल=फिसलन-भरा रास्ता 3. चींटी

कबीर मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुरु की साखि¹ ॥

सुर नर थाके मुनि जना, उहाँ न कोई जाय।
मोटा भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥

सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिस्नु महेस।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥

बिन पाँवन² की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥

जेहि पैँडे पंडित गया, तिस ही गही बहीर³।
औघट⁴ घाटी नाम की, तहाँ चढ़ि रहा कबीर ॥

घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥

ना वहँ आवागवन था, नहिं धरती आकास।
कबीर जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥

नाहीं आवागवन था, नहिं धरती आकास।
हतो कबीरा दास जन, साहिब पास खवास⁵ ॥

पहुँचेंगे तब कहेंगे, वही देस की सीच⁶।
अबहीं कहा तड़ागिये⁷, बेड़ी पायन⁸ बीच ॥

करता की गति अगम है, चलु गुरु के उनमान⁹।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान¹⁰ ॥

1. गवाही 2. पाँव, पैर 3. भीड़ 4. दुर्गम 5. खास सेवक
6. हाल, अवस्था 7. कहा तड़ागिये=डींग क्यों मारी जाए? 8. पाँव
9. शिक्षा के अनुरूप 10. यह सत्य है

प्राण पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय।
जीव छता¹ जामै² मरै, सूछम लखै न सोय ॥

मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥⁽¹⁷⁾

चेतावनी

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे³ कर केस।
ना जानौं कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥

कुसल⁴ कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभाति ॥

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति⁵ न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार⁶ ॥

रात गँवाई सोइ करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥

कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥

1. मौजूद रहते 2. जन्म लेना 3. पकड़े हुए 4. खैरियत 5. सावधान होकर
6. देर

यहि औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
सत नाम जान्यो नहीं, अंत पड़ै मुख खेह¹॥

आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत॥

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल॥

काल्ह करै सो आज करु, सबहि साज² तेरे साथ।
काल्ह काल्ह तू क्या करै, काल्ह काल के हाथ॥

काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब॥

पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज॥

पाव पलक तो दूर है, मो पै कह्यो न जाय।
ना जानूँ क्या होयगा, पाव³ बिपल⁴ के मायँ॥

कबीर नौबति⁵ आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन⁶ यह गली, बहुरि न देखौ आय॥

जिन के नौबति बाजती, मैगल⁷ बँधते बार।
एकै सतगुरु नाम बिनु, गये जनम सब हार॥

पाँचो नौबति बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग॥

कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान¹।
सबहि उभा² में लगि रहा, राव रंक सुल्तान॥

ऊजड़ खेड़े³ ठीकरी⁴, गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया, लंका का सरदार॥

कहा चुनावै मेढ़ियाँ⁵, लंबी भीति उसारि⁶।
घर⁷ तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार॥

कबीर गर्ब न कीजिये, देंही देखि सुरंग⁸।
बिछरे पै मेला नहीं, ज्यों केचुली भुजंग॥

कबीर गर्ब न कीजिये, अस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर⁹ भया पलास¹⁰॥

कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अबास।
काल्ह परो भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास॥

कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हय बर¹¹ ऊपर छत्र तर¹², तौ भी देवें गाड़॥

पक्की खेती देखि करि, गर्ब कहा किसानु।
अजहूँ भोला बहुत है, घर आवै तब जानु॥

जेहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहिं नाम।
ते नर पसु संसार में, उपजि खपे बेकाम॥

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्यौहार में, झूठे रंग न भूल॥

1. धूल, राख 2. जरूरी सामान 3. विपल का चौथा भाग
4. पल (24 सैकिंड) का साठवाँ हिस्सा 5. मंगलसूचक बाजा 6. शहर
7. हाथी

1. बड़ी कोठरी 2. चिंता 3. छोटा गाँव 4. रोड़े, पत्थर 5. घर
6. उठाकर 7. भाव शरीर 8. सुंदर रंग वाली 9. उजड़ा हुआ
10. ढाक का पेड़ 11. हय बर=श्रेष्ठ घोड़ा 12. नीचे

पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय।
 एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय॥

कबीर मँदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
 दिवस चार का पेखना, बिनसि जायगा काल॥

माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं।
 इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं॥

जिन गुरु की चोरी करी, गये नाम गुन भूल।
 ते बिधना¹ वादुर² रचे, रहे उरधमुख³ झूल॥

सत्त नाम जाना नहीं, चूके अब की घात⁴।
 माटी मलत कुम्हार ज्यों, घनी सहै सिर लात॥

आया अनआया हुआ, जो राता संसार।
 पड़ा भुलावे गाफिला, गये कुबुद्धी हार॥

कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ।
 इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ॥

जगतहिं में हम राचिया⁵, झूठे कुल की लाज।
 तन छीजै कुल बिनसि है, चढ़े न नाम जहाज॥

यह तन काँचा कुंभ है, लिये फिरै था साथ।
 ढबका⁶ लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
 कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव॥

1. विधाता 2. चमगादड़ 3. मुख उलटा किए हुए 4. उपयुक्त अवसर
 5. आसक्त 6. ठोकर

मोर तोर को जेवरी¹, बटि बाँधा संसार।
 दास कबीरा क्यों बाँधे, जा के नाम अधार॥

जिन जाना निज गेह को, सो क्यों जोड़ै मित्त।
 जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त॥

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
 एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर॥

जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
 जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार॥

आस पास जोधा खड़े, सबै बजावैं गाल²।
 मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल॥

या दुनिया में आइ कै, छाँड़ि देइ तू ऐँठ।
 लेना होय सो लेइ लै, उठी जात है पैँठ³॥

यह दुनिया दुइ रोज की, मत कर या से हेत।
 गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत॥

मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि।
 कहै कबीर कब लागि⁴ रहै, रुई लपेटी आगि॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
 आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय॥

मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन।
 तन माटी मिलि जायगा, ज्यों आटे में नोन॥

1. रस्सी 2. शोखी बघारते हैं 3. बाज़ार 4. तक

जनम मरन दुख याद कर, कूड़े¹ काम निवार²।
जिन जिन पंथों चालना, सोई पंथ सम्हार॥

कबीर खेत किसान का, मिरगों खाया झाड़³।
खेत बिचारा क्या करै, जो धनी करे नहिं बाड़॥

कबीर सोता क्या करै, क्यों नहिं देखै जाग।
जा के सँग से बीछुड़ा, वाही के सँग लाग॥

कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार॥

अपने पहरे जागिये, ना पड़ि रहिये सोय।
ना जानौ छिन एक में, किस का पहरा होय॥

दीन⁴ गँवायो दुनी⁵ सँग, दुनी न चाली साथ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ॥

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय।
नाम अकुल को भेंटिया, सब कुल गया बिलाय॥

दुनिया के धोखे मुया, चाला कुल की कानि⁶।
तब क्या कुल की लाज है, जब लै धरै मसान॥

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय⁷।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय॥

उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिं।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिं॥

1. निकम्मे 2. दूर कर 3. खाया झाड़=खाकर साफ़ कर दिया 4. धर्म
5. दुनिया 6. मर्यादा 7. गँवाना

मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय¹।
मन परतीति न उपजै, जिव बिस्वास न होय॥

कबीर बेड़ा² जरजरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए³ तरि गये, बूड़े जिन सिर भार॥

दुनियाँ सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
एकाएकी गुरु से, कै साधन कौ संग॥

खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकबाद।
बाँझ हिलावै पालना, ता में कौन सवाद॥

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ, साधू उबरै भागि॥

यहि बेरिया⁴ तो फिर नहीं, मन में देखु बिचार।
आया लाभ के कारने, जनम जुवा मत हार॥

बैल गढ़ंता नर गढ़ा, चूका सींग अरु पोंछ⁵।
एकहि गुरु के नाम बिनु, धिक दाढ़ी धिक मोंछ॥

कहै कबीर पुकारि के, चेतै नाहीं कोय।
अब की बेरिया चेति है, सो साहिब का होय॥

मनुष जनम नर पाइ कै, चूकै अब की घात।
जाय परै भव चक्र में, सहै घनेरी लात॥

ऐसी गति संसार की, ज्यों गाडर⁶ की ठाट⁷।
एक पड़ा जेहि गाड़⁸ में, सबै जायँ तेहि बाट॥

1. लोग 2. नाव 3. हल्के-हल्के 4. समय 5. पूँछ
6. भेड़ 7. झुंड 8. खड्ड, गढ़ा

भ्रम का बाँधा ये जगत, यहि बिधि आवै जाय।
मानुष जनमहिं पाइ नर, काहे को जहड़ाय¹॥

तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बाँधि रहा, सो अपना नहिं होय॥

ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसे जीव रु देह।
चलती बेरियाँ रे नरा, डारि चला ज्यों खेह॥

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस²।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस॥

जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेता³ होहु तो चेति ल्यो, दिवस परत है धार॥

कहै कबीर पुकारि के, ये कलऊ⁴ बेवहार।
एक नाम जाने बिना, बूढ़ि मुआ संसार॥

झूठ झूठ कहँ डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहिं कारन मैं कहत हौं, जा तें होइ उबार॥

झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत।
सत्त नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत॥

बहुतै तन को साजिया, जनमो भरि दुख पाय।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गुहराय⁵॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहि।
घर की नारी को कहै, तन की नारी⁶ नाहिं॥

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइकै, साबित गया न कोय॥

काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता में जीव पिसात॥

आसै पासै जो फिरै, निपट¹ पिसावै सोय।
कीला² से लागा रहै, ता को बिघन न होय॥

चक्की चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि।
रूढ़ा³ सबद कबीर का, डारा पाट उखारि॥

आज काल्ह दिन एक में, इस्थिर नाहिं सरीर।
कह कबीर कस राखिहौ, काँचे बासन⁴ नीर॥

नाम भजौ तो अब भजौ, बहुरि भजौगे कब्ब।
हरियर हरियर⁵ रूखड़े, ईधन होइ गये सब्ब॥

काल हमारे सँग रहै, कस जीवन की आस।
दिन दस नाम सम्हारि ले, जब लगि पिंजर साँस॥

आठ पहर योंही गया, माया मोह जँजाल।
सत्तनाम हिरदे नहीं, जीति लिया जम काल॥

मंदिर माहीं झलकती, दीवा की सी जोति।
हंस बटाऊ⁶ चलि गया, काढी घर की छोति॥

बारी बारी आपने, चले पियारे मित्त।
तेरी बारी जीयरा⁷, नियरे आवै नित्त॥

1. गँवाता है 2. लालच 3. जाग्रत 4. कलियुग 5. पुकारता है
6. (1) नाड़ी (2) स्त्री

1. बिलकुल 2. कील 3. भाव शक्तिशाली 4. बरतन 5. हरे-हरे
6. पथिक, राहगीर 7. जीव

माली आवत देखि कै, कलियाँ करें पुकारि।
फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बारि॥

मछरी दह¹ छोड़ौ नहीं, धीमर² तेरो काल।
जेहिं जेहिं डाबर³ घर करौ, तहँ तहँ मेलै जाल॥

पानी में की माछरी, क्यों तैं पकरयो तीर।
कड़िया खटकी जाल की, आइ पहुँचा कीर॥

हे मतिहीनी माछरी, राख न सकी सरीर।
सो सरवर सेया नहीं, (जहँ) जाल काल नहिं कीर॥

हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय।
करि समुद्र से रूसना, छीलर⁴ चित्त दियाय॥

टाला टूली दिन गया, ब्याज बढ़ता जाय।
ना गुरु भज्यो न खत⁵ कटयो, काल पहुँचा आय॥

हम जानें थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल॥

चहुँ दिसि पक्का कोट था, मंदिर नगर मँझार।
खिड़की खिड़की पाहरू⁶, गज बंधा दरबार॥

चहुँ दिसि सूरु बहु खड़े, हाथ लिये हथियार।
रहि गये सबही देखते, काल ले गया मार॥

मरती बिरिया पुन करै, जीवत बहुत कठोर।
कह कबीर क्यों पाइये, काढ़े खाँडे⁷ चोर॥

कबीर यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि¹।
आप आप को काटिहै, कहै कबीर बिचारि॥

कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाड़ै ओट।
घन² अहरन³ बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट॥

महलन माहीं पौढ़ते, परिमल⁴ अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय॥

जा को रहना उक्त घर, सो क्यों लोड़ै इत।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित॥

ज्यों कोरी⁵ रेजा⁶ बुनै, नियरा⁷ आवै छोर।
ऐसा लेखा मीच⁸ का, दौरि सकै तौ दौरि॥

मैं मैं मेरी जनि करै, मेरी मूल बिनासि।
मेरी पग का पैकड़ा⁹, मेरी गल की फाँसि॥

कबीर रसरी पाँव में, कहा सोवै सुख चैन।
स्वास नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन॥

राज दुआरे बंधिया, मूड़ी धुनै गजन्द¹⁰।
मनुष जनम कब पाइहाँ, भजिहाँ परमानन्द॥

मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारम्बार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार॥

काल चिचावत¹¹ है खड़ा, जागु पियारे मित।
नाम सनेही जगि रहा, क्यों तू सोय निचिंत॥

1. नदी का गहरा हिस्सा 2. मछुआरा 3. तालाब, पोखर 4. तलैया
5. कर्मों का लेखा 6. पहरा 7. तलवार

1. कुल्हाड़ी 2. लुहार का हथौड़ा 3. लोहे का टुकड़ा जिस पर रखकर धातु को पीटते हैं। 4. सुगंध 5. जुलाहा 6. थान 7. पास 8. मृत्यु
9. बेड़ी 10. गजराज 11. चिल्लाता

जरा आय जोरा किया, पिय आपन पहिचान।

अन्त कछू पल्ले परै, ऊठत है खरिहान¹॥

बिरिया² बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर³।

बिगरा काज सँवारि लै, फिरि छूटन नहिं ठौर॥

कै कूसल अनजान के, अथवा नाम जपंत।

जनम मरन होवै नहीं, तौ बूझौ कुसलंत॥

जो ऊगे⁴ सो अत्थवै⁵, फूलै सो कुम्हिलाय।

जो चुनिये सो ढरि परै, जामै सो मरि जाय॥

तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुत्र दोउ जाल।

सकल जीव सावज⁶ भये, एक अहेरी काल॥

कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक।

कान पकरि के लै चला, ज्यों अजयाहिं खटीक⁷॥

बालपना भोले गयो, और जुबा महमन्त⁸।

बृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत॥

साथी हमरे चलि गये, हम भी चलनहार।

कागद⁹ में बाकी रही, ता तें लागी बार॥

घाट जगाती¹⁰ धरमराय, सब का झारा¹¹ लेहि।

सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देहि॥

जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन।

पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन॥

1. फ़सल का ढेर 2. समय 3. सफ़ेद 4. उदित हुए
5. अस्त हो गए 6. शिकार 7. क़साई 8. मस्ती में
9. भाव लेखा-जोखा 10. महसूल उगाहनेवाला 11. तलाशी

खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।

घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट¹ न होय॥⁽¹⁸⁾

लकड़ी कहै लुहार सों, तू मति जारै मोहिं।

एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं॥⁽¹⁹⁾

उदारता

कबीर गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोय।

कै साहिब को नाम लै, कै कर² ऊँचा होय॥

बसंत ऋतु जाचक³ भया, हरषि दिया द्रुम⁴ पात।

ता तें नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात॥

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।

दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन कौ काम॥

देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह⁵।

बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह॥

दान दिये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर।

अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर॥

सतही⁶ में सत बाँटई, रोटी में तें टूक।

कहै कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक⁷॥⁽²⁰⁾

सहन

काँच कथीर⁸ अधीर नर, जतन करत है भंग।

साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग॥

1. कर्मों का बोझ 2. हाथ 3. मौँगना 4. वृक्ष 5. दे दो
6. सच्चा 7. तंगी 8. रौंगा, एक निम्न श्रेणी की धातु

काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी¹ सहै, कै हीरा कै हेम²॥

कसत कसौटी जो टिकै, ता को सबद सुनाय।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय॥⁽²¹⁾

विश्वास

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंतें क्या होय।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय॥

चिंता न कर अचिंत रहू, देनहार समरत्थ।
पसू पखेरु जीव जंत, तिन के गाँठि न हत्थ॥

पौ फाटी पगरा³ भया, जागे जीवा जून⁴।
सब काहू को देत है, चोंच समाना चून⁵॥

सत्त नाम से मन मिला, जम से परा दुराय⁶।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बन्दा नरक न जाय॥

कर्म⁷ करीमा⁸ लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा⁹ घटै न तिल बढ़ै, जो सिर फोड़ै कोय॥

साई इतना दीजिये, जा में कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

जा के मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झक झोलही, तऊ न है चित भङ्ग॥

1. कसौटी 2. सोना 3. सवेरा 4. जीवा जून=जीव-जंतु
5. चुगने या खाने की चीज़ 6. परा दुराय=दूर हो गया 7. भाग्य
8. दयालु प्रभु 9. ज़रा भी

खोज पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलेंगे आय।
अजया¹ गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपल खाय॥

पाँडर² पिंजर मन भँवर, अरथ³ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा बिस्वास॥

पद गावै लौलीन है, कटै न संसय फाँस।
सबै पछोरै⁴ थोथरा, एक बिना बिस्वास॥

गावनही में रोवना, रोवनही में राग।
एक बनहिं में घर करै, एक घरहिं बैराग॥

जो सच्चा बिस्वास है, तो दुख क्यों ना जाय।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय॥

बिस्वासी है गुरु भजै, लोहा कंचन होय।
नाम भजै अनुराग तें, हरष सोक नहिं दोय॥⁽²²⁾

दुबिधा

दुबिधा जा के मन बसै, दयावंत जिउ नाहिं।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देउ जनि बाहिं॥

हिरदे माहीं आरसी⁵, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबही देखई, दुबिधा देइ बहाय॥

पढ़ा गुना सीखा सभी, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, यह सब दुख का मूल॥

1. बकरी 2. कुंद का फल 3. मनोरथ 4. सूप से अन्न फटकना 5. दर्पण

चींटी चावल लै चली, बिच में मिलि गइ दार¹।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक लै दूजी डार²॥

सत्त नाम कटुवा लगै, मीठा लागै दाम।
दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम॥

नगर चैन तब जानिये, (जब) एकै राजा होय।
याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय॥

संसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न बद्ध।
जो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध³॥⁽²³⁾

मध्य मार्ग

भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन⁴।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान॥

लेऊँ तो महा पतिग्रह⁵, देऊँ तो भोगंत⁶।
लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज संत॥

हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी⁷ खेलै माहिं॥

गैबी आया गैब तें, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, तब कहूँ रहिया ऐब॥

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥⁽²⁴⁾

1. दाल 2. फेंक दो 3. खा लिया 4. दूसरा 5. दान लेना
6. अपने सुख-भोग का अंत 7. अदृश्य

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ॥

दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख को झूरि।
सदा अनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्ले दूरि॥⁽²⁵⁾

सहज

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय॥

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै बिषया तजै, सहज कहावै सोय॥

सहजै सहजे सब भया, मन इंद्रि का नास।
निःकामी से मन मिला, कटी करम की फाँसि॥

सहजै सहजै सब गया, सुत बित¹ काम निकाम²।
एकमेक हैं मिलि रहा, दास कबीरा नाम॥

जो कलपै तो दूर है, अनकलपे हैं सोय।
सतगुरु मेटी कलपना, सहजै होय सो होय॥⁽²⁶⁾

अनुभव ज्ञान

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद॥

ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान॥

1. धन 2. सांसारिक इच्छाएँ

आतम अनुभव सुख की, का कोई बूझै बात।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात॥

आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष बिषाद।
चित्त दीप सम है रह्यो, तजि करि बाद बिबाद॥

कागद लिखै सो कागदी¹, की ब्योहारी² जीव।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव॥

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी की बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात॥

भरो होय सो रीतई³, रीतो होय भराय।
रीतो भरो न पाइये, अनुभव सोई कहाय॥⁽²⁷⁾

वाचक ज्ञान

ज्यों अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान॥

अँधरन⁴ को हाथी सही, हैं साचे सगरे⁵।
हाथन की टोई⁶ कहैं, आँखिन के अँधरे॥

ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अँधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय॥

ज्ञानी को निर्भय भया, मानै नाही संक।
इन्द्रिन के रे बसि परा, भुगतै नर्क निसंक॥

ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता¹।
ता तें संसारी भला, जो सदा रहै डरता॥

ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे, भीतर बस्तु अनूप॥

भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथैं अनेक।
जो पै भीतर लिखि परै, भीतर बाहर एक॥

समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिं।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय माहिं॥⁽²⁸⁾

करनी और कथनी

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय²।
कथनी तजि करनी करै, तो बिष से अमृत होय॥

कथनी बदनी³ छाड़ि के, करनी से चित लाय।
नरहिं नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय॥

करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँसत फिरै, सुनी सुनाई बात॥

करनी बिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न सोय।
बातों के पकवान से, धापा⁴ नाही कोय॥

लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट।
कहै कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट॥

पढ़ि औरन समझावई, मन नहिं बाँधै धीर।
रोटी का संसय पड़ा, यों कहि दास कबीर॥

पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर¹।
आपन मन निस्चल नहीं, और बँधावत धीर॥

कथनी करि फूला फिरै, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ़ गँवार॥

कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरै भौजल पार॥

जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मनुष नहीं वे स्वान गति, बाँधे जमपुर जाहिं॥

जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।
तेहि सतगुरु नियरे² रहै, पल में करै निहाल॥

कबीर करनी क्या करै, जो गुरु नाहिं सहाय।
जेहि जेहि डारी³ पग धरै, सो सो निव निव⁴ जाय॥

करनी करनी सब कहै, करनी माहिं बिबेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिं परखै एक॥

कथनी कथा तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय।
कलावंत⁵ का कोटि ज्यों, देखत ही ढहि जाय॥

कूकस⁶ कूटै कनि बिना, बिन करनी का ज्ञान।
ज्यों बन्दूक गोली बिना, भड़कि न मारै आन॥

कथनी को धीजूँ⁷ नहीं, करनी मेरा जीव।
कथनी करनी दोउ थकी, (तब) महल पधारे पीव॥

1. दूध 2. निकट 3. डालियाँ 4. झुकना 5. बाज़ीगर, जादूगर
6. भूसी 7. मानूँ (मानना)

कथते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार।
मुँहड़ा काला होयगा, साहिब के दरबार॥

कथते हैं करते सही, साच सरोतर¹ सोय।
साहिब के दरबार में, आठ पहर सुख होय॥

कबीर करनी आपनी, कबहुँ न निष्फल जाय।
सात समुँद आड़ा² पड़ै, मिलै अगाऊ³ आय॥

जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुख की बाट।
बोलत ही पहिचानिये, चोर साहु⁴ को घाट⁵॥

जैसी करनी जासु की, तैसी भुगतै सोय।
बिन सतगुरु की भक्ति के, जन्म जन्म दुख होय॥

मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस॥⁽²⁹⁾

सार ग्रहण

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप⁶ सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय॥

पहिले फटकै छाँट कै, थोथा सब उड़ि जाय।
उत्तम भाँड़े पाइया, जो फटके ठहराय॥

सत संगति है सूप ज्यों, त्यागै फटकि असार।
कह कबीर गुरु नाम लै, परसै नाहिं बिकार॥

1. लगातार 2. रुकावट 3. आगे 4. साधु 5. रंग-ढंग 6. छाज

औगुन को तो ना गहै, गुनही को लै बीन।
घट घट महकै मधुप¹ ज्यों, परमात्म लै चीन्ह॥

हंसा पय² को काढ़ि लै, छीर नीर निरवार³।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार॥

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप ब्यवहार⁴।
हंस रूप कोइ साध है, तत का छाननहार⁵॥⁽³⁰⁾

असार ग्रहण

आटा तजि भूसी गहै, चलनी⁶ देखु निहारि।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार॥

निर्मल छाड़ै मल गहै, जनम असारै खोय।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बिगोय⁷॥⁽³¹⁾

कबीर पापी भगति न भावई, हरि पूजा न सुहाए।
माखी⁸ चंदन परहरै⁹, जह बिगंध¹⁰ तह जाए॥⁽³²⁾

पारखी

हरि हीरा जन¹¹ जौहरी, लै लै माँडी¹² हाट।
जब रे मिलैगा पारखी, तब हीरा का साट¹³॥

हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी ह्वै हाट।
कसि करि बाँधौ गाठरी, उठि करि चालौ बाट॥

1. भँवरा 2. दूध 3. अलग करके 4. दुनिया के कामकाज
5. छानबीन करनेवाला 6. आचरण 7. नष्ट हो गए 8. मक्खी
9. छोड़कर 10. बदबू 11. संत 12. सजाई 13. बिक्री

एकहि बार परक्खिये, ना वा बारम्बार।
बालू तौहू किरकिरी, जौ छानै सौ बार॥

पिउ मोतियन की माल है, पोई¹ काँचे धाग।
जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहूँ लागि॥

हीरा परखै जौहरी, सब्दहिं परखै साध।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध॥

हीरा पाया परखि कै, घन² में दीया आनि³।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचानि॥

जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाय॥

हंसा देस सुदेस का, परे कुदेसा⁴ आय।
जा का चारा मोतिया, घोंघे क्यों पतियाय॥

हंसा बगुला एकसा, मानसरोवर माहिं।
बगा ढँढौरै माछरी, हंसा मोती खाहिं॥⁽³³⁾

अपारखी

चंदन गया बिदेसई, सब कोई कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास॥

हीरा साहिब नाम है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर हरि रहा, ऐसा आप अलेख॥

बाद बके दम जात है, सुरति निरति लै बोल।
नित प्रति हीरा सबद का, गाहक आगे खोल॥

1. पिरोना 2. हथौड़ा 3. रखना 4. मृत्यु-लोक

नाम रतन धन पाइ कै, गाँठि बाँध ना खोल।
नाहिं पटन¹ नहिं पारखी, नहिं गाहक नहिं मोल॥

जहँ गाहक तहँ मैं नहीं, मैं तहँ गाहक नाहिं।
परिचय बिन फूला फिरै, पकर सबद की बाहिं॥

कबीर खाँड़हिं छाँड़ि कै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में, फिर पीछे पछिताय॥

कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊँची² चाम चटाय॥⁽³⁴⁾

नाम

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह॥

आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो बंस॥

आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कह कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार॥

कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय॥

राम नाम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय॥

जो जन होइ है जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय॥

नाम रतन धन मुज्ज में, खान खुली घट माहिं।
संत मेंत¹ ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं॥

सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय।
रंचक² घट में संचरै, सब तन कंचन होय॥

जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥

कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डेराय॥

पूँजी मेरी नाम है, जा तें सदा निहाल।
कबीर गरजै पुरुष बल³, चोरी करै न काल॥

कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।
जम डरपै सब भय करै, गाजि⁴ रहा ब्रह्मंड॥

ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय॥

एक नाम को जानि कै, मेटु करम का अंक⁵।
तबहीं सो सुचि पाइहै, जब जिव होय निसंक॥

एक नाम को जान करि, दूजा देइ बहाय।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय॥

होय बिबेका सबद का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचई, मानहु कहा हमार॥

सुरति समावै नाम में, जग से रहै उदास।
कह कबीर गुरु चरन में, दृढ़ राखौ बिस्वास॥

आसा तौ इक नाम की, दूजी आस-निरास।
पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास॥

आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार¹॥

नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रत्ती हजार।
आध रत्ती घट संचरै, जारि करै सब छार॥

कोटि करम कटि पलक में, जो रंचक आवै नाँव।
जुग अनेक जो पुत्र करि, नहीं नाम बिनु ठाँव॥

सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दर्ई बताय।
औषधि खाय रु पथ² रहै, ता की बेदन जाय॥

कबीर सतगुरु नाम में, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर॥

कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय॥

जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥

नाम जपत कुष्टी भला, चुड़ चुड़ परै जो चाम।
कंचन देह केहि काम की, जा मुख नाही नाम॥

नाम लिया जिन सब लिया, सकल बेद का भेद।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारों बेद॥

पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब जा पारस भेंटि है, तब जिव होसी सीव¹॥

पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार॥

सुख के माथे सिल² परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥

कबीर सतगुरु नाम से, कोटि बिघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा³, केता काठ जराय॥

लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान॥

जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर⁴ जाय॥

नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप॥

पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआँ है है जाय॥

नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास॥

सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है।
यह निज मुक्ति संदेस, सुनो संत सत भाव से॥

क्यों छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से॥

काटहु जम के फंद, जेहिं फंदे जग फंदिया।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़ग सतगुरु दियो॥

सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै॥⁽³⁵⁾

लूटि सकै तो लूटि ले, राम नाम की लूट।
फिर पाछे पछिताहुगे, प्राण जाहिंगे छूट॥⁽³⁶⁾

सुमिरन

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय॥

राजा राना राव रैंक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कह कबीर बड़डों बड़ा, जो सुमिरै निःकाम॥

नर नारी सब नरक है, जब लगि देंह सकाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम॥

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय॥

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर तह दास की, कौन सुनै फरियाद॥

सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम॥

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै¹ सुरति में, कहै कबीर बिचार॥

सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों सुरभी² सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं॥

सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग³।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्राण तजै तेहि संग॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्राण तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसरैं आपको, होय जाय तेहि रंग॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्राण तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन॥

सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट⁴ देइ के, अंतर के पट खोल॥

माला फेरत मन खुसी, ता तें कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय॥

1. हालै डोलै=चलते-फिरते 2. गाय 3. हिरन 4. भाव इंद्रियों के नौ द्वार

माला फेरत जुग गया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

अजपा सुमिरन घट बिषे¹, दीन्हा सिरजनहार।
ताही से मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार॥

कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख॥

क्रिया करै अँगुरी² गनै, मन धावै चहूँ ओर।
जेहि फेरे साईं मिलैं, सो भया काठ कठोर॥

बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला³ खलक से, पड़ा धनी से काम॥

सहजेही धुन होत है, हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत⁴ नाहिं॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, कहाँ बजाये ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥

चिंता तो सतनाम की, और न चितवै⁵ दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस॥

सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिं छाड़िये, सत्तनाम की टेक॥

नाम जपत कन्या भली, साकत¹ भला न पूत।
छेरी² के गल गलथना³, जा में दूध न मूत॥

नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि⁴।
कंचन मंदिर जारि दे, जहाँ गुरु भक्ति न जान॥

पाँच सखी⁵ पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ⁶।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ॥

ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम से यों कह्यो, सुमिरन करो समाय॥

निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुख अपार।
मनसा बाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार॥

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत न लगै बिनावनी⁷, सहजै अति सुख होय॥

साईं यों मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त॥

जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं॥

1. में 2. अँगुरी 3. धोखा 4. आवश्यकता 5. स्मरण करे

1. माया का पुजारी, मनमुख 2. बकरी 3. थन जैसी थैली 4. छप्पर
5. पाँच सखी=भाव पाँच इंद्रियाँ 6. मैं, अहंभाव 7. बुनने में

सहकामी¹ सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम²।
निःकामी सुमिरन करै, पावै अबिचल नाम॥

कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति॥

जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल छाड़ि कै, जहाँ नाम तहँ जाय॥

कबीर चित चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय³।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय॥

कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कौने काम॥

सत नाम को सुमिरना, हँस करि भावै खीज।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्यों बीज॥

जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय॥

बिना साच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय॥

कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर⁴।
झूठा जाल जंजाल तजि, पकड़ो साच कबीर॥

हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल⁵।
छबि⁶ लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल॥

1. कामनाएँ रखनेवाला 2. स्वर्ग या बैकुंठ 3. आग 4. राँगा 5. व्यस्त
6. चमक

सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय॥

देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम॥

नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जलही हूँगा मीन॥

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दर्ई लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय॥⁽³⁷⁾

शब्द

कबीर सबद सरीर में, बिन गुन¹ बाजै ताँत²।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तें छूटी भ्रांति॥

जो जन खोजी सबद का, धन्य संत है सोय।
कह कबीर सबदै गहे, कबहुँ न जाय बिगोय³॥

सबद सबद बहु अंतरा, सबद सार का सीर।
सबद सबद का खोजना, सबद सबद का पीर॥

सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देय।
जा सबदै साहिब मिलै, सोई सबद गहि लेय॥

सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह⁴।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह॥

एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस॥

1. डोरी 2. टंकार 3. बहकाना 4. आकार रहित

सबद सबद सब कोई कहै, सबद के हाथ न पाँव।
 एक सबद औषधि करै, एक सबद करै घाव॥

सबद हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
 अंत फलैगी माँहि¹ की, बाहर की सब बाद²॥

सबदहि मारे मरि गये, सबदहि तजिया राज।
 जिन जिन सबद पिछानिया, सरिया तिन का काज॥

सबद गुरु को कीजिये, बहुतक गुरु लबार³।
 अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार⁴॥

सबद हमारा सब सबद के, सबदहि लेय परक्ख।
 जो तूँ चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क॥

सबद हमारा हम सबद के, सबद ब्रह्म का कूप।
 जो चाहै दीदार को, परख सबद का रूप॥

एक सबद गुरुदेव का, जा का अनंत बिचार।
 पंडित थाके मुनि जना, बेद न पावै पार॥

सबद बिना सुति⁵ आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
 द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय॥

यही बड़ाई सबद की, जैसे चुम्बक भाय।
 बिना सबद नहिं ऊबरै, केता करै उपाय॥

सही टेक है तासु की, जा के सत्तगुरु टेक।
 टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक॥

काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहिं नजरि न आइ।
 कह कबीर गुरु सबद गहिं, जम से जीव बचाइ॥

ऐसा मारा सबद का, मुआ न दीसै कोय।
 कह कबीर सो ऊबरै, धड़ पर सीस न होय॥

सबद बराबर धन नहीं, जो कोई जानै बोल।
 हीरा तो दामों मिलै, सबदहिं मोल न तोल॥

सबद दुराया ना दुर्गै, कहौं जो ढोल बजाय।
 जो जन होवै जौहरी, लेहै सीस चढ़ाय॥

सबद पाय सुति राखही¹, सो पहुँचै दरबार।
 कह कबीर तहँ देखई, बैठे पुरुष हमार॥

सब्द उपदेस जो मैं कहूँ, जो कोई मानै सत।
 कहै कबीर बिचारि के, ताहि मिलाओं कंत॥

सीतल सबद उचारिये, अहं आनिये नाहिं।
 तेरा प्रीतम तुझ में, सत्रू² भी तुझ माहिं॥

सबद भेद तब जानिये, रहै सबद के माहिं।
 सबदै सबद प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिं॥

सोई सबद निज सार है, जो गुरु दिया बताय।
 बलिहारी वा गुरु की, सिष्य बिगोय न जाय॥

वह मोती मत जानियो, पुहै पोत³ के साथ।
 यह तौ मोती सबद का, बेधि रहा सब गात⁴॥

रैन तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय।
 सार सबद के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय॥

जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
 सार सबद जाने बिना, कागा हंस न होय॥

सत्त सबद निज जानि कै, जिन कीन्हा परतीति।
 काग कुमति तजि हंस है, चले सो भव जल जीति॥

सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
 सत्त सबद निज सार है, यह तो झूठी देहि॥

सार सबद जाने बिना, जिव परलै में जाय।
 काया माया थिर नहीं, सबद लेहु अरथाय॥

कर्म फंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान।
 जेहि सबद तें मुक्ति है, सो न परै पहिचान॥

सतजुग त्रेता द्वापरा, यहि कलिजुग अनुमान।
 सार सबद इक साच है, और झूठ सब ज्ञान॥

सतगुरु सबद प्रमान², अनहद बानी ऊचरै।
 और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै॥

ज्ञानी सुनहु सँदेस, सबद बिबेकी पेखिया।
 कह्यौ मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे॥

मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन है।
 नहिं आवै नहिं जाय, सुत्र सबद थिति पावही॥

ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही से पाइये।
 सत्त सबद निज सार, और सबै बिस्तार है॥

जग में बहु परिपंच, ता में जीव भुलान सब।
 नहिं पावै कोइ संच, सार सबद जाने बिना॥

गहै सबद निज मूल, सिंधहिं बुंद समान है।
 सूच्छम में अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्यों॥

सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा¹ दीन्ह।
 साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह॥⁽³⁸⁾

संजीवनी

जरा मीच² ब्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
 चलु कबीर वा देस को, जहाँ बैद साइयाँ होय॥

भवसागर तें यों रहो, ज्यों जल कँवल निराल।
 मनुवा वहाँ लै राखिये, जहाँ नहीं जम काल॥

कबीर जोगी बन बसा, खनि खाया कँदमूल।
 ना जानों केहि जड़ी से, अमर भया अस्थूल³॥

कबीर तो पिउ पै चला, माया मोह से तोरि।
 गगन मँडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि॥

कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान⁴।
 चित चरनों से चिपटिया, का करै काल का बान॥

वैद मुआ रोगी मुआ, मूआ सकल संसार।
 एक कबीरा ना मुआ, जाके नाम अधार॥

घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ¹ काल को खाय॥⁽³⁹⁾

जीते-जी मरना

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरु, मत दुख पावै दास॥

कबीर काया समुंद है, अन्त न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय॥

मैं मरजीवा² समुंद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा मैं बस्तु अनेक॥

डुबकी मारी समुंद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास॥

हरि हीरा क्यों पाइ है, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया से काढ़सी, कोइ मरजीवा दास॥

सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा³ मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अन्तर नाम रतन॥

मैं मरजीवा समुंद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल॥

मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिं।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिं॥

गुरु दरिया सूभर⁴ भरा, जा मैं मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा की खाल॥

खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय॥

ऊँचा तरवर गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय॥

मरते मरते जग मुआ, औसर¹ मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय॥

जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर रु अम्पर होय॥

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द॥

कबीर मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, ज्यों गऊ बछा की लार॥

सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार॥

पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय॥

आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय॥

घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय॥⁽⁴⁰⁾

कबीर ऐसा एक आध जो जीवत मिरतक होए॥
निरभै होए कै गुन रवै¹ जत पेखउ तत सोए॥

कबीरा तुही कबीर तू तेरो नाउ कबीर॥
राम रतन तब पाईऐ जउ पहिले तजह सरीर॥⁽⁴¹⁾

साध

साध बड़े परमारथी, घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय॥

सद कृपाल दुख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जो होय॥

दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहिं ब्याप।
उपकारी निःकामता, उपजै छोह² न ताप³॥

सदा रहै संतोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त विचार॥

निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह।
बिषया से न्यारा रहै, साधन का मति येह॥

ऐसा साधू खोजि कै, रहिये चरनों लाग।
मिटै जनम की कलपना⁴, जा के पूरन भाग॥

सब बन तो चन्दन नहीं, सूरु का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माहिं॥

स्वाँगी सब संसार है, साधू समझ अपार।
अललपच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार॥

1. गुन रवै=गुणगान करना 2. प्रेम 3. व्यथा 4. दुःखी होना

सिंह साध का एक मति, जीवत ही को खाय।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय॥

रबि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़ै घमंड¹।
साध बचन पलटै नहीं, (जो) पलटि जाय ब्रह्मंड॥

साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगाय तो गिरि पड़ै, निःचल उतरै पार॥

साध कहावन कठिन है, ज्यों लम्बी पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर॥

जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिं।
डिंभ² चाल करनी करै, साध कहो मत ताहि॥

साध हमारी आत्मा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे यों रहों, ज्यों पय मद्धे घीव³॥

ज्यों पय मद्धे घीव है, त्यों रमिया सब ठौर।
बक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़ें ते और॥

साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालौ⁴ अंग।
कह कबीर निरमल भया, साधू जन के संग॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधन धरा सरीर॥

साधू आवत देखि कर, हँसी हमारी देंह।
माथे का ग्रह⁵ ऊतरा, नैनों बँधा सनेह॥

1. घुमड़कर 2. दिखावा 3. घी 4. धोओ 5. बुरा प्रभाव

साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।

सबद बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर॥

निराकार की आरसी¹, साधोंही की देहि।

लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं में लिख लेहि॥

कोई आवै भाव लै, कोइ अभाव² लै आव।

साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनै अभाव॥

कबीर दरसन साध का, करत न कीजै कानि³।

(ज्यों) उद्यम से लछमी मिलै, आलस में नित हानि॥

कबीर दरसन साध का, साहिब आवै याद।

लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद॥

मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास।

गगन मँडल खाली पड़ा, साहिब संतों पास॥

नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय।

कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय॥

साध मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।

मनसा बाचा कर्मना, साधू साहिब एक॥

सुख देवें दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।

कह कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध॥

जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।

मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

साध मिलैं यह सब टलैं, काल जाल जम चोट।

सीस नवावत ढहि पड़ै, अघ पापन की पोट॥

संत न छोड़ैं संतई, कोटिक मिलैं असंत।

मलय¹ भुवंगम² बेधिया³, सीतलता न तजंत॥

साधु जन सब में रमैं, दुख न काहू देहिं।

अपने मति गाढ़े रहैं, साधुन का मति येहि॥

साकट बाम्हन मत मिलौ, साध मिलौ चंडाल।

जाहि मिले सुख उपजै, मानो मिले दयाल॥

कमल पत्र हैं साधु जन, बसैं जगत के माहिं।

बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नाहिं॥

साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल।

वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल॥

हरि दरिया सूभर⁴ भरा, साधों का घट सीप।

ता में मोती नीपजै, चढ़ै देसावर दीप॥

कौन साधु का खेल है, कौन सुरत का दाव।

कौन अमी का कूप है, कौन बज्र का घाव॥

छिमा साधु का खेल है, सुमति सुरत का दाव।

सतगुरु अमृत कूप हैं, सबद बज्र का घाव॥

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।

धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय।
अंक भरे¹ भरि भेटिये, पाप सरीरा जाय॥

परमेश्वर तें संत बड़, ता का कहा उनमान।
हरि माया आगे धरे, संत रहैं निर्बान॥

संत मिला जनि बीछरो, बिछरौ यह मम प्रान।
नाम-सनेही ना मिलै, तो प्रान देहि मत आन॥

कबीर कुल सोई भला, जा कुल उपजै दास।
जेहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक² पलास³॥

चंदन की कुटकी⁴ भली, नहिं बबूल लखराँव⁵।
साधन की झुपड़ी भली, न साकत को गाँव॥

हरि दरबारी साध हैं, इन सम और न होय।
बेगि मिलावैं नाम से, इन्हें मिलै जो कोय॥

साधन केरी दया से, उपजै बहुत अनंद।
कोटि बिघन पल में टरै, मिटै सकल दुख द्वन्द॥

तीरथ जाये एक फल, साध मिले फल चारि।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर बिचारि॥

साधु सीप साहिब समुँद, निपजत मोती माहिं।
बस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल में नाहिं॥

हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरि बिखे, सो हरि हरिजन माहिं॥

साध बड़े संसार में, हरि तें अधिका सोय।
बिन इच्छा पूरन करैं, साहिब हरि नहिं दोय॥

साधू आवत देखि के, चरनन लागूँ धाय।
ना जानूँ यहि भेष में, हरि ही जो मिलि जाय॥

कबीर दर्शन साधु के, बड़ भागे दर्साय।
जो होवे सूली सजा, काँटेई टरि जाय॥

साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सबद बिचार।
जग में होते साध नहिं, जरि मरता संसार॥

साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिं।
सो घर मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं॥

निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव।
जो चाहै आकार तूँ, साधू परतछ¹ देव॥

जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं बिलाप।
सो सुख सहजै पाइये, संतन सेवत आप॥

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लगि संत न सेवई, तब लगि सरै न काम॥

आसा बासा संत का, ब्रह्मा लखै न बेद।
षट दर्शन खटपट करै, बिरला पावै भेद॥

दर्शन कीजै साध का, दिन में कइ इक बार।
आसोजा का मेंह ज्यों, बहुत करै उपकार॥

1. अंक भरे=शरण में ले ले 2. भाव कड़वा 3. भाव निष्फल 4. टुकड़ा
5. बड़ा बाग

1. साक्षात

कई बार नहीं कर सकैं, तो दोय बखत करि लेय।
 कबीर साधू दरस तें, काल दगा नहीं देय॥

दोय बखत नहीं करि सकैं, तो दिन में करु इक बार।
 कबीर साधू दरस तें, उतरै भौजल पार॥

एक दिना नहीं करि सकैं, तो दूजे दिन करि लेहि।
 कबीर साधू दरस तें, पावै उत्तम देहि॥

दूजे दिन नहीं कर सकैं, तीजै दिन करि जाय।
 कबीर साधू दरस तें, मोच्छ मुक्ति फल पाय॥

तीजे चौथे नहीं करै, तो बार बार करि जाय।
 या में बिलैब न कीजिये, कह कबीर समुझाय॥

बार बार नहीं करि सकैं, तो पाख पाख¹ करि लेय।
 कह कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल करि लेय॥

पाख पाख नहीं करि सकैं, तो मास मास करि जाय।
 या में देर न लाइये, कह कबीर समुझाय॥

मास मास नहीं करि सकैं, तो छठे मास अलबत्त²।
 या में ढील न कीजिये, कह कबीर अविगत्त³॥

छठे मास नहीं करि सकैं, बरस दिना करि लेय।
 कह कबीर सो भक्त जन, जमहिं चुनौती देय॥

बरस बरस नहीं करि सकैं, ता को लागै दोष।
 कहै कबीरा जीव सो, कबहुँ न पावै मोष॥⁽⁴²⁾

1. पाख पाख=हर पंद्रहवें दिन 2. ज़रूर 3. नित्य सत्य

असाध

जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान।
 पहिले थाह दिखाइ करि, औड़े¹ देसी आन॥

उज्जल देखि न धीजिये², बग ज्यों माँड़े ध्यान।
 धूरे³ बैठि चपेटही⁴, यों लै बूड़ै ज्ञान॥

चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस।
 ते मुक्ता कैसे चुगै, परै काल के फंस॥

साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार।
 बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार⁵॥

माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
 दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी के साथ॥

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोई लेहि मुँड़ाय।
 बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय॥

मन मेवासी⁶ मूँड़िये, केसहिं मूँड़े काहिं।
 जो कछु किया सो मन किया, केस किया कछु नाहिं॥

बाँबी कूटैं बावरे, साँप न मारा जाय।
 मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय॥

आप साधु करि देखिये, देखु असाधु न कोय।
 जा के हिरदे गुरु नहीं, हानि उसी की होय॥

1. गड़ढे में 2. न धीजिये=विश्वास न करो 3. निकट 4. दबोच लेता है
 5. कूड़ा-करकट 6. शरीररूपी किले का प्रधान

खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद।
 बाँझ झुलावै पालना, ता में कौन सवाद॥

बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
 बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल¹॥

कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेख²।
 करम भरम सब दूरि करि, सबही माहिं अलेख॥

चतुराई हरि ना मिलै, ये बातों की बात।
 निस्प्रेही³ निराधार का, गाहक दीनानाथ॥

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
 मन काचे राचे बृथा, साचे राचे नाम॥

बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिं।
 कबीर स्वारथ ले गया, लख चौरासी माहिं॥

सोवत साधु जगाइये, करै नाम का जाप।
 ये तीनों सोवत भले, साकट सिंह रु साँप॥⁽⁴³⁾

बेहद

बेहद⁴ अगाधी पीव है, ये सब हद⁵ के जीव।
 जे नर राते हद्द से, कधी न पावैं पीव॥

हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।
 हद बेहद की गम⁶ लखै, ता से पीव हजूर॥

1. फाड़कर 2. पाखंड 3. इच्छा रहित 4. सीमाओं से परे
 5. सीमाओं के अंदर 6. रास्ता

हद्द बैधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
 मनुवाँ तहँ लै राखिया, (जहँ) बाजै अनहद तूर॥

हद्द छाड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान।
 मुनि जन जान न पावहीं, तहाँ लिया बिसराम॥

हद्द छाड़ि बेहद गया, रहा निरन्तर होय।
 बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय॥

हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं।
 बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिं॥

हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध।
 हद बेहद दोऊ तजै, तिन का मता अगाध॥

हद बेहद दोऊ तजी, अबरन किया मिलान।
 कह कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान॥

जहाँ सोक ब्यापै नहीं, चल हंसा वा देस।
 कह कबीर गुरुगम¹ गहौ, छाड़ि सकल भ्रम भेस॥⁽⁴⁴⁾

कर्म

कबीर करता था तो क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछुताइ।
 बोवै पेड़ बैबूल का, अंब कहाँ तैं खाइ॥

माँइ बिड़ानी² बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाह।
 दरिया केरी नाव ज्यूँ, संजोगे मिलियाँह॥

1. गुरु का मार्ग 2. पराई

इत पर-घर, उत घर, बणजण¹ आए हाट।
करम किराँणों² बेचि करि, उठि जु लागा बाट॥⁽⁴⁵⁾

जैसी करनी आपनी, तैसाही फल लेय।
कूड़े करम कमाय के, साँई दोष न देय॥

विषय बासना उरझ कर, जनम गँवाया बाद।
अब पछुतावा क्या करै, निज करनी कर याद॥

कर्म कर्म सब कोइ कहै, कर्म न चिन्है कोय।
जो मन का बन्धन बनै, कर्म कहावै सोय॥

और कर्म सब कर्म हैं, भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहहिं कबीर पुकारि के, भक्ति करो तजि भर्म॥

बखत कहो या करम कहो, नसिब कहो निरधार।
सहस्र नाम हैं कर्म के, मन हि सिरजनहार॥

प्रालब्ध पहिले बना, पीछे बना शरीर।
कबीर अचँबा है येही, मन नहिं बांधे धीर॥⁽⁴⁶⁾

एक करम है बोवना, उपजै बीज बहूत।
एक करम है भूँजना, उदय न अंकुर सूत॥⁽⁴⁷⁾

करम फंद जीव फंदिया, जप तप पूजा दान।
जेहि बस्तु जीव काज होय, सो नहीं परी पिछान॥

कर्म करै देही धरै, फेर फेर पछिताय।
बिना नाम बंचै नहीं, जीवहि जम लै जाय॥

तब मिटै करम को अंक, सत्त नाम को पाइहैं।
जीव होय निःसंक, सत्त बचन सतगुरु कहैं॥

1. व्यापार के लिए 2. पंसारी की दुकान से मिलनेवाली चीजें।

करम काल बस जीव, भर्म जो जिव पचि मरे।
नाम अमी रस पीव, काहे को बिष सींचही॥⁽⁴⁸⁾

काम

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, सन्तन का गुरु नाम॥

सहकारी¹ दीपक दसा, सोखै तेल निवास।
कबीर हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास॥

कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय॥

भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद॥

कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल।
और गुनन सब बक्सिहों, कामी डार न मूल॥

काम क्रोध सूतक सदा, सूतक² लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय॥

जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहुँ ना मिलैं, रबि रजनी इक ठाम॥

नारि पुरुष सबही सुनो, यह सतगुरु की साखि।
बिष फल फले अनेक हैं, मत कोइ देखो चाखि॥

कबीर कामी पुरुष का, संसय कबहुँ न जाय।
साहिब से अलगा रहै, वा के हिरदे लाय³॥

1. साथी 2. अपवित्रता 3. आग

कामी अमी न भावई, बिष को लेवै सोधि¹।
कुबुधि न भाजै जीव की, भावै ज्यों परमोधि²॥

काम कहर असवार³ है, सब को मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरा, जा के नाम सहाय॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट में खान।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान॥

काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय॥⁽⁴⁹⁾

क्रोध

क्रोध अगिन घर घर बढ़ी, जरै सकल संसार।
दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार⁴॥

कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार⁵।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार॥

दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल⁶ आगि।
सीतल संगति साध की, तहाँ उबरिये भागि॥

गारि अँगारा, क्रोध झल⁷, निंदा धूआँ होय।
इन तीनों को परिहरै, साध कहावै सोय॥

कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन का तीर।
भरि भरि मारै कान में, सालै⁸ सकल सरिर॥

1. लेवै सोधि=खोज लेता है 2. समझाओ 3. कहर असवार=जालिम घुड़सवार
4. उद्धार 5. साथ 6. प्रबल 7. ज्वाला 8. कष्ट देता है

कुटिल बचन सबसे बुरा, जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार॥⁽⁵⁰⁾

लोभ

कबीर त्रिस्ना पापिनी, ता से प्रीति न जोरि।
पैँड पैँड¹ पाछे परै, लागै मोटी खोरि²॥

त्रिस्ना सींची ना बुझै, दिन दिन बढ़ती जाय।
जवासा का रूख³ ज्यों, घन मेहा⁴ कुम्हिलाय॥

कबीर औंधी खोपरी, कबहुँ धापै⁵ नाहिं।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माहिं॥

आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तबही गये, जबहिं कहा कछु देह॥

बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय।
कबीर संचय सूम धन, अंत चोर लै जाय॥

माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लपटाय।
तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बलाय॥⁽⁵¹⁾

मोह

मोह फंद सब फंदिया, कोइ न सकै निरवार⁶।
कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्त्व बिचार॥

कुरुच्छेत्र⁷ सब मेदनी, खेती करै किसान।
मोह मिरग सब चरि गया, आस न रहि खलिहान॥

1. पैँड पैँड=पग-पग 2. बुराई 3. जवासा...रूख=जवासा का कँटीला झाड़
4. बारिश 5. तृप्त होना 6. छुटकारा 7. कर्मभूमि

काहू जुगति न जानिया, केहि बिधि बचै सु खेत।
नहिं बैदगी नहिं दीनता, नहिं साधू सँग हेत॥

जब घट¹ मोह समाइया, सबै भया औंधियार।
निर्मोह ज्ञान बिचारि कै, कोइ साधू उतरै पार॥

सलिल मोह की धार में, बहि गये गहिर गँधीर²।
सुच्छम³ मछरी सुरत है, चढ़ि है उलटे नीर॥⁽⁵²⁾

मान और अहंकार

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बढ़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह॥

माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय॥

काला मुँह कर मान का, आदर लावौ आगि।
मान बढ़ाई छाड़ि के, रहौ नाम लौ लागि॥

मान बढ़ाई जगत में, कूकर की पहिचान।
मीत किये मुख चाटही, बैर किये तन हानि॥

मान बढ़ाई ऊरमी⁴, यह जग का ब्योहार।
दीन गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार॥

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥

कबीर अपने जीव तें, ये दो बातें धोय।
मान बढ़ाई कारने, आछत मूल न खोय॥

1. मन 2. गहरा चिंतन करनेवाले 3. छोटी 4. लहरें

भक्त रु भगवंत एक है, बूझत नहीं अजान।
सीस नवावत संत को, बढ़ा करै अभिमान॥

प्रभुता को सब कोउ भजै, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय॥

जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग॥

अहं अगिन हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान।
तिनको जम न्यौता दिया, हो हमरे मिहमान॥

ऊँचा कुल नीचा मता¹, नाहिं गुरु से हेत।
हीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक॥

ऊँचे कुल के कारने, भूला सब संसार।
तब कुल की क्या लाज है, यह तन होवै छार॥

जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय॥⁽⁵³⁾

आशा

आसा मनसा² दुइ नदी, तहाँ न पग ठहराय।
इन दोनों को लाँघि कै, चौड़े बैठो जाय॥

आस बास³ जग फंदिया, रहा अरध⁴ लपटाय।
नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय॥

आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास॥

1. मत, विचार 2. कामना 3. आस बास=आशाओं की सुगंध 4. नीचे

कबीर जग को कहा कहूँ, भवजल बूड़े दास।
सतगुरु सम पति छोड़ि के, करै मनुष की आस॥

आसा एक जो नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, सो भी मरै पियास॥

आसा एक जो नाम की, दूजी आस निवारि¹।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपड़ की सार²॥

कबीर जोगी जगत-गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरू वह दास॥

बहुत पसारा जनि करै, कर थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास॥⁽⁵⁴⁾

तृष्णा

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
सीस चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय॥

त्रिस्ना केरि बिसेषता, कहूँ लगि करौं बखान।
देह मरै इंद्री मरै, त्रिस्ना मरि न निदान॥

की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निसि दिन चहै, जीवन करै बिहाल³॥

त्रिस्ना अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय॥

नामहिं छोटा जानि कै, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, त्रिस्ना के आधीन॥⁽⁵⁵⁾

शील

सील छिमा जब ऊपजै, अलख¹ दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचे नहीं, लाख कथै जो कोय॥

सीलवंत सब तें बड़ा, सर्व रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि॥

ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक॥

बिषय पियारे प्रीति से, तब लगि गुरुमुख नाहिं।
जब अंतर सतगुरु बसैं, बिषया से रुचि नाहिं॥

सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरै जागि।
बासन² बासन के खिसे³, चोर न सकई लागि॥

घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवैत, बिरला होय तो होय॥⁽⁵⁶⁾

क्षमा

छिमा क्रोध को छय करै, जो काहू पै होय।
कह कबीर ता दास को, गंजि⁴ न सककै कोय॥

भली भली सब कोउ कहै, रही छिमा ठहराय।
कह कबीर सीतल भया, गई जो अग्नि बुझाय॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप॥

गारी¹ से सब ऊपजै, कलह कष्ट अरु मीच।
 हार चलै सो संत है, लागि मरै सो नीच॥
 करगस² सम दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि।
 बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि॥
 चोट सुहेली सेल³ की, पड़ते लेय उसास⁴।
 चोट सहारै सबद की, तासु गुरु मैं दास॥
 खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय⁵।
 कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय॥⁽⁵⁷⁾

संतोष

साध संतोषी सर्बदा, निरमल जा के बैन।
 ता के दरसन परस⁶ तें, जिय उपजै सुख चैन॥
 चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
 जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह॥
 माँगन गये सो मरि रहे, मरे⁷ सो माँगन जाहिं।
 तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिं॥
 गोधन गजधन बाजधन⁸, और रतन धन खान।
 जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥
 मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
 परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाजे॥⁽⁵⁸⁾

1. गाली 2. तीर 3. भाला 4. लंबी ठंडी साँस 5. वृक्ष-समूह
 6. स्पर्श, संग 7. जो मुर्दा हैं 8. बहुत-से घोड़े

धीरज

धीरा होइ धमक¹ सहौ, ज्यों अहरन² सिर घाव।
 मेघा पर्वत है रहौ, इत उत कहूँ न जाव॥
 धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
 माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥
 कबीर धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
 टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय॥
 कबीर भँवर में बैठि कै, भौचक³ मना न जोय⁴।
 डूबन का भय छाड़ि दे, करता करै सु होय॥
 मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और⁵।
 जब यह निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर॥⁽⁵⁹⁾

दीनता

दीन गरीबी बंदगी, साधन से आधीन।
 ता के सँग मैं यों रहूँ, ज्यों पानी सँग मीन॥
 दीन लखै मुख सबन को, दीनहिं लखै न कोय।
 भली बिचारी दीनता, नरहूँ देवता होय॥
 इक बानी जो दीनता, संतन कियो बिचार।
 यही भेंट गुरुदेव की, सब कछु गुरु दरबार॥
 दीन गरीबी बन्दगी, सब से आदर भाव।
 कह कबीर तेई बड़ा, जा में बड़ा सुभाव॥

1. चोट 2. जिस पर लोहा आदि धातुओं को रखकर पीटते हैं।
 3. भयभीत 4. जो 5. दूसरी भावना

कबीर नवै सो आप को, पर को नवै¹ न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय॥

आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय²॥

ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिवै, ऊँचा प्यासा जाय॥

नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन।
चढ़ि बोहित³ अभिमान की, बूड़े ऊँच कुलीन॥

बुरा जो देखन में चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौ आपना, मुझसा बुरा न होय॥

कबीर सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय॥⁽⁶⁰⁾

कबीरा रोड़ा होए रहो बाट⁴ का तज मन का अभिमान॥
ऐसा कोई दास होए ताहे मिलै भगवान॥

कबीर रोड़ा हूआ त किआ भइआ पंथी कउ दुख दे॥
ऐसा तेरा दास है जिउ धरनी मह खेह॥

कबीर खेह हूई तउ किआ भइआ जउ उड़ लागै अंग॥
हर जन ऐसा चाहीऐ जिउ पानी सरबंग॥

कबीर पानी हूआ त किआ भइआ सीरा ताता होए॥
हर जन ऐसा चाहीऐ जैसा हर ही होए॥⁽⁶¹⁾

दया

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहदद।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द॥

दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदै होय।
साई के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर¹ सोय॥⁽⁶²⁾

साच

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदै साच है, ता हिरदै गुरु आप॥

साई से साचा रहौ, साई साच सुहाय।
भावै लम्बे केस रखु, भावै घोट मुँड़ाय॥

साचे स्नाप न लागई, साचे काल न खाय।
साचे को साचा मिलै, साचे माहिं समाय॥

जा की साची सुरत है, ता का साचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, साई सेती मेल॥

साच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय॥

साधू ऐसा चाहिये, साची कहै बनाय।
कै टूटै कै फिरि जुरै, कहे बिन भरम न जाय॥

जिन नर साच पिछानियाँ, करता केवल सार।
सो प्राणी काहे चलै, झूठे कुल की लार॥

कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साच।
जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकरै काच¹॥

झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा साच गहु, आवा गवन नसाय॥

साचै कोइ न पतीजई, झूठे सब पतियाय।
गली गली गोरस² फिरै, मदिरा बैठि बिकाय॥

जा के बोली बन्ध नहिं, साच नहीं मन माहिं।
ता के संग न चालिये, छाड़ै पैड़ै³ माहिं॥

लेखा देना सहज है, जो दिल साचा होय।
साई के दरबार में, पला न पकरै कोय॥

साच सुनै अरु सत कहै, सत नाम की आस।
सत नाम को जानि करि, जग से रहै उदास॥⁽⁶³⁾

विचार

आगि कहे दाझै⁴ नहीं, पाँव न दीजै माहँ।
जो पै भेद न जानई, नाम कहा तौ काह॥

कबीर सोच बिचारिया, दूजा कोई नाहिं।
आपा⁵ परे जब चीन्हिया⁶, उलटि समाना माहिं॥

आधी साखी सिर कटै, जो रे बिचारी जाय।
मनहिं प्रतीत न ऊपजै, राति दिवस भरि गाय॥

1. भाव झूठी इज्जत 2. दूध 3. रास्ते 4. जलाना
5. अपना असली स्वरूप 6. पहचाना

एक सबद में सब कहा, सबही अर्थ बिचार।
भजिये निर्गुन¹ नाम को, तजिये बिषय बिकार॥

बोली² तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तोलि के, तब मुख बाहर खोल॥

बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस।
खारी से मीठी करी, सतगुरु के उपदेस॥

कबीर उलटे ज्ञान का, कैसे करूँ बिचार।
थिर बैठे मारग कटै, चला चली नहिं पार॥

जो कछु करै बिचारि कै, पाप पुत्र तें न्यार।
कह कबीर इक जानि कै, जाय पुरुष दरबार॥

आचारी सब जग मिला, बिचारी मिला न कोय।
कोटि अचारी वारिये, इक बिचारि जो होय॥⁽⁶⁴⁾

विवेक

साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेक पारखी, सो माथे के मौर॥

जब लगि नाहिं बिबेक मन, तब लगि लगै न तीर³।
भवसागर नाहिं तरै, सतगुरु कहैं कबीर॥

कर बन्दगी बिबेक की, भेष धरै सब कोय।
वा बँदगी बहि जानि दे, (जहँ) सबद बिबेक न होय॥

कहै कबीर पुकारि कै, कोइ संत बिबेकी होय।
जा में सबद बिबेक है, छत्र-धनी है सोय॥

1. त्रिगुण रहित 2. बोलचाल 3. किनारा

सतनाम सब कोइ कहै, कहिबे माहिं बिबेक।
एक अनेकै फिरि मिलै, एक समाना एक॥

समझा समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जा के हृदय बिबेक॥

समझा का घर और है, अनसमझा का और।
जा घर में साहिब बसैं, बिरला जानै ठौर॥⁽⁶⁵⁾

मन

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक॥

मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध॥

यह मन फटकि पिछोरि ले, सब आपा मिटि जाय।
पिंगल¹ है पिउ पिउ करै, ता को काल न खाय॥

मन पाँचो के बस परा, मन के बस नहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौं² लगी, जित भागूँ तित आँच॥

कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै बिषय कमाय॥

मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं॥

तीन लोक चोरी भई, सब का धन³ हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह॥

1. पपीहा 2. आग 3. विवेकरूपी धन

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै¹ हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर॥

कबीर लहर समुद्र की, केती आवैं जाहिं।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै वाहिं॥

पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात॥

कबीर मन परबत हुआ, अब मैं पाया जानि।
टाँकी² लागी सबद की, निकसी कंचन खानि॥

अगम पथ मन थिर करै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन सबही छाड़ि के, तब पहुँचै वा देस॥

मनहीं को परमोधिये, मनहीं को उपदेस।
जो यहि मन को बसि करै, (तो) सिष्य होय सब देस॥

कबीर मन मैला भया, या में बहुत बिकार।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो बिचार॥

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार॥

मन मोटा मन पातरा³, मन पानी मन लाय⁴।
मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही है जाय॥

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु से मिलै, तौ गुरु मिलै निसंक⁵॥

1. आसानी से 2. पत्थर काटनेवाली छैनी 3. पतला, हल्का
4. आग 5. निस्संदेह

कबहूँ मन गगना चढ़ै, कबहूँ गिरै पताल।
कबहूँ मन उनमुनि लगै, कबहूँ जावै चाल।¹॥

मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय।
एकै रँग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय॥

कोटि करम पल में करै, यह मन बिषया स्वाद।
सतगुरु सबद न मानही, जनम गँवावै बाद॥

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिं।
घनी सहैगा सासना², जम की दरगाह माहिं॥

कागद केरी नावरी³, पानी केरी गंग⁴।
कह कबीर कैसे तरूँ, पाँच कुसंगी संग॥

इन पाँचों से बाँध करि, फिर फिर धरै सरीर।
जो यह पाँचों बसि करै, सोई लागै तीर॥

मन पंछी तब लगि उड़ै, बिषय बासना माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आयो नाहिं॥

मन कुंजर महमंत⁵ था, फिरता गहिर गँभीर⁶।
दुहरी तिहरी चौहरी, परि गइ प्रेम जँजीर॥

कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुसियार॥

हिरदे भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबहीं देखसी, दिल की दुबिधा जाय॥

1. चंचल 2. कष्ट 3. नौका 4. गंगा 5. मदमस्त
6. भाव विषयों के अत्यंत घने जंगल में

तन माहीं जो मन धरै, मन धरि उज्जल होय।
साहिब से सन्मुख रहै, अजर अमर सो होय॥

पानी हूँ तें पातला, धूआँ हूँ तें झीन।
पवन हूँ तें उतावला, दोस्त कबीरा कीन्ह॥

मन मनसा¹ को मारि ले, घट ही माहीं घेर।
जब ही चालै पीठि दै², आँकुस³ दै दै फेर॥

मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि के पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुम झलक्कै सीस॥

मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और।
जब मन निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर॥

काया कसौ कमान ज्यों, पाँच तत्त करि बान।
मारो तौ मन मिरग को, नातरु⁴ मिथ्या जान॥

सुर नर मुनि सब को ठगे, मनहिं लिया अवतार।
जो कोई या तें बचै, तीन लोक तें न्यार॥

कबीर मन मरकट भया, नेक न कहूँ ठहराय।
सत्त नाम बाँधे बिना, जित भावै तित जाय॥

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनहीं की परतीत॥

मन नाहीं छाड़ै बिषय, बिषय न मन को छाड़ि।
इन का यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि⁵॥

1. कामनाएँ 2. पीठि दै=मुँह मोड़कर 3. अंकुश, रोक
4. नहीं तो 5. अड़, हठ

मनुवाँ तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।
अमर लोक सुचि पाइया, कबहुँ न न्यारा होय॥⁽⁶⁶⁾

माया

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछै फिरै, सनमुख भागै सोय॥

कबीर माया पापिनी, फँद लै बैठी हाट।
सब जग तो फंदे परा, गया कबीरा काट॥

माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहिं।
सहस¹ बरस की सब करै, मरै महरत माहिं॥

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
मूड़ चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय॥

माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय।
माया इन सब खाइया, माया कोइ न खाय॥

मोटी माया सब तझै, झीनी तजी न जाय।
पीर पयम्बर औलिया, झीनी सब को खाय॥

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय²॥

माया के झक³ जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कह कबीर कस बाचि है, रुई लपेटी आगि॥

मैं जानूँ हरि से मिलूँ, मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारै अंतरा⁴, माया बड़ी पिचास॥

1. सैकड़ों 2. लुप्त हो गया 3. धुन सवार होना 4. दूरी

आँधी आई ज्ञान की, ढही भरम की भीति¹।
माया टाटी² उड़ि गई, लगी नाम से प्रीति॥

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि माहिं परंत।
कोई एक गुरु ज्ञान तें, उबरे साधू संत॥⁽⁶⁷⁾

निद्रा

कबीर सोया क्या करै, जागि के जपो दयार।
एक दिना है सोवना, लम्बे पैर पसार॥

कबीर सोया क्या करै, उठि न भजो भगवान।
जनधर जब लै जायँगे, पड़ा रहेगा म्यान॥

कबीर सोया क्या करै, काहे न देखै जागि।
जा के सँग तें बीछुरा, ताही के सँग लागि॥

नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जागु।
और रसायन छाड़ि कै, नाम रसायन लागु॥

पिउ पिउ कहि कहि कूकिये, ना सोइये इसरार³।
रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार॥

जागन से सोवन भला, जो कोइ जानै सोय।
अन्तर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय॥

जागन में सोवन करै, सोवन में लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय॥⁽⁶⁸⁾

1. दीवार 2. परदा 3. लगातार, हठपूर्वक

निन्दा

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय¹।
 बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥
 निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान।
 निर्मल तन मन सब करै, बकै आनही आन॥
 निन्दक हमरा जनि² मरो, जीवो आदि जुगादि।
 कबीर सतगुरु पाइआ, निन्दक के परसादि॥
 जो कोइ निन्दै साधु को, संकट आवै सोइ।
 नरक माहिं जनमै मरै, मुक्ति न कबहुँ होइ॥
 तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय।
 कबहुँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय॥
 सातों सायर मैं फिरा, जंबु दीप दै पीठ।
 पर निन्दा नाहीं करै, सो कोइ बिरला दीठ॥
 दोष पराया देख करि, चले हसंत हसंत।
 अपने याद न आवई जा का आदि न अन्त॥
 निन्दक एकहु मत मिलै, पापी मिलौ हजार।
 इक निन्दक के सीस पर, कोटि पाप को भार॥⁽⁶⁹⁾

मांसाहार

माँस अहारी मानवा, परतछ³ राछस अंग⁴।
 ता की संगति मत करो, परत भजन में भंग॥

माँस मछरिया खात हैं, सुरा पान से हेत।
 सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी का खेत॥
 माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
 आँख देखि नर खात है, ते नर नरकहिं जाय॥
 यह कूकर को खान है, मनुष देह क्यों खाय।
 मुख में आमिख¹ मेलता, नरक परै सो जाय॥
 हनिया सोई हन्नसी, भावै जानि बिजान²।
 कर गहि चोटी तानसी, साहिब के दीवान॥
 तिल भर मछरी खाइकै, कोटि गरु दै दान।
 कासी करवत³ लै मरै, तौ हू नरक निदान⁴॥
 बकरी पाती खात है, ता की काढ़ी खाल।
 जो बकरी को खात हैं, तिन का कौन हवाल⁵॥
 पीर सबन को एकसी, मूरख जानै नाहिं।
 अपना गला कटाइ कै, भिस्त बसै क्यों नाहिं॥
 मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं।
 साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं॥
 काला मुँह कर करद⁶ का, दिल से दुई निवार।
 सबही सुरति सुभान⁷ की, अहमक⁸ मुला न मार॥
 गल गुस्सा को काटिये, मियाँ कहर को मार।
 जो पाँचों बिस्मिल⁹ करै, तो पावै दीदार॥

दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
येह खून वह बन्दगी, कहु क्यों खुसी खुदाय॥

खुस खाना है खीचरी, माहिं परा टुक नोन।
माँस पराया खाइ करि, गला कटावै कौन॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जा का गर तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हार॥

हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाहिं।
कह कबीर दोनों गये, लख चौरासी माहिं॥⁽⁷⁰⁾

मानुस तेरा गुन बड़ा, मासु न आवै काज॥
हाड़ न होते आभरन¹, त्वचा न बाजन बाज॥

अंकुर भखे सो मानवा, मांस भखै सो स्वान।
जीवित जीव मुरदा करे, सदा राक्षस परमान॥

अजामेध, गोमेध यज्ञ, अश्वमेध नरमेध।
कहहिं कबीर अधर्म को, धर्म बतावे वेद॥

जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप अहिर होय।
निगम² सुनि अस पाप तें, भिस्त गया नहिं कोय॥⁽⁷¹⁾

काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं कै साथि।
दिल थें दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि॥

पापी पूजा बैस करि, भखै माँस मद दोइ।
तिनकी देखी मुक्ति नहीं, कोटि नरक फल होइ॥⁽⁷²⁾

कबीर जीअ जो मारह जोर¹ कर कहते हहे जो हलाल॥
दफतर दर्ई² जब काढ है होइगा कउन हवाल॥⁽⁷³⁾

नशा

कलिजुग काल पठाइया, भाँग तमाल³ अफीम।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीं, बसै इन्हीं की सीम॥

भाँग तमाखू छूतरा⁴, अफयूँ और सराब।
कह कबीर इन को तजै, तब पावै दीदार॥

औगुन कहूँ सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पसुआ करै, द्रव्य गाँठि को देय॥

अमल⁵ अहारी आत्मा, कबहुँ न पावै पारि।
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागौ ताहि बिचारि॥

मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तनमद मनमद जातिमद, मायामद सब लोय⁶॥

बिद्यामद और गुनहुँ मद, राज मद्द उनमद्द⁷।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद्द⁸॥

कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिं।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला आहिं॥⁽⁷⁴⁾

कबीर भांग माछुली सुरापान, जो जो प्राणी खांहे।
तीरथ बरत नेम कीए, ते सभे रसातल⁹ जांहे॥⁽⁷⁵⁾

मूर्तिपूजा

पाहन केरी पूतरी, करि पूजै करतार।
 वाहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार॥

काजर केरी कोठरी, मसि के किये कपाट।
 पाहन भूली पिरथवी, पंडित पारी बाट¹॥

पाहन को क्या पूजिये, जो नहिं देइ जवाब।
 अंधा नर आसामुखी, योंही होय खराब॥

हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ²।
 सतगुरु की किरपा भई, डारा सिर का बोझ॥

पाहन पूजे हरि मिलै, तौ मैं पूजूँ पहार।
 ता तें यह चाकी भली, पीसि खाय संसार॥

मूरति धरि धंधा रचा, पाहन का जगदीस।
 मोल लिया बोलै नहीं, खोटा बिस्वा बीस³॥

पाथर ही का देहरा⁴, पाथर ही का देव।
 पूजनहारा आँधरा, क्योंकरि मानै सेव॥

पाहन पानी पूजि कै, सेवा जासी बाद।
 सेवा कीजै साध की, सत्तनाम करु याद॥

पाथर लै देवल चुना, मोटी मूरति माहिं।
 पिंड फूटि परबस रहै, सो लै तारै काहि॥

1. रास्ते में 2. नील गाय 3. पूर्णतया, निश्चित रूप से 4. मंदिर

कागद केरी नावरी¹, पाहन गरुवा² भार।
 कहै कबीर बिचारि कै, भव बूड़ा संसार॥

कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
 हिरदे माहीं हरि बसैं, तू ताहीं लौ लाय॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान।
 दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान॥

काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
 ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
 जेहि कारन तूँ बाँग दे, सो दिलही अंदर जोय³॥

तुर्क मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाय।
 अलख पुरुष घट भीतरे, ता का द्वार न पाय॥

पूजा सेवा नेम ब्रत, गुड़ियन का सा खेल।
 जब लगि पिव परसै नहीं, तब लगि संसय मेल॥

कबीर या संसार को, समझायौ सौ बार।
 पूँछ तो पकड़े भेड़ की, उतरा चाहै पार॥⁽⁷⁶⁾

तीर्थ-व्रत

तीरथ व्रत विष बेलरी, सब जग राखा छाय।
 कबीर मूल निकंदिया⁴, कौन हलाहल⁵ खाय॥

1. नाव 2. भारी 3. देख 4. नष्ट कर दिया 5. भयंकर विष

तीरथ ब्रत करि जग मुआ, जूड़े¹ पानी न्हाय।
 सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय॥

तीरथ चाले दुइ जना, चित्त चंचल मन चोर।
 एको पाप न उतरिया, मन दस लाये और॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
 मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय॥

निर्मल गुरु के नाम से, कै निर्मल साधू भाय।
 कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय॥

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
 जब लगि साधु न सेइ है, तब लगि काँचा काम॥

मन में तो फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म।
 कोटि करम सिर पर चढ़ै, चेति न देखै मर्म॥

बहुत दान जो देत हैं, करि करि बहुतै आस।
 काहू के गज होहिंगे, खइहैं सेर पचास॥⁽⁷⁷⁾

पंडित और वाचक ज्ञानी

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
 एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥

पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईट।
 कबीर अन्तर प्रेम की, लगी न एकौ छीट॥

पंडित पोथी बाँधि के, दे सिरहाने सोय।
 वह अच्छर इन में नहीं, हौंसि दे भावै रोय॥

पंडित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर को ज्ञान।
 औरन सगुन बतावही, अपना फंद न जान॥

पढ़े गुने सीखे सुने, मिटी न संसय सूल।
 कह कबीर का से कहूँ, येही दुख का मूल॥

कबीर पढ़ना दूर करु, पुस्तक देहु बहाय।
 बावन अच्छर सोधि के, सत्त नाम लौ लाय॥

पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहल।
 काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुसकिल॥

पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिं।
 औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिं॥

पंडित बोरौ¹ पत्तरा, काजी छोडु कुरान।
 वह तारीख बताइदे, थे न जमीं असमान॥

कबीर बाम्हन की कथा, सो चोरन की नाव।
 सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ लैजाव॥

बाम्हन गुरु है जगत का, करम भरम का खाहि।
 उरझि पुरझि के मरि गया, चारों बेदों माहिं॥⁽⁷⁸⁾

पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेदुया नाहिं।
 औरूँ कौ परमोधतौ², गया मुहरकाँ³ माहिं॥

कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ़या संसार।
 पीड़ न उपजी प्रीति सँ, तौ क्यूँ करि करै पुकार॥⁽⁷⁹⁾

चारि वेद पढ़वो करै, हरि से नाही हेत।
बाल कबीरा ले गया, पंडित दूँदैं खेत॥⁽⁸⁰⁾

सामर्थ

साहिब से सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं।
राई तें पर्वत करै, पर्वत राई नाँइ॥

बहन बहंता थल करै, थल कर बहन बहोय¹।
साहिब हाथ बड़ाइया, जस भावै तस होय॥

साहिब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छाड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर॥

ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, ता तें भया कबीर॥

जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहाँ कहीं जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं॥

कीया कछू न होत है, अनकीया ही होय।
कीया जो कछु होय तो, करता औरै कोय॥

जिस नहिं कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब होय।
दरगह² तेरी साइयाँ, मेटि न सककै कोय॥

इत कूआ उत बावड़ी, इत उत थाह अथाह।
दुहूँ दिसा फनि फन कढ़े, समरथ पार लगाहि॥

घट समुद्र लखि ना परै, उट्टै लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारै पार॥

अबरन को क्या बरनिये, मो पै बरनि न जाय।
अबरन बरन तें बाहिरा¹, करि करि थका उपाय॥

मो में इतनी सक्ति कहँ, गाऊँ गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार॥

साईं तुझसे बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जा के सिर पर तू धनी, लाखों मोल कराय॥

बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहिं।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिं॥⁽⁸¹⁾

निज कर्ता का निर्णय

अछै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वा की डार।
तिरदेवा² साखा भये, पात भया संसार॥

नाद बिंदु तें अगम अगोचर, पाँच तत्त तें न्यार।
तीन गुनन ते भिन्न है, पुरुष अलख अपार॥

तीन गुनन की भक्ति में, भूलि परयो संसार।
कह कबीर निज नाम बिनु, कैसे उतरै पार॥

सबद सुरति के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान।
लखनेहारा लखि लिया, जा को है गुरु ज्ञान॥

हम तो लखा तिहूँ लोक में, तुम क्यों कहौ अलेख।
सार सबद जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख॥

संपुट¹ माहिं समाइया, सो साहिब नहिं होय।
सकल माँड² में रमि रहा, मेरा साहिब सोय॥

साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहिब जो कहूँ, साहिब खरा रिसाय³॥

जा के मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥

देही माहिं बिदेह है, साहिब सुरत सरूप।
अनंत लोक में रमि रहा, जा के रंग न रूप॥

चार भुजा के भजन में, भूलि परे सब संत।
कबीर सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनंत॥

निबल सबल जो जानि कै, नाम धरा जगदीस।
कहै कबीर जनमै मरै, ताहि धरूँ नहिं सीस॥

जनम मरन से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय॥

राम कृष्ण को जिन किया, सो तो करता न्यार।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार॥⁽⁸²⁾

सर्व घट व्यापी

कस्तूरी कुण्डल⁴ बसै, मृग दूँदैं बन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिं॥

तेरा साईं तुज्ज में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि दूँदैं घास॥

जा कारन जग दूँदिया, सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का, ता तें सूझै नाहिं॥

समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुज्ज में, अंत¹ कहूँ मति जाय॥

जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख।
सब घट ब्यापक हैं रहा, सोई आप अलेख॥

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्ज में, जागि सकै तो जागि॥

ज्यों नैनन में पूतरी, यों खालिक घट माहिं।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर दूँदन जाहिं॥

पुहुप मध्य ज्यों बास है, ब्यापि रहा सब माहिं।
संतों माहीं पाइये, और कहूँ कछु नाहिं॥

पावक रूपी साइयाँ, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, ता तें बुझि बुझि जाय॥⁽⁸³⁾

मैं जाँण्यौं हरि दूरि है, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछाँणै बाहिरा, नेड़ा ही थें दूरि॥

घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जान्या तिनि निकटि है, दूरि कहैं ते दूरि॥

तिणकैं ओल्है राम है, परबत मेरें भांड।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि॥

राम नाम तिहूँ लोक में, सकलहु रह्या भरपूरि।
यह चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि॥⁽⁸⁴⁾

मौन

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलुका कहूँ तो झीठ¹।
में क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ॥
दीठा² है तो कस कहूँ, कहूँ तो को पतियाय³।
साईं जस तैसा रहो, तू हरखि हरखि गुन गाय॥
ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय।
बेद कुराना ना लिखी, कहूँ तो को पतियाय॥
जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग सरवन काहि॥
जो पकरै सो चलै नहिं, चलै सो पकरै नाहिं।
कह कबीर यह साखि को, अरथ समझ मन माहिं॥
बाद बिबादे बिष घना, बोले बहुत उपाध⁴।
मौनि गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध॥⁽⁸⁵⁾

बिरह

बिरहिनि देइ सँदेसरा, सुनी हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये, पानी में का जीव॥
अंदेसो⁵ नहीं भागसी⁶, संदेसो कहि आय।
कै आबै पिय आपही, कै मोहिं पास बुलाय॥

1. झूठ 2. देखा 3. विश्वास करना 4. बखेड़ा 5. संशय
6. दूर होगा

बिरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय।
घट सूना जिव¹ पीव में, मौत दौंढि फिर जाय॥

बिरह जलन्ती देखि कर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिरकि के, जलती लई बुझाय॥

अँखियन तो झाँई परी, पंथ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार॥

नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस॥

बिरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर।
सुरत-सनेही ना मिलै, तब लगि मिटै न पीर॥

बिरहिन ऊभी² पंथ सिर³, पंथिनि⁴ पूछै धाय।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय॥

बहुत दिनन की जोवती⁵, रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम॥

बिरह भुवंगम तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम बियोगी ना जियै, जिये तो बाउर होय॥

बिरह भुवंगम पैठि कै, किया कलेजे घाव।
बिरहिन अंग न मोड़ि है, ज्यों भावै त्यों खाव॥

बिरहा पीव पठाइया, कहि साधू परमोधि।
जा घट तालाबेलिया⁶, ता को लावो सोधि॥

1. जान 2. खड़ी 3. किनारे 4. मुसाफिरों से 5. राह देखती
6. मिलने के लिए बेचैनी

कबीर सुन्दरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान।
 बेगि मिलो तुम आइ के, नहीं तो तजिहौं प्रान॥

कै बिरहिन को मीचु दे, कै आपा दिखलाय।
 आठ पहर का दाझना¹, मो पै सहा न जाय॥

बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
 माँगें दरस मधूकरी², छके रहैं दिन रैन॥

येहि तन का दिवला³ करौं, बाती मेलौं जीव।
 लोहू सीचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव॥

कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
 बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत॥

हँसों तो दुख ना बीसरै, रोओं बल घटि जाय।
 मनहीं माहीं बिसुरना⁴, ज्यों घुन काठहिं खाय॥

हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
 हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिनि होय॥

सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
 दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै॥

नाम बियोगी बिकल⁵ तन, ताहि न चीन्है कोय।
 तम्बोली⁶ का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय॥

नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं⁷ तुज्झ।
 ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी बेदन मुज्झ॥

1. जलाना 2. भिक्षा 3. दीपक 4. चुपके-चुपके रोना
 5. व्याकुल 6. पान बेचनेवाला 7. चाहें

माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
 साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग॥

बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान।
 हाड़ मास सब खात है, जीवत करै मसान॥

आय सकों नहिं तोहिं पै, सकों न तुज्झ बुलाय।
 जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय॥

हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
 पीड़ सहे बिनु पदमिनी¹, पूत न लेत उछंग²॥

तन मन जोबन यों जला, बिरह अगिनि से लागि।
 मितक पीड़ा जानही, जानैगी क्या आगि॥

परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय।
 सो बूटी पायों नहीं, जा तें जीवन होय॥

बिरह जलन्ती मैं फिरों, मो बिरहिनि को दुक्ख।
 छाँह न बैठों डरपती, मत जलि उट्टै रुक्ख॥

चूड़ी पटकों पलँग से, चोली लाओं आगि।
 जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि॥

अंक भरी भरि भेंटिये, मन नहिं बाँधै धीर।
 कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर॥

जो जन बिरही नाम के, झीना³ पिंजर⁴ तासु।
 नैन न आवै नींदड़ी, अंग न जाँमै मासु॥

1. सुंदर तथा सुशील स्त्री 2. गोद 3. अत्यंत दुर्बल 4. शरीर

नाम बियोगी बिकल तन, कर छूओ मत कोय।
 छूवत ही मरि जाइगो, तालाबेली होय॥
 जो जन भीजे नाम रस, बिगसित कबहुँ न मुख।
 अनुभव भावन दरस ही, ते नर सुख न दुख॥
 कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय।
 तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय॥
 हिरदे भीतर दव बलै, धुवाँ न परगट होय।
 जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय॥
 आगे आगे दव बलै, पाछे हरियर होय।
 बलिहारी वा बृच्छ की, जड़ काटे फल जोय॥
 कबीर सुपने रैन के, पड़ा कलेजे छेक।
 जब सोवों तब दुइ जना, जब जागों तब एक॥
 बिरहा मो से यों कहै, गाढ़ा पकड़ो मोहिं।
 चरन कमल की मौज में, लै पहुँचाओं तोहिं॥
 सबही तरु तर¹ जाइ के, सब फल लीन्हो चीख²।
 फिरि फिरि मँगत कबीर है, दरसन ही की भीख॥
 बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिं आय।
 नहिं मारै छाड़ै नहीं, तलफ तलफ जिय जाय॥
 पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल बिरह सताय।
 रैन दिवस मोहिं कल नहीं, सिसक सिसक जिय जाय॥

जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
 देही से उद्यम करें, सुमिरन करें बिदेह॥
 साईं सेवत जल गई, मास न रहिया देह।
 साईं तब लगि सेइहों¹, यह तन होय न खेह॥
 निस दिन दाझै बिरहिनी, अंतरगत की लाय।
 दास कबीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय॥
 पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
 एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय॥
 चोट सतावै बिरह की, सब तन जरजर होय।
 मारनहारा जानही, कै जेहि लागी सोय॥
 बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
 जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान॥
 देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय।
 बिरहिनि पिय पावै नहीं, बेकल जिय घबराय॥
 सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहेंगे बाँहि।
 अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि॥
 जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिं।
 ज्यों दरपन की सुंदरी, किनहुँ पकड़ी नाहिं॥
 तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग।
 ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलन्ती आग॥

चकई बिछुरी रैन की, आय मिली परभात।
सतगुरु से जो बीछुरे, मिलें दिवस नहिं रात॥

बासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सुपने माहिं।
सतगुरु से जो बीछुरे, तिन को धूप न छाँहि॥

बिरहिनि उठि उठि भुईं परै, दरसन कारन राम।
मूए पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम॥

मूए पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम॥

यह तन जारि भसम करौं, धूवाँ होय सुरंग।
कबहुँक गुरु दाया करैं, बरसि बुझावैं अंग॥

यह तन जारि के मसि करौं, लिखौं गुरु का नाँव।
करौं लेखनी करम की, लिखि लिखि गुरु पठाँव॥

लकरी जरि कोइला भई, मो तन अजहूँ आगि।
बिरह की ओदी¹ लाकरी, सिलगि सिलगि उठि जागि॥

सब रग ताँत² रबाब³ तन, बिरह बजावै नित।
और न कोई सुनि सकै, कै साई कै चित्त॥

तूँ मति जानै बीसरूँ, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित॥

जीव बिलम्बा पीव से, अलख लख्यो नहिं जाय।
साहिब मिलै न झल⁴ बुझै, रही बुझाय बुझाय॥

जीव बिलंबा पीव से, पिय जो लिया मिलाय।
लेख समान अलेख में, अब कछु कहा न जाय॥

आगि लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार॥

बिरह अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव।
कै वा जानै बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव॥

कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माहिं॥

जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई, भला करेगा सोय॥

जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय॥⁽⁸⁶⁾

हाँसी खेलौं हरि मिलै, कौण सहै खरसाण।
काम क्रोध त्रिष्णौं तजै, ताहि मिलैं भगवान॥

जिहि सरि मारी काल्हि¹, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहिं सर अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं॥⁽⁸⁷⁾

कबीर लागी प्रीत सुजान² सिउ बरजै लोग अजान³॥
ता सिउ टूटी किउ बनै, जा के जीअ परान॥⁽⁸⁸⁾

प्रेम

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै, तब पैठै घर माहिं॥

सीस उतारै भुईं धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव॥

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥

प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय॥

प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान॥

छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥

आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय॥

प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना¹ रहै, प्रेम कहावै सोय॥

प्रेम पियारे लाल सों, मन दे कीजै भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव²॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानु मसान।
जैसै खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान॥

आया बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास॥

प्रेम बिकता मैं सुना, माथा साटे¹ हाट।
बूझत बिलम्ब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट॥

प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा² का दाग॥

प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर।
घोंच³ टूटि भुईं माँ गिरै, चितवै वाही ओर॥

अधिक सनेही माछरी, दूजा अल्प सनेह।
जबहीं जल तें बीछुरै, तबही त्यागै देह॥

सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुन्दर पार॥

यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुई गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात॥

मेरा मन तो तुझ से, तेरा मन कहूँ और।
कह कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर॥

ज्यों मेरा मन तुझ से, यों तेरा जो होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय॥

प्रीति जो लागी घुलि गई, पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं॥

प्रेम बनिज नहिं करि सकै, चढ़ै न नाम की गैल।

मानुष केरी खालरी, ओढ़ि फिरै ज्यों बैल॥

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि ब्यौहार।

प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार॥

प्रेम पाँवरी¹ पहिरि कै, धीरज काजर देइ।

सील सिंदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ॥

प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय।

जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय॥

प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।

भावे गृह में बास कर, भावे बन में जाय॥

जोगी जंगम सेवड़ा², सन्यासी दरवेस³।

बिना प्रेम पहुँचै नहीं, दुरलभ सतगुरु देस॥

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।

एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान॥

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।

प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय॥

कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।

रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय॥

कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक।

पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक॥

नाम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल¹।

कबीर पावन दुलभ है, माँगै सीस कलाल²॥

कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।

सिर सौँपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय॥

यह रस महँगा पिवै सो, छाड़ि जीव की बान।

माथा साटे जो मिलै, तो भी सस्ता जान॥

पिया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।

नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार॥

सबै रसायन में किया, प्रेम समान न कोय।

रती इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय॥

अमृत केरी मोटरी³, राखी सतगुरु छोरि।

आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावैं घोरि⁴॥

साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।

तृषा गई इक बुंद से, क्या ले करौं समुंद॥

मिलना जग में कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।

बिछुड़ा सजन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय॥

जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।

कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय॥

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।

पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय॥

जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझि लेहु मन माहिं॥

पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा॥

पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेइ¹।
नाच न जानै बापुरी², कहै आँगना टेढ़॥

यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद॥

प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत इकन्त³।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत॥

प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सबद माहिं तब मिलि रहै, नहिं आवै नहिं जाय॥

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक⁴ हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत॥

प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय॥

गुनवंता औ द्रव्य की, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तें न्यारी होय॥

कबीर ता से प्रीति करु, जो निरबाहै ओर⁵।
बनै तो बिबिध न राचिये, देखत लागै खोर⁶॥

कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास¹।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास॥

जो है जा का भावता², जब तब³ मिलि है आय।
तन मन ताको सौँपिये, जो कबहुँ छाड़ि न जाय॥

जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास॥

सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देंह भरि, रहै सबद मिलि एक॥

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी⁴ किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर॥

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहूँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस॥⁽⁸⁹⁾

कबीर हरदी पीअरी चूनां ऊजल⁵ भाए॥
राम सनेही तउ मिले, दोनउ बरन गवाए॥

कबीर हरदी पीरतन⁶ हरै चून चिहन न रहाए॥
बलिहारी इह प्रीत कउ, जिह जात बरन कुल जाए॥

नीचे लोइन कर रहउ ले साजन घट माहे॥
सभ रस खेलउ पीअ सउ किसी लखावउ नाहे॥

आठ जाम चउसठ घरी तुअ निरखत रहै जीउ॥
नीचे लोइन⁷ किउ करउ सभ घट देखउ पीउ॥

1. खराब 2. बेचारी 3. सूने स्थान में 4. ज़मीन, देश
5. अंत तक 6. बुरा लगना

1. निवास-स्थान 2. प्रेमपात्र 3. जब तब=कभी-कभी 4. गोटी
5. सफ़ेद 6. पीलापन 7. लोचन, नेत्र

सुन सखी पीअ मह जीउ¹ बसै जीअ मह बसै कि पीउ²॥
जीउ पीउ बूझउ नही घट मह जीउ कि पीउ॥⁽⁹⁰⁾

भेदी

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।
सेरी³ पावै सबद की, निर्भय आवै जाय॥

भेदी जानै सबै गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जा के लागा बान॥⁽⁹¹⁾

परिचय

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय॥

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

जिन पावन भुईं बहु फिरै, घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस॥

उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहिब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत॥

जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचा तान⁴।
उलटि समाना आप में, हुआ ब्रह्म समान॥

हम बासी वा देस के, जहाँ सत्त पुरुष की आन।
दुख सुख कोई ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान॥

हम बासी उस देस के, जहाँ बारह मास बिलास¹।
प्रेम झिरै बिगसै कैवल, तेज पुंज परकास॥

हम बासी उस देस के, (जहाँ) जाति बरन कुल नाहिं।
सब्द मिलावा है रहा, देंह मिलावा नाहिं॥

हम बासी उस देश के, जहाँवाँ ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब² का, बिन बाती बिन तेल॥

संसय करौं न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार॥

बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस।
बिना देंह का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस॥

नोन गला पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन³।
सुरत सबद मेला भया, काल रहा गहि मौन॥

हिलि मिलि खेलौं सबद से, अंतर रही न रेख।
समझे का मति एक है, क्या पंडित क्या सेख॥

कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत॥

सुरति समानी निरति में, अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलेख में, आपा माहीं आप॥

सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परिचय भया, तब खुला सिंधु दुवार॥

गुरु मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप।
निसु बासर सुख-निधि लहाँ, अन्तर प्रगटे आप॥

पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरनि आकास।
तहाँ कबीरा संत जन, साहिब पास खवास¹॥

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान²।
कहिबे की सोभा नहीं, देखे ही परमान॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास॥

पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद।
रतन निराला पाइया, जगत टटोला बाद³॥

कबीर देखा एक अंग, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय॥

नींव बिहूना देहरा⁴, देह बिहूना देव।
तहाँ कबीर बिलंबिया⁵, करै अलख की सेव॥

कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर॥

आकासै औधा कुआँ, पातालै पनिहार।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार॥

गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरति लगी तहाँ मोरि॥

दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरं¹ देव।
चार बेद की गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव॥

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं॥

सुत्र मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल॥

पूरे से परिचय भया, दुख सुख मेला दूरि।
जम से बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर॥

जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, (तहाँ) रहा कबीर समाय॥

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन।
पति सँग जागी सुन्दरी, कौतुक देखा नैन॥

कौतुक देखा देह बिन, रबि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माहिं है, बेपरवाही दास॥

अगम अगोचर गम नहीं, जहाँ झिलमिलै जोत।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिं छोट॥

कबीर मन मधुकर भया, कीया नर तरु बास।
कँवल जो फूला नीर बिन, कोइ निरखै निज दास॥

सीप नहीं सायर¹ नहीं, स्वाँति बुंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजे², सुन्न सिखर घट माहिं॥

घट में औघट पाइया, औघट³ माहीं घाट⁴।
कह कबीर परिचय भया, गुरू दिखाई बाट॥

जहँ मोतियन की झालरी, हीरन का परकास।
चाँद सूर की गम नहीं, दरसन पावै दास॥

कछु करनी कछु कर्म गति, कछु पूरबला लेख⁵।
देखो भाग कबीर का, दोसत किया अलेख॥

पानी ही तें हिम भया, हिम हीं गया बिलाय⁶।
कबीर जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय॥

जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साई ते सन्मुख भया, लगा कबीरा पाँय॥

पंछी उड़ाना गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चोंच बिन, भूल गया यह देस॥

सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाय सहजे गया, साहिब मिला हजूर॥

तत⁷ पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान।
तपन मिटी सीतल भया, सुन्न किया अस्नान॥

नहीं हाट नहीं बाट था, नहीं धरती नहीं नीर।
असंख जुग परलय गया, तब की कहै कबीर॥

पाँच तत्त गुन तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहाँ कबीरा घर किया, तहँ दत्त न गोरख राम॥

जा दिन किरतम न हता, नहीं हाट नहीं बाट।
हता कबीर राम जन, देखा औघट घाट¹॥

सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली² तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर॥

जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी मिला, यों हरिजन हरि माहिं॥

गुन इन्द्री सहजै गये, सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय॥

मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं॥⁽⁹²⁾

हम बासी उस देस के, जहँ नहीं मास बसंत।
नीझर झरै महा अमी, भीजत हैं सब संत॥⁽⁹³⁾

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सकल अँधेरा मिटि गया, जब दीपक देखा माहिं॥⁽⁹⁴⁾

उपदेश

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल॥

1. सागर 2. पैदा होता है 3. ब्रह्म 4. मर्म, भेद
5. पूरबला लेख=पूर्वजन्मों के कर्म 6. विलीन हो गया 7. सार पदार्थ

1. देखा...घाट=यह भेद अंतर में पाया 2. इधर का

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय¹।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय॥

जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय॥

कबीर काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि दुरिये² नहीं, कूकर भुँसै हजार॥

हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु से मिलै, जीता जम की लार॥

जैसा अन जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय॥

माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख।
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

काम कथा सुनिये नहीं, सुन करि उपजै काम।
कहै कबीर बिचार करि, बिसर जात है नाम॥

बन्दे तू कर बन्दगी, तो पावै दीदार।
औसर मानुष जन्म का, बहुरि न बारम्बार॥

जेहि जेवरि³ तें जग बँधा, तूँ जनि बँधै कबीर।
जासी आटा लोन ज्यों, सोन समान सरीर॥

1. छोड़कर 2. डरकर 3. रस्सी

कर बंदगी बिबेक की, भेष धरे सब कोय।
वह बंदगी बहि जान दे, जहाँ सबद बिबेक न होय॥

साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार॥

मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार है सँचरै, सालै¹ सकल सरीर॥

जिन ढूँढ़ा तिन पाइआ, गहरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि॥

ज्ञान रतन की कोठरी, चुप करि दीजै ताल।
पारख आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल²॥

अल्मस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय।
चतुराई नहिं छूटसी, सुरत सबद में पोय³॥

पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईट।
कबीर अंतर प्रेम की, लागी नेक⁴ न छीट॥

नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ॥

कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान॥⁽⁹⁵⁾

1. कष्ट देता है 2. रसभरे, मधुर 3. पिरो दे 4. थोड़ी-सी

मिश्रित

तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेंह।

परमारथ के कारने, चारौ धारें देह॥

कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिं लेय।

पानी पीवै स्वाँति का, सोभा सागर देय॥

ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचा नीर।

कै सुरपति¹ को याँचई, कै दुख सहै सरीर॥

पड़ा पपीहा सुरसरी², लगा बधिक का बान।

मुख मूँदै सुत गगन में, निकस गये यों प्रान॥

पपिहा पन³ को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।

तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज॥

भूप दुखी अवधू⁴ दुखी, दुखी रंक बिपरीत।

कह कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत॥

काँसे ऊपर बीजुली, परै अचानक आय।

ता तें निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय॥

गुरू नहीं चेला नहीं, नहिं मुरीद नहिं पीर।

एक नहीं दूजा नहीं, बिलमे⁵ तहाँ कबीर॥

सात दीप नौखंड में, तीन लोक ब्रह्मंड।

कह कबीर सब को लगै, देह धरें का दंड॥

देह धरें का दंड है, सब काहू को होय।

ज्ञानी भुगतै ज्ञान कर, अज्ञानी भुगतै रोय॥

1. इंद्र 2. गंगा 3. प्रतिज्ञा 4. संन्यासी
5. देर करना, ठहर जाना, रुक जाना

घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा लेय।

सत्तनाम जाने बिना, उलटि नरक में देय॥

खुलि खेलो संसार में, बांधि न सकै कोय।

घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होय॥

कबीर दर दीवान¹ में, क्यों कर पावै दाद²।

पहिले बुरा कमाइ कै, पाछे करै फरियाद॥

कबीर मैं तो तब डरौं, जो मुझही में होय।

मीच³ बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय॥

एक बस्तु के नाम बहु, लीजै बस्तु पिछानि।

नाम पच्छ नहिं कीजिये, सार तत्त ले जानि॥

देखन ही की बात है, कहने की कछु नाहिं।

आदि अंत को मिलि रहा, हरिजन हरि ही माहिं॥

सबै हमारे एक हैं, जो सुमिरै सत नाम।

बस्तु लही पहिचानि कै, बासन⁴ से क्या काम॥

भौसागर जल बिष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।

सबद-सनेही पिउ मिला, उतरा पार कबीर॥

हीरा गुरु का सबद है, हिरदे भीतर देख।

बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा अगम अलेख॥

देखन को सब कोइ भला, जैसा सीत⁵ का कोट⁶।

देखत ही ढहि जायगा, बाँधि सकै नहिं पोट⁷॥

1. दर दीवान=प्रभु की अदालत 2. प्रशंसा, वाहवाही 3. मृत्यु 4. बरतन
5. हिम 6. किला 7. गठरी

पद¹ गावै मन हरखि कै, साखी कहै अनन्द।
तत्त मूल नहिं जानिया, गल में परिगा फंद॥

नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु से हेत।
कह कबीर क्यों नीपजै², बीज बिहूना खेत॥

चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं पदहिं समाय।
कोटिक गुन सुवना पढ़ै, अंत बिलाई³ खाय॥

जब दिल मिला दयाल से, फाँसी गई बिलाय⁴।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय॥

कबीर मोह पिनाक⁵ जग, गुरु बिनु टूटत नाहिं।
सुर नर मुनि तोरन लगे, छुवत अधिक गरुआहि⁶॥

कबीर निगुरे नरन कौ, संसय कबहुँ न जाय।
संसय छूटै गुरु कृपा, तासु बिमुख जहँड़ाय⁷॥

नाम रतन धन संत पहुँ, खान खुली घट माहिं।
संतमेंत⁸ ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं॥⁽⁹⁶⁾

भला सुहेला⁹ ऊतरया, पूरा मेरा भाग।
राम नाँव नौंका गह्या, पाँणी पंक न लाग॥⁽⁹⁷⁾

पूरा साहेब सेइये, सब बिधि पूरा होय।
ओछे¹⁰ से नेह लगाय के, मूलहु जावै खोय॥

आपा तजै हरि भजै, नखशिख तजै विकार।
सब जीव से निर्बेर रहे, साध मता है सार॥

1. भजन 2. उगे 3. बिल्ली 4. नष्ट 5. धनुष 6. भारी हो जाता है
7. ठगा जाता है 8. मुक्त में 9. सुखदायक 10. तुच्छ, नीच

मानुष जनमहि पाय के, चूकै अबकी घात¹।
जाय परे भव चक्र में, सहे घनेरी लात॥

बिनु देखै वा देश की, बात कहै सो कूर²।
आपै खारी³ खात है, बेचत फिरै कपूर॥

गुरु बिनु ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिलै न मोक्ष।
गुरु बिनु लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटै न दोष॥

सतसंग की आधी घड़ी, सुमिरन बरस पचास।
बरखा बरसै इक घड़ी, रहट फिरे बारह मास॥

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो कर जाने कोय।
हरदी लगे न फटकडी, चोखा ही रंग होय॥

जा घट प्रेम न प्रीत रस, पुनि रसना नाहिं नाम।
ते नर या संसार में, उपजि मरै बेकाम॥

हरि किरपा तब जानिये, दे मानव अवतार।
गुरु किरपा तब जानिये, छुड़ावे संसार॥

रैन तिमिर नासत भयो, जब ही भानु उगाय।
सार-सब्द के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय॥

मुरदे को भी देत हैं, कपड़ा लत्ता आग।
जीवत नर चिंता करै, ताका बड़ा अभाग॥

ऊंचे कुल के कारने, बांस बढयो अहंकार।
नाम भजन हिरदे नहीं, जार्यो सब परिवार॥

1. अवसर 2. झूठ 3. घटिया नमक

कमल पत्र साधू जना, बसत जगत के माहिं।
बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नाहिं॥

ज्यों पय¹ मध्ये घीव है, त्यों रमैया सब ठौर।
कथता बकता बहुत हैं, मथि काढे ते और॥

रेख रूप बिन बेद में, और कुरान बेचून²।
आपस में दोउ लड़ें, जाना नहिं दोहून³॥

हरिजन मिले तो हरि मिले, मन पाया बिस्वास।
हरिजन हरि का रूप हैं, ज्यों फूलन में बास॥

जाको दरसन इत है, ताको दरसन उत।
जाको दरसन ईत नहिं, ताको ईत न उत्त॥

शील रत्न सबसे बड़ा, सब रत्नों की खान।
तीन लोक की संपदा, रही शील में आन॥

होहू जौहरी जगत में, घट की आंखी खोल।
तुला समारो⁴ बिबेक की, शब्द जवाहिर तोल॥

मकरी उतरी तार गहि, फिर चढ़ि गई तार।
कहैं कबीर यों मन चढ़ै, मिलत न लागे बार⁵॥

रमै निरंतर आतमा, घट घट आठों जाम।
ताहि तें संतन धरा, राम तासु का नाम॥⁽⁹⁸⁾

कबीर ऐसा को नहीं मंदर⁶ दे जराए⁷॥
पांचउ लरिके⁸ मार कै रहै राम लिउ लाए॥

को है लरिका बेचई लरिकी बेचै कोए॥
साझा करै कबीर सिउ हर संग बनज करे॥

कबीरा तुही कबीर तू तेरो नाउ कबीर॥
राम रतन तब पाईए जउ पहिले तजह सरीर॥

कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोए॥
राम कसउटी सो सहै जो मर जीवा होए॥

कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसएं भाए॥
मन तउ मैगल¹ होए रहिओ निकसो किउ कै जाए॥

कबीर ऐसा सतगुर जे मिलै तुठा करे पसाउ॥
मुकति दुआरा मोकला² सहजे आवउ जाउ॥

कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराए³॥
परगट भए निदान⁴ सभ जब पूछे धरम राए॥

कबीर चतुराई अत घनी हर जप हिरदै माहे॥
सूरी ऊपर खेलना गिरै त ठाहर⁵ नाहे॥

कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतगुर के परसाद॥
चरन कमल की मउज मह रहउ अंत अर आद॥

कबीर चरन कमल की मउज को कह कैसे उनमान⁶॥
कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवान⁷॥

कबीर भली भई जो भउ परिआ, दिसा गई सभ भूल॥
ओरा गर पानी भइआ जाए मिलिओ ढल कूल॥

1. दूध 2. अनुपम 3. दोनों ने 4. सँभालो 5. देर 6. शरीररूपी घर
7. जला दे 8. पांचउ लरिके=भाव काम, क्रोध आदि पाँचों विकार

1. हाथी 2. चौड़ा 3. छिपाए 4. आखिर 5. ठिकाना
6. अनुमान 7. प्रमाण

कबीर राम कहन मह भेद है ता मह एक बिचार॥
सोई राम सभै कहहे सोई कउतकहार॥

कबीर रामै राम कहो कहिबे माहे बिबेक॥
एक अनेकह मिल गइआ एक समाना एक॥

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ मह रहा न हूं।॥
जब आपा पर का मिट गइआ जत देखउ तत तू॥⁽⁹⁹⁾

संक्षिप्त परिचय

(उन संत-महात्माओं का जिनका प्रस्तुत पुस्तक संत कबीर में उल्लेख किया गया है।)

गुरु अंगद देव (1504-1552 ई.) — श्री गुरु नानक देव की परंपरा में दूसरे सतगुरु। गद्दीनशीनी सन 1538, खडूर साहिब में, 1552 में ज्योति-ज्योत समाए।

गुरु अमरदास (1479-1574 ई.) — बासठ वर्ष की आयु तक वैष्णव भक्त रहे। गुरु अंगद देव की शरण में आने पर पूजा-पाठ आदि छोड़कर गुरु साहिब की शिक्षा को अपनाया। बारह वर्ष बड़े प्रेम से गुरु-सेवा की और 1552 में गुरु अंगद देव ने आपको गुरु-गद्दी प्रदान की।

गुरु अर्जुन देव (1563-1606 ई.) — आपका जन्म श्री गुरु रामदास के घर गोईन्दवाल में हुआ। आपकी गद्दीनशीनी सन 1581 में हुई। आपने 1588 में अमृतसर का सरोवर संपूर्ण करवाया तथा 1604 में श्री आदि ग्रन्थ का संपादन पूरा किया।

गुरु गोबिन्द सिंह (1666-1708 ई.) — गुरु नानक देव की परंपरा में दशम सतगुरु। आपके पिता श्री गुरु तेग बहादुर थे और आपका जन्म पटना (बिहार) में हुआ। 1675 में गुरु-गद्दी पर आसीन हुए। आप संत, विद्वान और योद्धा भी थे।

तुलसी साहिब (1764-1845 ई.) - आपका संबंध पूना के पेशवा परिवार से था। छोटी आयु में आप घर से निकल गए और उत्तर प्रदेश के हाथरस नगर में रहने लगे। आपके प्रमुख ग्रंथ रतन सागर और घट रामायण हैं।

गुरु तेग बहादुर (1622-1675 ई.) - श्री गुरु हरगोबिन्द साहिब के पुत्र तथा गुरु नानक देव की परंपरा में नवें सतगुरु। गद्दीनशीनी 1664। औरंगज़ेब की कट्टर नीतियों के विरोध में 1675 में आपने देहली में बलिदान दिया।

दरिया साहिब, बिहार वाले (1596-1702 ई.) - आपका जन्म बिहार में एक मुसलमान दरज़ी के परिवार में हुआ। आप राजस्थान के दरिया साहिब के समकालीन थे।

दरिया साहिब, मारवाड़ वाले (1676-1758 ई.) - आपका जन्म मारवाड़ (राजस्थान) में एक मुसलिम पिंजारे के घर में हुआ। लगभग 25 वर्ष तक आप दरिया साहिब (बिहार वाले) के समकालीन थे परंतु माना जाता है कि इन दोनों संतों की कभी मुलाकात न हुई।

दादू दयाल (1544-1603 ई.) - आपका जन्म एक मुसलिम धुनिए के परिवार में हुआ। आपकी वाणी आपके प्रमुख शिष्य रज्जब जी ने संकलन की है। कबीर साहिब के समान ही आपकी साखियाँ सशक्त और भावपूर्ण हैं और अपनी कई साखियों में आपने इसके लिए कबीर साहिब के प्रति आभार माना है।

संत धरनीदास - एक शब्द-मार्गी संत जिनका जन्म सन 1656 ई. में बिहार में हुआ।

गुरु नानक देव (1469-1539 ई.) - प्रसिद्ध संत जिनका जन्म पंजाब में हुआ तथा जिन्होंने भारत, लंका, अफ़ग़ानिस्तान, ईराक, ईरान तथा अरब देशों में

नाम-भक्ति का प्रचार किया। आपने एक प्रभु की भक्ति, नाम के अभ्यास, नेक जीवन और अपने घट में ही परमात्मा की तलाश करने का उपदेश दिया।

संत नामदेव (1270-1350 ई.) - जन्म नरसी बामनी ग्राम (महाराष्ट्र) में। आप शुरू में मूर्ति-पूजक थे परंतु विसोबा खेचर से दीक्षा लेने पर शब्द-मार्ग अपना लिया। आपने लगभग 50 वर्ष उत्तरी भारत में नाम का प्रचार किया तथा अपने जीवन के अंतिम 18 वर्ष पंजाब के ग्राम घुमान (ज़िला गुरदासपुर) में बिताए।

संत पलटू साहिब (1710-1780 ई.) - आपका जन्म उत्तर प्रदेश में एक बनिया परिवार में हुआ। आपने बड़े साहस और निर्भीकता के साथ नाम का प्रचार किया। कर्मकांडी लोगों ने आपको जीवित जला दिया।

राजा पीपा (पंद्रहवीं शताब्दी) - आप राजस्थान में गागरोनगढ़ (कोटा शहर के पास) के राजा थे। आप कबीर साहिब के समकालीन तथा गुरु रविदास के शिष्य थे।

शेख़ फ़रीद (1173-1265 ई.) - आप ख्वाज़ा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के शिष्य थे। आपकी कुछ वाणी श्री आदि ग्रन्थ में संकलित है।

हज़रत सुलतान बाहू (1629-1690 ई.) - आपका जन्म अविभाजित पंजाब के झंग ज़िले में हुआ। आपने अरबी और फ़ारसी में कई ग्रंथ लिखे। आपके द्वारा पंजाबी में लिखे कुछ पद मिलते हैं जो रूहानी इश्क़ और मुर्शिद के प्रेम से भरपूर हैं।

साई बुल्लेशाह (1680-1758 ई.) - पूरा नाम अब्दुल्ला शाह, जन्म ज़िला लाहौर। आप हज़रत इनायत शाह के शिष्य थे। आपके द्वारा रची काफ़ियाँ प्रभु और मुर्शिद के प्रेम तथा शरीअत के विरोध से परिपूर्ण हैं।

संत बेणी—आपके जीवन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। आपके तीन शब्द श्री आदि ग्रन्थ में संकलित हैं।

संत भीखा—अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध संत। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ ज़िले में हुआ। आपकी वाणी सरल तथा भावपूर्ण है।

संत मलूकदास (1574-1686 ई.)—उत्तर प्रदेश के संत। आपकी जो भी थोड़ी-सी वाणी मिलती है वह सरल तथा गहरे रूहानी भेदों से युक्त है।

संत रज्जब (1567-1693 ई.)—आपका जन्म सांगानेर (राजस्थान) के एक पठान परिवार में हुआ। आप 19 वर्ष की उम्र में संत दादू के शिष्य बने। आपने सरबंगी नामक ग्रंथ में अनेक संतों की रचनाओं का संग्रह किया है।

गुरु रविदास—पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध संत। आपका जन्म काशी में एक निम्न जाति के परिवार में हुआ। यद्यपि राजा पीपा, रानी मीराबाई तथा बनारस के राजा आपके शिष्यों में थे, आप सारी आयु जूते गाँठकर अपना निर्वाह करते रहे। अपार रूहानी दौलत के स्वामी होते हुए भी आपने गरीबी के जीवन को अपनाया, हक-हलाल की कमाई से गुज़ारा किया तथा निर्भयतापूर्वक नामभक्ति का प्रचार किया।

गुरु रामदास (1534-1581 ई.)—श्री गुरु नानक देव की परंपरा में चौथे सतगुरु। गद्दीनशीनी सन 1574। आपने अमृतसर शहर की नींव रखी। आपकी वाणी प्रेम और भक्ति से परिपूर्ण है।

मौलाना रूम—तेरहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफ़ी संत। जन्म-स्थान बलख (ईरान)। आप शम्स तबरेज़ के शिष्य थे। आपके ग्रन्थ मसनवी का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

शम्स तबरेज़—तेरहवीं शताब्दी के मुसलिम संत। पूरा नाम शम्सुद्दीन तथा जन्म-स्थान तबरेज़ (ईरान) था। आप मौलाना रूम के गुरु थे।

स्वामी जी महाराज (1818-1878 ई.)—असली नाम सेठ शिवदयाल सिंह, जन्म-स्थान आगरा। आप स्वामी जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपनी रचनाओं सारबचन छन्द-बन्द तथा सारबचन वार्तिक में आपने गूढ़ आध्यात्मिक भेद को सरल तथा बोलचाल की भाषा में प्रकट किया है।

ख्वाजा हाफ़िज़ (1325-1390 ई.)—पूरा नाम शम्सुद्दीन मुहम्मद, जन्म-स्थान शीराज़ (ईरान)। अपनी रूहानी प्रेम की गज़लों के लिये आप प्रसिद्ध हैं।